जवाहर ाहिर प्ति स्थानः--

(१) श्री जैन हितेच श्रावक मण्डल, रतलाम।

(२) श्री जैन जवाहर मित्र मण्डल ब्यावर (राजस्थ)

(३) श्री जवाहर विद्यापीठ भीनासर (बीकानेर)

(४) श्री सेठिया जैन पारमार्थिक स्था बीकानेर

(५) श्री जैन नव वक मण्डल, कान्धला (जफ़फरनगर)

प्रकरण सूची

दो- ब्द

श्री मज्जैनाचार्य स्वर्गीय पूज्य श्री १००८ श्री वाहिर-
ालजी महाराज ाहब के संग्राहित व्याख्यानों के आधार पर
२८ ष्प तो मंडल पहले प्रकट कर चुका है। व यह २९ वां
पुष्प 'राजकोट व्याख्यान भाग दू रा' पाठकों के कर मलों
में पहुंचाते हुए तीव प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है।

राजकोट चातुर्मास के व्याख्यान कुछ तो श्री जवाहिर
किरणावली के सातवें भाग में प्रकाशित किये हैं, दस व्या-
ख्यान २७ वें ष्प में प्रकाशित किये जा चुके हैं। और इसके
बाद के ग्यारह व्याख्यान इस स्तक में प्रकाशित किये जा रहे
हैं। ये व्याख्यान अत्यन्त शिक्षाप्रद एवं सार्वजनिक हैं।

आजकल सभी स्थानों पर निराज व महासतियों के
चातुर्मास हो नहीं सकते हैं, इसलिये ऐसे ाली क्षेत्र वालों
को ऐसी स्तकें मंगाकर इन उपदेशों द्वारा अपनी धर्म भाव-
नाओं को जागृत एवं पुष्ट बनाये र ना अधिक हितकर होगा।
आशा है पाठक पूज्य श्री के विचारों का पूरा २ लाभ उठा
कर अपने जीवन को सफल बनावेंगे।

यद्यपि राजकोट चातुर्मास के व्याख्यानों से भी नाथ
अनाथ निर्णय एवं दर्शन चरित्र पृथक स्तक के रूप में
पहले प्रकाशित हो चुके हैं। किन्तु उनमें विषय का विभाजन
हो जाने से वे तद्विषयक उपयोगी है और ये व्याख्यान सर्व

विषयोपयोगी होने से जिनको व्याख्यानों की रुची है वे इस साहित्य से लाभ उठावें।

आजकल कागज की इस महगाई के समय में तथा छपाई का दर बढ़ने पर भी इस ३०० पृष्ठ की पुस्तक का मूल्य सिर्फ १।) रु. र ा गया है ताकि साधारण जनता भी इस ा लाभ उठा सके और धर्म का प्रचार अधिक हो।

यहां पर यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि पूज्य श्री जो व्याख्यान फरमाते थे वे साधु भाषा में ही होते थे। फिर भी संग्राहक या सम्पादक द्वारा, भाषा एवं भाव सम्बन्धी भूल हो गई हो तो ऐसी भूल के लिये संग्राहक और सम्पादक ही उत्तरदायी हैं, न कि पूज्य श्री। अतः जो महानुभव हमें ऐसी भूलें बतावेंगे हम उनका आभार मानेंगे और आगामी संस्करण में उस त्रुटि को निकालने का यथा शक्य प्रयत्न करेंगे।, इत्यलम्

रतलाम
आषाढ़ शुक्ला पूर्णिमा
सं. २००८ वि.

भवदीयः—
बालचंद श्री श्रीमाल हीरालाल नांदेचा
वाइसप्रेसिडेन्ट, प्रेसिडेन्ट

श्री साधुमार्गी जैन पूज्य श्री हुक्मीचंदजी
महाराज की सम्प्रदाय का
श्री जैन हितेच्छु श्रावक मंडल
रतलाम (मध्य भारत)

११

आत्म साक्षी से निर्णय करो

श्री जिन अजित नमू जयकारी, तू देवन को देवजी,
जित शत्रु राजाने विजया रानी को आतम ज़ात त्वमेवजी।
श्री जिन अजित नमो जयकारी ॥ १ ॥

यह गवान् अजित ना की प्रार्थना है। भगवान् जित-नाथ नाम के वि में भ ोग बहुत बड़ी ल्पनाएँ करते हैं। उनकी र्थना महापुरुष ानन्ददायी वि ार दे ते हैं। ार उनसे बहुत बड़ी आ ायें र ते हैं।

भगवान् की र्थना में ए विशेषण जयकारी भी है। जित नाथ न्त हैं। उन्होंने पनी ात्मा में रहे हुए ाम क्रोध ोभ ोह मत र दि ुओं ो जीत लिया है जो त्रु न ल से उन उन्नति थे और ष्ट दिया ते थे।

भगवान् अपने न्तरंग शत्रुओं को जीतकर स्वयं देवों के भी देव बन गये और जगत् जीवों के लिए भी देवाधिदेव बनने का मार्ग प्रश बना गये। इसी मार्ग से अर्थात अन्तरंग शत्रुओं को जीतने से त्मा का परम कल्याण हो कता है।
क्रोधादि दुर्गुण आत्मा में रहे हुए गुणों को दबा रहे हैं। आत्मा का दूसरा कोई शत्रु नहीं है। ये दुर्गुण ही वा विक त्रु हैं।

आप लोग देवों की सेवा करने के लिए दौड़े जाते हो किन्तु यदि अपने भीतर में रहे हुए काम क्रोधादि शत्रुओ को जीत लोगे तो देव स्वयं आपके चरणों में गिरने के लिए तत्पर रहेंगे। शा में कहा है—

देवा वि तं नमंसंति जस्स धम्मे सया मणो।

जिसका मन सदा धर्म मे लीन रहता है उसको देवता लोग भी नमस्कार करते हैं। देवता आपको नमस्कार करने के लिए उत क हैं यदि आप विषय विकार और काम क्रोध को जीत लेते हैं। किन्तु खेद है कि आप देवों के देव न बनकर देवों के दास बन रहे हैं। देवों से भी मांगते हैं, उनकी मिन्नतें मानते हैं।

बाहर के देवों के पास भटकते फिरते हैं किन्तु अपने भीतर अनन्त शि यां छिपी पड़ी हैं उनको प्रकट करने की कोशिश नहीं रते।

ज से पर्वाधिराज पर्यूषण पर्व ारम्भ होता है। यह पर्व आत्मा में रहे हुए क्रोधादि शत्रुओं को जीतने के लिए है।

तः इन दिनों भगवान् अजितनाथ को इस प्रकार भजो कि जिससे भीतरी शत्रुओं को जीत सको। केवल हने में ही न रहो मगर कुछ करो भी। शा में कहा है—

वाया वीरियमित्तेणं समासासोन्ति अप्पयं।

यानी वाक्शूर न बनकर मशूर ो। केवल बड़ी बड़ी बातें के पनी त्मा ो न्तुष्ट न रो। बातों से काम नहीं लेगा। क्रिया किये वगैर त्मा ा उद्धार नहीं हो ा। प है--

पन्थड़ो निहारुंरे बीजा जिन तणारे अजित अजित गुणधाम।
जे ते जित्या तिणहूं जीतियो रे पुरुष किसो मुझ नाम॥ पंथड़ो॥

हे ो! जि क्रोधादि त्रु ों ो ापने जीत लिया है वे आप से हार ा र पर हमला र रहे हैं। जिस प्रकार ारा हु ा कुत्ता किसी बड़े कुत्ते से पराजित हो र छोटे ुत्ते पर पना बल अज है और अपनी हार छीपाता है। उसी प्र ार से हार ा र ये काम क्रोध और ईर्ष्या द्वेष पर हम ा र रहे हैं। मु जीतकर पनी प मिटाना ाहते हैं। प्रभो! मैं ा पुरुष कि तेरे से हारे हुए त्रु मुझे जीतना हते हैं। मैं तेरा दा तः भे भी हारना तो न चाहिए।

भगवन्! मैं इ विषम ा में पैदा हुआ तः वि ारों ो जीतना ठिन मालूम होता है। दूसरी ब मेरे पा

केवल चमड़े की आंखे हैं जो कभी कभी धो । भी दे दिया करती हैं।

चरम नयन करी मारग जोवतां रे, भूल्यो सगलो संसार ।
जे नयन करी मारग जोइये रे नयन ते दिव्य विचार ॥

हे अन्तर्यामी । चर्म चक्षुओं से मार्ग दे कर लता हूं अतः संसार में भटक रहा हूं। मड़े की आ गों से देखी हुई वस्तुमें बड़ा फर्क होजाता है । जसे किसी मैदान में ड़े होकर दे ने से पृथ्वी और आकाश मिले हुए मालूम देते हैं। किन्तु वास्तव में मिले हुए नहीं हैं। क्यों कि उतनी ही दूरी पर और जाकर दे गे तो भी मिले हुए ही मालूम देगे। रेल्वे लाईन पर सीधे होकर दे ने से दोनों पटरीयां बहुत दूरी पर एक मिली हुई मालूम देती हैं। रेल में वैठे हुओं को किनारे के वृक्ष दौड़ते हुए नजर आते हैं। सपाट मैदान में पानी न होते हुए भी पानी जैसा मालूम पड़ता है। मृग मरी का ग्रंथों में प्रसिद्ध ही है। इस प्रकार इन आं ों से जो नहीं है वह भी दिखाई देता है और जो है वह भी नहीं दि ाई देता ! इन्द्रिय जन्य ज्ञान प्रामाणिक नहीं हैं। कारण कि उसमें दोष होने की पूरी सम्भावना रहती है।

इस प्रकार की चमड़े की आंखों से मैं भग न् जितनाथ वताया हुआ मार्ग कैसे देखू ? अंतरंग शत्रुओं को जीतने उपाय चर्म चक्षुओं से दे . जाना भव नहीं है।

उतराध्ययन सूत्रमें भगवान् महावीर ने गौतम स्वामी से कहा है-

न हु जिणे अज्ज दीसई बहुमयादिस्सई मग्गदोसिअं ।
संपइ नेयाउयपहं समयं गोयम मा पमायण ॥

हे गौ म ! तू छद्‌मस्थ है। छद्‌मस्थ पूर्ण ानी होता है ः वह पूर्ण ानी ो नहीं दे स ता। वह जिनपने ो नहीं दे सकता। जिनत्व देखने के लिए दिव्य दृष्टि ाहिए। किन्तु गौतम तू ि न्ता मत कर। जिनत्व, नहीं दे ता किन्तु जिने रों का बताया हु । मार्ग तो दे ता है। उस मार्ग पर वि ार कर कि वह स है या नहीं। वह मार्ग स्याद्वाद से परिपूर्ण नैकान्ति मार्ग है। उ मार्ग ो पना ने से जिनत्व स हो जाता है।

ार ान के धनी गौतम स्वामी के लिए भी जब ि नत्व अदृष्ट है तो हम कि गिनती में हैं अतः ह उनके ारा बताया हुआ मार्ग पनाना ाहिए। मड़े ां ों से नहीं किन्तु दिव्य विचार रूपी नेत्रों से उ मार्ग ा ि ार रना चाहिए। दिव्य नेत्रों से किसी बात को किस प्र ार दे ना ाहिए इ के लिए ए किस ा नाता ।

दि ी में वाद ाह अ र राज्य रता था। उ ा दि हिन्दू था। हिन्दू दिवान ो दे र न्य रि मं ारी मन में रते थे कि य नापा हिन्दू हम ोगों में से ा घु ा है। अ बर दिवान बुद्धि ा और

पर बहुत खुश था और उसे अपने राज्य का एक स्तम्भ मानता था। किन्तु मुसलमान उससे बहुत नाराज रहा करते थे क्यों कि दिवान पद के नाते उसका अदब रखना पड़ता था। कभी कभी बादशाह दिवान की बुद्धिमत्ता के चमत्कार लोगों को बताया करता था और उनको नीचा दिखा दिया करता था। फिर भी उन लोगों को मजहबी झनुन चढ़ जाया करता था।

एक वार ताजियों के त्यौहार पर वादशाह ने दिवान से कहा कि आज मैं अमुक ओलिया के यहां रात्रि को जाने वाला हूं। तुम को भी मेरे साथ चलना है और मेरी तरह जियारत करनी होगी। यह नकर सब सलमान बहुत खुश हुए कि इस काफिर को बादशाह सलामत ने अच्छा हुक्म दिया है। या तो यह जाने से इन्कार कर देगा या जायगा तो जियारत न करेगा। इसका हिन्दुत्व नष्ट होने का मौका आया है। देखते हैं क्या होता है।

बादशाह का हुक्म नकर वजीर ने कहा—अच्छी बात है। हजूर के साथ हाजिर हो जाऊंगा। घर आकर वजीर विचार में पड़ गया कि क्या करना हिए। न जाना भी ठीक न होगा और अपना धर्म छोड़ना भी ठीक नहीं हैं। वजीरी तो कभी भी मिल सकती है मगर धर्म का मिलना महा कठिन है। यह विचार कर उसे एक उपाय सूझ गया। जाना भी और इन लोगों को ऐसी शिक्षा देना कि आयन्दा के लिए ऐसी हरकत न करे और मुझे याद रक्खे।

उसने शहर के होशियार मोचियों को बुला र हा कि मेरे लड़के के लिए अच्छी से च्छी ए जूता जोड़ी बन र लाओ। ऐसी जोड़ी लाओ कि जिस ानी की दू री जोड़ी न मिले सलमा सितारा और मोती आदि गा र लाना। रुपयों की चिन्ता मत करना। जितना कहोगे उतना मो दिया जायगा।

वजीर की आ ानुसार मोची एक बहुत बढ़िया और बहुमुल्य जोड़ा बना र लाये। जिसकी कीमत ला ों रुपया थी। वजीर बादशाह के साथ र ो ओलिया के स्थान पर हाजिर हो गया है। उसे दे र सलमान फूले न समाते थे कि आखिर यह ।फिर लमान हो ही गया। उनकी बातें सुनकर वजीर मन ही मन प्रस हो रहा था। उसने ोलिया के मकबरे पर फूल आदि जो चढ़ाने थे चढ़ाये और जाते वक्त धीरे से अपनी जेब में से उ जोड़े का एक जूता वहीं ए तर दिया।

जब व लोग चले गये और भीड़ मिट गई तब वहां के मुजावर की नजर उ बहुमुल्य जूते पर पड़ी। उसने दूसरे को दि ाया। दूसरे ने तीसरे ो दि । और इ तर होते होते यह ब ल गई कि रा ो जिया से खु हो र ओलिया । खुद त री ाये थे। वे ाते समय अप ए जूता भूल गये हैं यही उनके ाने सबूत है। दू रे । ऐसा जूता हो नहीं । और हो भी तो यहां से । । है।

एक ने कहा—हां जनाब रातको ओलिया साहब जरूर त री लाये थे मैंने खुद कबर का गलेफ हिलते दे । था। दूसरे ने कहा—मैंने उनका पैर हिलते दे । है। तीसरे ने कहा—मैंने उनके हाथ देखे हैं। इस प्रकार गपगोला बढ़ता गया। और बात पक्की हो गई। सबूत में एक जूता था ही।

ज र लोग उस जूते को सोने की थाली में र कर गाजे बाजे के साथ बादशाह सेवा में लाये। क्योंकि ऐसी दिव्य चीज बादशाह के यहीं शोभा दे सकती है।

बादशाह ने पूछा—यह क्या लाये हो? तब मुजावर ने सारा किस्सा ना दिया कि आपके साथ वजीर साहब भी तशरीफ लाये थे। उनकी जियारत से प्रसन्न होकर र को ओलिया खुद आये थे। सबूत में यह जूता पेश है। वे एक जूता वहीं छोड़कर चले गये थे। बादशाह ने सोचा अभी ये लोग भनुन में चढ़े हुए हैं। यदि मैं भी इनके जैसा न बनूंगा तो ये लोग कुछ कर बैठेंगे। इस लिए बादशाह ने जूते का सत्कार किया और उसे तख्त पर र दिया। तथा उसके सामने लोबान आदि जो कुछ खेना था खेया।

इतने में वजीर भी वहां आपहुंचा। बादशाह ने कहा कि वजीर! तेरी जियारत से खुश होकर रात को ओलिया साहब स्वयं तशरीफ लाये थे और जाते वक्त अपना एक जूता वहीं पर छोड़ गये थे। वही यह जूता है। तू भी इसको सलाम कर।

र ने उ र या–हजूर ! यह क्या निश य कि यह जूता ओलिया साहब का ही है। किसी दूसरे शैतान का भी हो स । है मैं तो ाप ो सलाम र सकता । इसको लाम नहीं रना । ।

बाद ाह ने वह सारी कीकत ह सुनाई जो जूते के बन में हुई थी। किस तरह किसी ने ओलिया साहब का पैर देखा था और किसी ने हाथ ादि।

वजीर ने हा–मैं भी इस जूते को देखू तो ही कि कैसा है। वजीर ने पर से जूता उ लिया और गौर से देखने गा। देख र हने गा–बाद ाह सलामत गजब हो गया। यह जूता तो मेरे लड़के । है। आप जैसे बाद ाह मेरे लड़के के जूते को लाम रें यह जब हैरानी बात है।

यह सुन र जूते के जुलूस में री हो र ाने ले झनूनी लोग हने लगे कि हजूर ! यह ाफिर जियारत में लल रता है। इ को राज्य से नि । देना ाहिए।

वजीर ने हा--हजूर ! हाथ गन ो क्या आरसी। मैं ने घर से इ की जोड़ । दूसरा जूता मंगवा देता ।

इतना ह र वजीर ने पने नौ र से दू रा जूता गवा लिया और ब से हा कि दे ो यह इसी की ोड़ । है न ? तब झेंप । र ब लोग हने लगे कि हजूर ! यह ाफिर दरगाह री में या ही क्यों ।। दशाह ने हा

कि यह मेरे हुक्म से आया था इसमें इसका कोई गुनाह नहीं है। मगर तुम लोग कैसे मूर्ख हो जो इ र बात का बतंगड़ बनाकर जूते का जुलूस निकाल कर लाये और को भी शरमिन्दा बनाया।

वजीर ने अपनी सफाई पेश कर दी कि मेरे साथ मेरा लड़का भी आया था वह जाते व जल्दी में पना एक जूता वहीं पर भूल गया। मैंने हजूर को यह व हना इसलिए वाजिब न समझा कि पहली बार ही मैं दरगाह में आया था। और जूते चोरी की बात कहता तो हजूर को मेरा एतबार न होता।

मित्रों! किसी बात का पूरा निर्णय किये बिना केवल लोक अफवाह का शिकार होकर उसे मान लेना कितनी लज्जाजनक बात होती है, यह ऊपर के किस्से से रोशन है।

कहने का मतलब यह है कि लोग वस्तुतत्व का निर्णय नहीं करते और भेड़िया धसान की तरह प्रवाह में बह जाते हैं। मैंने रतलाम में भोपा लोगों को धुनते ए दे। है। वे धुनते धुनते तालाब पर जाते हैं और ज्यों ही तालाब के गंदे पानी के छींटे उन पर गिरे कि उनका देवता न मालूम क हवा हो जाता है। तालाब भी कै। कि जि में स्त्रियां और बच्चे आदि नहाते और गन्दगी फैलाते हैं। कहिये देवता बड़े हुए या तालाब का गन्दा पानी? यह ब धींग देखकर मैं इस निर्णय पर पहुंचा हूं कि लोग ढोंग बहुत करते हैं।

चर्म ओं से देखी हुई बात में भी इतना फर्क पड़ जाता है तो बिना देखी हुई, के सुनी नाई बात में कितना अतर पड़ स ता है। : दुनिया । बाहरी दि ।वा देखकर न स्वयं भूलो और न दू रों को भुलावे डालो।

वजीर थन सुनकर सब लोग हने लगे—क्या जूते को ।म रने ले हैं? वजीर ने हा-नहीं, आप लोग जूते को म रने वाले नहीं हो किन्तु पनी भूल को लाम रने वाले हो। प लोगों से ऐसी अने भूलें हुवा रती हैं। तः ।यन्दा ।वधानी र ने की जरूरत है।

वजीर की नसीहत भरी बात नकर बादशाह तथा दूसरे सब लोग खूब खुश हो गये।

यह ब हुई हो न ई हो इससे हमें कोई प्रयोजन नहीं है। मेरे कहने । ।वार्थ यह है कि किसी वस्तु । निर्णय बहुत ।वधानी और दिव्य नेत्रों से रना ।हिए। किसी के कहने मात्र से न म ना ।हिए।

।न् महावीर गौतम स्वामी से हते हैं कि वली ही केवली को दे कता है। दूसरा छद्म व्यक्ति नहीं देख कता। फिर केवली को से । । हिए इस । उ र यही है कि केवलिनिर्मित शास्त्रों ।रा उ । स्वरूप म- ।हिए। यदि कोई यह कहे कि हम ंस्कृत जानते प्राकृत, तो ।स्त्रों को कैसे म ते हैं। जब ।र नहीं

जानते तो किसी के पीछे चलने का मार्ग ही हमारे लिए शेष रह जाता है।

किन्तु भगवान् कहते हैं कि किसी बात का निर्णय करने के लिए बहुत दूर जाने की जरूरत नहीं है। अपनी ात्मा से ही निर्णय कर लो। वह तुमको अच्छी से अच्छी सलाह देगी। वह आपको सच्चा मार्ग बतायेगी। जो बात आत्मसाक्षी से ठीक ठहरे उसे मानना चाहिए और जो आत्मसाक्षी से ठीक न उतरे उसे न मानना चाहिए। आत्मा के कांटे में बात को तौलकर निर्णय कर लेना चाहिए। कहा है:—

प्रत्याख्यानञ्च दानञ्च सुखदुःखे प्रियाप्रिये।
आत्मौपम्येन पुरुषः प्रामाण्यमधिगच्छति ॥

आप में आत्मा है। आप ऊंचे से ऊंचे प्राणी हो। फारसी भाषा में कहावत है कि इन्सान कुदरत का बादशाह है। आपका इतना ऊंचा पद है। यह पद आपको केवल हाथ पांव और कान नाक के कारण नहीं मिला हुआ है। आपके शरीर के समान शरीर का ढांचा तो बन्दर का भी है। बल्कि एक पूंछ और अधिक है। फिर भी बन्दर मनुष्य नहीं कहलाता क्योंकि उसमें आत्मसाक्षी से सत्यासत्य निर्णय करने की ि नहीं है। मैंने महामना पं. मदनमोहन मालवीय के एक भाषण में पढ़ा है कि यदि मनुष्य अपनी आत्मा को न भूले तो उसमें वे सभी गुण मौजूद हैं जो एक महापुरुष होने के लिए आवश्यक होते हैं।

यह मनुष्य रीर मोक्ष । द्वार है। इस रीर में रहने वाले व जीव मो के अधि ारी हैं। आपमें वे है। हिताहित । निर्णय करने वा । ान वेक हा ज । हैं। इस विवे के द्वारा प्रत्ये बात ो तोलो और तौल र आच-रण रो।

उक्त श्लोक में प्रत्याख्यान, दान, , दुः , प्रिय और अप्रिय को आत्मसाक्षी से तौल र निर्णय करने की बात ही हुई है। अमुक । में प्रत्याख्यान की बात कही हुई है किन्तु आपकी त्मा में प्रत्याख्यान है या नहीं इसको देखो। से कहा है कि क्रोध न करना चाहिए। र्थात् क्रोध । त्याग करो। ।प पनी ।त्मा के लिए ।र करो कि मेरे में क्रोध है या नहीं। और यदि क्रो है तो उस । त्याग है या नहीं। यदि आप सदा के लिए क्रोध का त्याग नहीं र कते तो म से कम इन ।ठ दिनों लिए तो जरूर त्याग रो। ये ।ठ दिन आपकी परीक्षा के लिए हैं। आपको क्रो आता है या नहीं और यदि अ । है तो आप उ पर काबू र सकते हैं या नहीं इस ब र् हान है। ।प ो इ परी । उत्तीर्ण होना है। क्रोध भाव । दोष है। इ दोष ो पने पर हावी न होने देना ।हिए। और म से म क्रोध । प हाथापाई ार गाली गलौ त ु- ने देना ।हिए।

ब इ बात । वि ।र रें कि ो । प्रत्याख्यान त्याग ।प ।त्मा ो । गता है। यदि आप पर ोई

क्रोध करे तो आपको उसका क्रोध अच्छा लगेगा या नहीं ? यदि आपको कोई गाली देता है तो गाली देनेवाला कैसा लगेगा ? आपको न क्रोध अच्छा लगेगा और न गाली सुनना ही। इस बात का निर्णय आपने स्वयं ही कर लिया कि क्रोध और गाली बुरी चीज है। जो बात आपके लिए बुरी है वह व दूसरों के लिए भी बुरी होगी इसमें आपको क्या संदेह रहा ? यह तो मानी हुई बात है कि जिस प्रकार का वर्ताव हम अपने लिए पसन्द नहीं करते वैसा बर्ताव दूसरों के साथ भी न करें। यह प्रत्याख्यान आत्मौपम्य हुआ।

किसी के द्वारा हम पर चिढ़ना क्रोध करना या गाली देना हमें पसन्द नहीं है तो इ में से यह फलितार्थ निकला कि ये काम बुरे हैं। और चूंकि जैसी हमारी आत्मा है वैसी ही दूसरे की आत्मा भी है। जो बात हम अपने लिए अच्छी नहीं समझते वह बात दूसरों के लिए कैसे कर सकते हैं। यह आत्म प्रमाण है। आत्मा की गवाही से यह सिद्ध हुआ कि दूसरों को कष्ट पहुंचाने जैसा बर्ताव करना बुरी बात है। से पर्यूषण के पवित्र दिनों के लिए तो इस बात का नियम लो कि हम दूसरों पर ऐसा न करेंगे।

आठ दिनों के लिए यदि ज्यादा न कर को तो इतना तो करो कि क्रोध को सफल न होने दो, शील व्रत का पालन करो, रात्रि भोजन न करो, आरम्भ समारम्भ मकान बनवा-नादि कार्य मत करो, किसी के साथ विश्वास घात मत करो, झूठ न बोलो, बिना छना पानी न पीओ और न बिना पानी से स्नान करो।

मत ब कि जैन । जि बात । उपदे देते हैं वह केव ास्त्रीय बात ही हीं है किन्तु ापकी ात्मा आ । भी है । इस । बताई हुई बातों । प्रत्याख्या रने से ाप ो वि सी प्रकार हानि नहीं हो कती इ गारंटी देता । ।

हां, ऐसे भी प्रत्याख्यान होते हैं जिन ो ग्रहण रने से हानि होती हैं । ऐसे प्रत्याख्यानों में आत्मा ाक्षी नहीं होती । ात्मा उस चीज ो बूल नहीं रती । ैसे किसी ने यह नियम ले लिया कि र्थ में । र बकरे बलि । गा । ि न्तु यह प्रत्याख्यान हमारी प्रकृति से नहीं ाता । क्यों वि यदि कोई हमारा खुद । बलिदान करने की बात कहे तो नते ही हम बड़ा जायंगे । बलिदा । ब रा । हता है सो निये—

कहे प दीन सुन य के ैया मोहे,
होमत ताशन में ैन सी बड़ाई है ।
स्वर्ग सुख मैं न चहूं देही भे यों न कहे,
घा र रे यही मन ई है ।
जो तुम यह जानत हो वेद यों है,
य जल्यो जीव पावे र्ग सुखदाई है ।
डारे यों न वीर या पने ही कुटुम्ब को,
मोहे जो ावे जगदी दुहाई है ।

यदि से । जावे वि मैं तुझे देवता र तेरा ल्याण , भे स्वर्ग मिलेगा तो

कहेगा। यही कि मैं घास पात ।कर यहीं रहना पसन्द करता हूं ।मुझे स्वर्ग नहीं चाहिए। यदि ऐसा करने से स्वर्ग मिलता है तो अपने कुटुम्ब का बलिदान करके उसे स्वर्ग पहुंचा दे।

अब यह बात अपनी आत्मा से तौलो। यदि कोई आपसे कहता है कि हम तुमको स्वर्ग में पहुंचाने के लिए तुम्हारा बलिदान करना चाहते हैं तो आप क्या उत्तर देंगे? कम से कम आप अपना बलिदान देना कभी न चाहेंगे। इस बात का निर्णय आपने आत्मप्रमाण से किया है। आत्मा की साक्षी से ही ऐसा कहा है। यह आत्मसाक्षी से प्रत्याख्यान को जानना हुआ।

अब आत्मसाक्षी से दान की बात कहता हूं। दान को आत्मसाक्षी से देखो। यदि आत्मा के प्रामाण्य से दूसरों पर दान की प्रामाणिकता घटयेंगे तो कभी भूल न होगी। शास्त्र में कहा है—

दाणाण सेट्ठं अभयप्पयाणं

सब दानों में अभयदान सर्व श्रेष्ठ और प्रधान है। यह विचार करो कि यह दान शास्त्रकारों ने अपनी ओर से उत्पन्न किया है अथवा आपकी आत्मा ने उत्पन्न किया है। मान-लीजिये, आपको फांसी दी जाने वाली है। एक आदमी आपको राज्य देना चाहता है और दूसरा आपकी फांसी छुड़ाना चाहता है। दोनों बातों में से आप क्या अधिक पसन्द करेंगे। मेरा ख्याल है आप फांसी छुड़ाना अधिक

पसन्द रेंगे योंकि जीवन ही रहे तो राज्य किस ाम
ा ! ा यह थन ात की साक्षी से ही हु ा न ?
अपने पर से दूसरोंके लिए भी सो ो कि मुझे सब जीवों ो
भयदान देना है। ये आठ दिन वि षरूप से यदान देने
के लिए हैं।

इ प्र र प्रिय प्रिय और दुः के लिए भी
मझो। जो त ापको प्रिय गेगी वही दू रे को भी
लगेगी। जिस प्रकार ो सुख प्यारा है और दुः ारा
है उसी रह ब ो प्यारा ैर दुः ारा है। ऐसा
म कर यह ावना करो कि हे भगवान् ! मैं पने
दुख तो सहन र मगर पराया दुः कभी सहन न करूं।
अपने ो दुः में डाल र भी पराये का दुः दूर करने की
चेष्टा करूं। दूसरे को भी दुः न दूं। यही हिंसा है। यह
हिंसा धर्म ा से नहीं निकली है मगर ात्म में से
निकली है।

यदि ए आदमी दो सूइयां लेकर एक पने पैर में
चुभो है और दूसरी किसी दूसरे व्यक्ति के पैर में चुभोता
है तब उसे पता लगता है कि जैसी पीड़ा मुझे होती है वैसी
ही पीड़ा दूसरे ो भी होती है। मगर लोग अपनी पीड़ा तो
याद र ते हैं किन्तु दूसरों की भूल जाते हैं। दूसरों की पीड़ा
ा ख्याल नहीं र ते। दूसरों को पीड़ा पहुंचाते वक्त आत्म
ाक्षी की बात याद नहीं र ते। केवल अपना ही सुख दे ते
हैं। पने पेश आराम ैर मौज मजा ो देखते हैं। किन्तु

उनके पीछे कितने व्यक्तियों वा जीवों को कष्ट पहुंच रहा है इ पर तनिक भी याल नहीं करते। धर्म करने की इच्छा ले को दूसरे के दुः का याल करना नितान्त व- श्यक है।

ापके घर मेहमान आये हैं। आपने बढ़िया रसोई ने कम दिया है। आपकी पत्नी रसोई बनाकर लेती है और निर्णय कर लेती है कि जो ची झे अच्छी लगी है वह मेहमान को भी अच्छी लगेगी। इस में यह सोचने की बात है कि उस बाई ने किस आधार पर यह निर्णय किया कि मेहमान को रसोई पसन्द आ जायगी। अपनी आत्मा साक्षी से ही बाई ने न ी किया कि मेहमान को मेरी बनाई रसोई रुच जायगी।

भो के विषय तक तो यह नियम याद रहता है। किन्तु यदि यही नियम सास ससुर देवर जेठ देवरानी जेठानी और बहु के साथ बर्ताव करते व भी याद र । जा तो कित अच्छा हो। यदि यह नियम याद रक्खा जाय तो पिता पुत्र, पतिपत्नी, सास बहू, देवरानी जेठानी और भाई भाई आदि में कड़वास उत्पन्न होने का भी प्रसंग ही न आवे।

मित्रों! आत्मसाक्षी के प्रमाण को याद न रखने से संवत्सरी पर्व होने पर भी लोग उनसे खतम मावणा नहीं करते जिनसे उनका वैर विरोध रहा है। पृथ्वी पानी वायु और अग्नि के जीवों को खमायेंगे, वनस्पति और त्रस जीवों

ो मायेंगे, र निगोर और तिर्यञ्च तथा देवों ो भी मायेंगे। मगर जिन मनुष्यों या कुटुम्बियों से वैर विरोध है उनको न मायेंगे उनसे अपने परा की क्षमा या ा न रेंगे। यह मत मावणा नहीं है किन्तु न ापना की जा र है। तः अपनी आत्मा के सब के दुः ो म कर वैसा ही वर्ताव करो जैसा तुम ाहते हो कि दू रे तुम्हारे ाथ रें। यही धर्म रहस्य है।

ात्मनः प्रतिकूलानि परेषां न माचरेत्

यदि ह ो गाली नना पसन्द नहीं है, पमानित होना और हि ारत दृष्टि से दे ा ज ा प ंद नहीं है, ातें घूसे और थप्पड़ ाना अच्छा नहीं लगता है, मारे की कोई वस्तु ोरी ली ज बर्दाश्त नहीं है, मारी वहिन बेटी की इज राब होते नहीं देख कते तो हमारा ज है कि पनी तर से दूसरों के प्रति ऐसे वि न करें। म से म पर्यूषण त के लिए त वश्य ध्यान रख ो।

चरित्र

से हा नाओ, ही बित ब ।
रानी बोली मतिमन्द तोरी, छली सुदर्शन त रे॥ धन.॥
छल र तुझको . ने तू नहीं ई भेद।
त्रि त्र भेद न मझे व्यर्थ हुवा तु खेद रे॥ .॥
मुझसे जो नहीं छला ायगा वह नर बसे शूर।
सुर असुर नागेन्द्र नारि से टले उ ा नूर रे॥ .॥

कपिला के छल में सुदर्शन नहीं फँसा। वह उसके साथ चरित्र से भ्रष्ट नहीं हुआ। उसने कपिला को ऐसा भाव बताया कि कपिला ने स्वयमेव उसको अपने घर से धिक्कार पूर्वक विदा र दिया। इस बीती घटना की बात आज पुनः ताजी हो रही है। रानी के साथ कपिला मेला देख रही है। मनोरमा भी उनके पीछे अपने रथ में सवार है। मनोरमा को देखकर पहले कपिला के मन में अच्छे भाव पैदा हुए थे। किन्तु बाद में रानी के मु से उसका परिचय पाकर वह उसकी मजाक उड़ाने लगी और दोष देखने लगी। नपुंसक पति की पत्नी अपने को सती के रूप में पेश कर रही है। यह जानकर कपिला को बड़ा खेद है, कपिला अपने दूषित नेत्रों से सब को दूषित देखती है। उसका एकमात्र ध्येय ऐश आराम और मौज मजा उड़ाना है। वह जीवन की सफलता विषय वासना की पूर्ति में मानती है।

कपिला सोचती है—जीवन जो मिला है वह आनन्द लूटने के लिए है। न मालूम अपने को समझदार मानने वाले लोग क्यों इन्द्रिय सुख की निन्दा किया करते हैं। लोग निन्दा करते हैं इसी भय से ये काम छिपा कर करने पड़ते हैं।

कपिला का कथन सुनकर रानी कहने लगी कि तू मूः है। यह स्त्री बहुत धर्मात्मा है और सती है। तू जिस प्रकार शरीर पाने का अर्थ मौज उड़ाना करती है उस प्रकार दूसरे नहीं करते। मनोरमा और उसके पति सेठ सुदर्शन जीवन की सार्थकता इन्द्रियों को काबू में करने में मानते हैं।

बुरा ार्य रने वाले लोग भला रने वालों ाो अच्छा हीं म ते। वे अपने को ही अच ा मानते हैं। वीड़ी पीने वाले लोग वीड़ी न पीने लों ाो मूर्ख म ते हैं। वे यह नहीं सो ते कि मूर्ख हम हैं जो वीड़ी पीते हैं। मनुष्य रीर को इस गन्दी चीज के लिए ो देना हां त उचित है। ई लोग पने कुल ंर ार ाो छोड़ र राब ाो लाल शर्वत कह कर पी जाते हैं और जो न पीते हैं उन निन्दा रते हैं। ई लोग दुराचार सेवन रके उ की सराहना किया करते हैं। किन्तु दुरा ार ा सेवन कितने अनर्थ कारण बनता है, कुछ कहा नहीं ा ।

भी इन्हीं दिनों में आपके यहीं राजकोट की एक दुः द घटना स्त रूप से सुनने में ाई है। एक स्त्री सम्बन्ध अपने यहां झाड़ने के लिए आने वाले भंगी के ा हो गया। एक न उसके दह पन्द्रह साल के के ने अपनी ाो भंगी के ाथ व्यभि ार सेवन रते ए प्रत्य पनी आ ाों देख लिया। लड़ पढ़ा लि ा और होशियार । किन्तु उसकी मां दुरा ार में इतनी अंधी हो गई थी परदेश गये हुए पने पति को भी भूल गई ार घर में रह वाले पुत्र ा ाल भी न की। अ स्मात् ए दिन का बाहर से घर में ागया और पनी माता ा भंगी साथ सर्ग दे लिया।

पुत्र ने पनी माता को सम या कि माता यह ठी नहीं है। अपने कुल के लिए महान् लङ्क की व है।

ने सोचा कि यह मेरा भेद जान गया है तथा अब आयन्दा लिए मेरे कार्य में वि रूप हो गया है। अतः किसी तरह इसको मार डालना चाहिए। उसने भंगी की सहायता से एक दिन अपने पुत्र को मारकर एक गठरी में बांध कर मेड़ पर र दिया ताकि प्रातःकाल भंगी अपनी मैले की गाड़ी में डाल कर ले जा सके।

दैवयोग से उसी दिन उसका पति भी परदेश से आ गया। आते ही अपने पुत्र के सम्बन्ध में पूछा कि लड़का कहां गया है। उसने उत्तर दे दिया कि कहीं बाहर गया है अभी आ जायगा। आप भोजन करिये। बाप ने कहा—बेटा आ जायगा फिर भोजन कर लूंगा जल्दी क्या है। किन्तु स्त्री ने बहुत ग्रह करके पति को भोजन करने के लिए बैठा दिया।

प छिपाया न छिपे छिपे तो मोटा भाग।
दाबी दूबी न रहे रुई लपेटी आग॥

पाप को छिपाने के लिए कितनी ही कोशिशें की जाय किन्तु वह कभी न भी प्रकट हो ही जाता है। जब उस स्त्री पति भोजन कर रहा था कि छत में से खून की बून्दे उसके कमीज पर गिरीं। खून की बून्दे दे कर पति ने पूछा कि उपर से खून क्यों टपक रहा है? स्त्री ने कहा—बिल्ली ने चूहा मार दिया होगा। मगर बूंदे बहुत गिरने लगीं तब वह पुरुष मेड़ पर गया और वह गठरी पड़ी ई पाई। पति को मेड़ पर जाते देखकर स्त्री बाहर का दरवाजा बन्द करके

लिस में दौड़ी गई और रिपोर्ट   रदी कि मेरे प   ने मेरे पुत्र ो र   ला है।

लि   आई और   ड़के के बाप ो   . लिया। आखिर में   व भेद खु   गया और   ी त   भंगी ो   ा हुई।

यह दुराचार ा ही परीणाम था कि   ाता ने   पने तक को मार डाला।   धिक   ट   मट   से रहने से भी दुराचार में   द्धि होती है।   रित्र की र ा   रनी हो तो   ादगी को अपनाँ   ाहिए।

पि   से   भया रानी कह   है कि   ार   ा यह नि   है कि बुरा   ाद   बुरे आदमियों की प्र सा किया   रता   और   च्छे   ादमियों की निन्दा। तू सेठ की निन्दा   रती   और उसे हींजड़ा   ाती है। मगर तू   ली गई है। तेरी   ब होशियारी धू   में मिल गई है। सेठ नपुंस   नहीं है। तू सेठ के पुत्रों ो ध्यान से दे   कि उनकी   ल सेठ से मिलती है या नहीं। मेरे   या   से तो ये   ड़के सुदर्शन के ही अनुरूप हैं।

भया के   थनानु   ार   पिला ने गौर से पांचों ल . ों ो दे   ा। दे   र   हने लगी कि ये   ड़के तो ऐसे मालूम देते हैं। जैसे सेठ स्वयं अपने पांच रूप धारण   रके बैठे हैं। मुझे सेठ ने झूठ बात   क्यों   ही।   पिला ने कहा--तेरे माया जाल से छुटने के लिए ही सेठ ने झूठ बो   र   ा पि छुड़ाया मालूम पड़ता है।   पिला! तू   पने को तिरि

में बहुत प्रवीण मानती है। किन्तु तेरे फेल हो जाने से मालूम हो गया कि अभी तू तिरिया चरित्र में पूरी कुशल नहीं है। रानी के वचन सुनकर कपिला कहने लगी कि जो सुदर्शन मेरे जाल से भी छुट निकला है तो वह किसी अप्सरा या देवांगना से भी छला जाने में समर्थ नहीं है।

कपिला की यह अभिमान भरी बात सुनकर अभया कहने लगी कि तू अपनी हार क्यों नहीं मान लेती। तू अपने लिए ही यह क्यों न कहती कि मैं त्रिया चरित्र मे पूरी होशियार नहीं हूं। त्रिया चरित्र को जानने वाली तो इन्द्र और मुनियों को भी डिगा सकती है।

तिरिया चरित्र बहुत गजब कर डालती है। इसीलिए शास्त्र कारोंने ब्रह्मचर्य की नव वाड़ में स्त्रियों के परिचय से पुरुप को रोका है। शा में कहा है कि सौ वर्ष की बुढिया जिसके नाक कान कटे हुए हों यदि किसी मकान में हो तो ब्रह्मचारी को उसके साथ अकेला नहीं रहना चाहिए यह कभी मन में अभिमान न ल । चाहिये कि मैं इन्द्रियों का दमन करनेवा हूं अतः मेरा क्या नुकसान हो सकता है। मन है, इसे बदलने में देरी नहीं लगती। शास्त्रकारों ने जो जो नियम बनाये हैं वे निष्कारण नहीं बनाये हैं। जो घटना होना शक्य होती है उसी को टालने के नियम बनाये हैं। अतः स्त्री संसर्ग से बचके रहना ही अच्छा है। सुदर्शन इस बात को समझ गया था अतः एकान्त में रहकर धर्म ध्यान करने लगा।

श्री चारांग सूत्र की टी । में जिक्र है कि ए बार ए केवली के शिष्यों को जङ्गल में प्यास गी थी। मार्ग में ए चित्त । ला य आगया। अचि नी का ता व भी हो ता है। केवली ने फरमाया कि यद्यपि इस ता व । नी चित्त है फिर भी मैं म लोगों को यह पानी पीने की । । नहीं दे कता। रण मैं तो वल न के जरिये यह जा । कि यह पानी अचि है। किन्तु जो लोप पूर्ण नी नहीं हैं वे भी गर ता बों का पानी पीने ग जायंगे तो अनर्थ हो ता है। : व्यवहार । लन रना ब त जरूरी है। केवली हो जाने पर भी व्यवहार नहीं छोड़ते। इसी प्रकार यदि किसी ने इन्द्रिय दमन र भी लिया हो तो भी व्यवहार पा न के तिर ी ग से दूर रहना चाहिए।

ि य रित्रं रुष भाग्यं
दैवो न जानाति कुतो मनुष्यः ।

भया हती है—कि त्रिया चरित्र से देव और मुनियों को भी बू र कती हैं। हमारे भय से ही मुनि लोग न ड़ । हारा ले र रि यों से किनारा टते हैं। यदि लोग भी हमारे ग में आजावें तो उन्हें छूता न र ने देंगी। उन को चुटकी से उड़ा कती हैं।

पिला ने कहा—ऐसे ऐसे महापुरुष भी हैं जिन को व में रना रि यों बूते बात नहीं है। उन पर त्रिया चरित्र नहीं ।।

अभया बोली—ऐसा एक भी मर्द नहीं हो सकता जो त्रिया चरित्र के कारण स्त्रियों का दास न बनाया जा सके।

कपिला कहने लगी—तो क्या आप यह आशा रखती हैं कि आप सुदर्शन सेठ को अपने काबू में कर लेंगी ?

अभया ने कहा—हां, मैं सुदर्शन को भी फंसा सकती हूं।

कपिला—यदि आपने सुदर्शन को अपने चंगुल में फंसा लिया तो मैं समझूँगी आप त्रिया चरित्र में पूर्ण निष्णात हैं और स्त्रियों में शिरोमणि हैं।

अभया—देख, मैं किस प्रकार सेठ को अपने जाल में फंसाती हूं, तू देखती रहना मेरी कलाबाजी को।

इस प्रकार दोनों सखियों में बाजी लगी है। आप लोग ऐसी बाजी को कैसी मानते हैं। आप इसे बुरा ही बतायेंगे। और वास्तव में है भी यह बुरी बात। किन्तु किसी बात को एकान्त दृष्टि से न सोचना चाहिए। अनेकान्त दृष्टि से विचार करना चाहिए। मैं कहता हूं अगर इस प्रकार की इन सहेलियों में होड़ न होती तो सुदर्शन के शील की परीक्षा कैसे होती।

गज सुकुमार मुनि के मस्तक पर सोमिल ब्राह्मण ने जलते हुए अंगारे रखे थे। कहिये, इस प्रकार का घातक कार्य कितना निकृष्टतम और हृदय हीनता दर्शक है। किन्तु गजसुकुमार के लिए मस्तक पर अंगारे रखे जाना भी कल्याण कारी साबित

ए थे। सोमि ब्राह्मण के लिए इस प्रकार । निर्द । पूर्ण ।यें रना न्त हानि र था। किन्तु गजसुकुमार ने उस चीज को मों की निर्जरा रण । लिया। वे अंगारों पीड़ा से विचलित न हुए। बल्कि शुक्ल ध्यान के ये पर ढ़ कर अन क्षमा धारण करके केवली बन गये और उसी रीर रूपी पिंजड़ा सदा के लिए छोड़कर सिद्ध शिला में जा र विरा हो गये। अगर गजसुकुमार को यह हारा न मिल तो वे भव है इतनी जल्दी मो में न पहुंच पाते।

इसी तरह पिला भया की किसी च रि आदमी को रित्र ष्ट रने की होड़ ए न्त बुरी नहीं कही कती इसी अग्नि तप र दर्शन रा कुन्दन होकर जगत् के सामने उपस्थित होगा। हम लोग प्रतिदिन सुद । रित्र गाते हैं और न्यवाद देते हैं उसमें कपिला और भया । भी हाथ है। हाथ तो इनका है मगर प्रशंसा द न की ही की यगी।

मित्रों! दुनिया में टे बिछे ए हैं तः भ र चलना हिए दुनिया में रे भले व प्रकार के आदमी हैं। आप यदि नी हैं तो बुरे आदमीयों को भी अपनी ति में हायक बना ते हैं।

अभया और कपिला में होड़ लगी है। अब वे किस प्रकार दर्शन को फंसाने की चेष्टाएं करती हैं इसका विचार फिर किया जायगा।

ता. १४-८-३६
राजकोट

१२
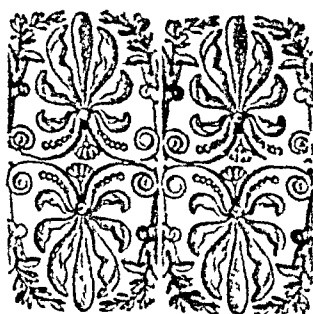
आत्मा ही परमात्मा बनता है

आज म्हारा संभव जिन के, हिताचित सुंगुण गास्यां ।
मधुर मधुर स्वर राग अलापी, गहरे साद गुंजास्यां राज ॥आज.॥

प्रार्थना

यह तृतीय तीर्थङ्कर गव वनाथ र्थना है। प्रार्थना करने वाला हता है कि आ मैं तेरा ही गुण-ग रूंगा। भक्त के पूरे अभिप्राय ो मैं नहीं बता । वह तो ोई नी ही बता कता है। लेकिन रने से मालूम हो हैं कि इ प्रार्थ में ाप । और हमारा भी मि है। इ प्रार्थना हा । शब्द ाज महत्त्व । है।

ंसार के लोग भी पने ां ारि ायों के ए यही सो ते हैं कि अमु कार्य आज ही ेंगे। । का दि

फिर व आने वाला है। अगर आज । दिन व्यर्थ चला गया तो कल का क्या भरोसा ? संभव है, कल का दिन भी व्यर्थ ला जाय। थवा यह नक्की थोड़ा ही है कि कल का दिन हमारे लिए आयेगा ही। संभव है, कल हम ही न रहें।

वि होत्सव, सब प्रकार के त्योहार और मित्र के आगमन पर यही कहा जाता है कि आज का दिन अच्छा है। आज । सा दिन फिर न आयेगा अतः जो कुछ करना है कर डालना चाहिए। इसी प्रकार भ जन भी कहते हैं कि आज का सा अवसर फिर कब आयेगा अतः भगवान् की प्रार्थना अ ही करूंगा। यह अवसर हाथ से न जाने दूंगा।

भक्त के कथन पर से आम श्रोताजनों को भी विचार करना चाहिए कि ये दिन पर्यूषण पर्व के हैं। इन दिनों में दुनिया के प्रपञ्चों में न पड़कर उत्कृष्ट रीति से परमात्मा का भजन व र्थना करेंगे। यद्यपि सब लोग यह चाहते हैं कि हम पर-मात का भजन किया करें। और आप लोग भी घर का काम छोड़कर यहां इसीलिए आये हैं। किन्तु भजन में अनेक विघ्न उपस्थित हो जाते हैं।

श्रेयांसि बहुविघ्नानि

अर्थात् अच्छे कार्यों में सदा बहुत वि आजाया करते हैं। इसी नियम के अनुसार प्रभु भजन में भी वि । जाते हैं और आपकी इच्छा पूर्ण नहीं होती। आप पूछेंगे कि इन विघ्नों को हटाने के उपाय क्या हैं ? भ कहते हैं कि वि ों

ो हटाने । उपाय भी परमात्मा र्थना ही है। उसी परमात्मा से आरजू रने से वि विनष्ट हो ाते हैं। । म ोगों ो र्थना रने । यह व र प्राप्त । है। तः यह वि र रना हिये न का से मेरी ात्मा इ ार रूपी नन्त मुद्र में इ र से उ र हिलोरे ले रही है। जन्म मरण और रा य ात्मा सी हुई है। जो कि निश्चय नय और दृष्टि से दे । ाय तो आत्मा और परमात्मा में कोई नहीं है। स्वरूप की दृष्टि से दोनों ए हैं। शुद्ध ह की दृष्टि से 'एगे ाया' र्थात् सिद्ध ार सारी दोनों त्मा ए समान ही है।

फिर अंतर क्यों पड़ रहा है, इसी बात पर वि रना हिए। जो अन्तर है उ को म र उसे मिटाने ा प्र करना ाहिए। अन्तर मिटा र परमात्मा र में लीन हो जाना ाहिए। न्तर मिटाने के लिए ानियों के थन पर विचार रना ाहिए।

कु र मिट्टी से घड़ा बनाता है। मिट्टी में ा है तभी तो कुंभकार उसमें से घड़ा ाता है। ब मिट्टी ा घड़ा नहीं बनाया ज ा तब तक मिट्टी में कोई नी नहीं रता। भरा भी नहीं जा सक । और न ोई मिट्टी को घड़ा कह र ही ारता है। जब कुं ार उपाय र मिट्टी का घड़ा बना देता है तब उसमें पानी रा जाता है और उसे घड़े के नाम से पुकारा जाता है। मिट्टी उ दान

कारण है और चाक आदि निमित्त कारण। कुंभकार कर्त्ता है। मिट्टी और घड़े में कितना अंतर है ? मिट्टी ही तो रूपान्तर होकर घड़े के रूप में परिणत हुई है। मिट्टी और घड़े की पर्यायों में फर्क है। द्रव्य तो वही है। इसी प्रकार आत्मा के विषय में भी देखो। पण्डित देवचन्द्जी कहते हैं:—

उपादान आतम सहित पुष्टावलंबन देय,
उपादान कारण पणे प्रकट करे प्रभु सेव।
एक बार प्रभु वंदना आगम रीते थाय,
कारण सहित कार्य नी सिद्धि प्रतीत कराय।

आत्मा परमात्मा का उपादान कारण है। जिस प्रकार मिट्टी घड़े का उपाद कारण है और मिट्टी से ही घड़ा बनता है उसी प्रकार आपकी हमारी आत्मा ही परमात्मा बनने का उपादान कारण है। आत्मा ही परमात्मा के रूप में परिणत हो जाता है। मिट्टी को घड़ा बनाने में कुम्भकार भी कारण है इसी प्रकार आत्मा का परमात्मा बनने में ज्ञानी गुरु कारण बन जाते हैं। उनको सहकारी कारण कह सकते हैं। उपादान कारण तो आत्मा ही है। अगर आगम प्रतिपादित रीति से एक र भी परमात्मा को वंदना कर ली जाय तो आत्मा परमात्मा बन जाता है। कारण कार्यरूप में बदल जाता है।

अब इस बात का विचार किया जाता है कि परमात्मा का अनन्य भाव से रण कीर्तन करने से या उसको देवाधिदेव म ने से क्या लाभ है। अन्य मत वाले लोग तो

परमात्मा को ी मानते हैं। जिस प्र कुम ार मिट्टी ।पिएड बन र उसे । पर .। र . । है उसी प्रकार परमात्मा भी जीव को परमात्म र बन है। उसको दएड भी देता है और पुरस् ार भी। .: यदि लोग परमात्मा की भ र्थना या की रें तो ठीक जा स ता है किन्तु जैनों का परमात्मा तो राग द्वेष रहित है। वह न किसी पर प्र न्न होता है न नारा । कि को द या पुरस्कार भी नहीं देता। वह निरंजन नि औ र्ता है। अतः उसे वंदना करने से क्या लाभ ?

वीच में थोड़ा इस बात पर भी वि ार र वस्तुतः परमात्मा ी है क्या? जो परमात्मा ां ारि प्रपञ्चों से मुक्त हो चुका है। वह पुनः उनकी में क्यों पड़ेगा। न्याय से यह बात सिद्ध है कि जो पूर्ण है रिक प्रपंचों में नहीं गिर और जो गिर है वह पूर्ण न हो ा। दूसरी बात परमात्मा दयालु है। यदि वह कर्त्ता है तो जीवों को दुःखी ों र ता है। क्यों नहीं ब वों को एकान्त सुखी बना देता। जैसे किसी द । ड़ । नदी में डूब रहे और वह समर्थ हो हु । भी नारे . दे । ता रहे तो उ आदमी को पिता ायगा पुत्र घ ? पिता यं वैद्य हो और उ पुत्र बीम हो। यदि वह उसे द न दे तो उसे क्या । यगा ? त. जिस रूप में लोग कर्त्ता मानते हैं उस प तो परमात्मा र्त्ता नहीं है।

अब मूल प्रश्न पर आ जाइये। परमात्मा को नमस्कार करने से क्या लाभ है ? एक भक्त आचार्य कहते हैं:—

त्वं तारका जिन ! कथं भविनां त एव
त्वामुद्वहन्ति हृदयेन यदुत्तरन्तः ।
यद्वा दृतिस्तरति यज्जलमेष नून
मन्तर्गतस्य मरुतः स किलानुभावः ॥

(कल्याण मन्दिर स्तोत्र—)

इस श्लोक में विरोधाभास अलंकार है। आचार्य कहते हैं—हे जिनेश्वर देव ! तू हमारा तारक कैसे है। बल्कि हमी भव्य प्राणी तेरे को अपने हृदय में धारण करके तैरते हैं। अर्थात् हम तुझको अपने हृदय में रखकर तराते हैं। इतना कहकर चार्य वापस अपनी बात को संभाल लेते हैं। नहीं नहीं मैं भूल गया। मैं परमात्मा को अपने हृदय में धारण करके नहीं तैरता हूं किन्तु मेरे हृदय में परमात्मा विराजमान होने से मैं तैरता हूं। संसार समुद्र से पार उतरता हूं। जैसे पानी पर मशक तैरती है। मशक में तैरने की शक्ति नहीं है। किन्तु उसमें वायु भर करके उसका बन्द कर देने से वह पानी पर तैरने लगती है। मशक के अन्तर्गत जो वायु है उसी । प्रभाव है कि वह पानी पर तैरती है।

मित्रो ! इस कथन पर से आप सम गये होंगे कि परमात्मा स्वयं प्रेरक बनकर हमको 'सार मुद्र से पार नहीं

र । किन्तु हम यं ही उ स्वरूप मझकर उसे अपने हृदय में जागृत करते हैं और इ तरह उ के हारे से व मुद्र से पार हो कते हैं। परमात नहीं तारता न्तु फिर भी उसका सहारा लिए बि न कोई तिरा है न तिर है और न विष्य में ही तिरेगा।

कोई शं । कर कता है कि यह तो जैनियों के की चालाकी है। तरफ तो कहते हैं कि परमात्मा तार नहीं है और दूसरी तरफ हते हैं कि उसकी सहायता के बिना कोई तिर नहीं सकता। यह चालाकी नहीं है। वस्तु स्वरूप ही ए है तब क्या किया जाय। ए आदमी पि भी मौजूद है और पुत्र भी है। मैं पूछता इ दमी को क्या कहा जाय? पिता कहा जाय या पुत्र? यह पिता भी है और त्र भी। ही ल में यह । पुत्र दोनों है। पने बाप की अपेक्षा से त्र है और पने त्र अपेक्षा से पिता। दो. र से उत्प होनेवाली बिजली के लिए ए तार से उत्प होने की बात से ही जा ती है।

मैं प लोगों से ही पूछता प र बैठे हैं या नीचे? आप एक उत्तर नहीं दे ते। प यही उत्तर देंगे महाराज! आप पे । नीचे बैठे हैं और गो ोग हम से नीचे बैठे हैं उन पेक्षा चे बैठे हैं। अब यदि कोई दमी जिद्द कर बैठे कि ए ही उत्तर दो, पर बैठे हो नीचे, तो से संभव हो ता है। हो नहीं कता। त् की री वस एं एक दूसरे अपेक्षा र ती हैं।

इसी प्रकार दिशा के सम्बन्ध में भी समझो। आपसे कोई पूछे कि आपका मुख किस दिशा में है तो आप यही उत्तर देंगे कि अ क आदमी की अपेक्षा अमुक दिशा में है और अ क की अपेक्षा अमुक में। इस प्रकार अनेकान्त वाद की हाय से वस्तु स्वरूप का निर्णय होता है। इसमें चालाकी । है। व्याकरण में भी कहा है—

साभिधेयापेक्षावधि नियमो व्यवस्था।

र्थात् अपेक्षा से ही वस्तु का प्रतिपादन हो सकता है। अपेक्षा से ही व्यवस्था दी जा सकती है। इसी नियम से भगवान् तारक भी हैं और तारक नहीं भी हैं। भगवान् तारक किस प्रकार है यह बात और खुलासावार बताता हूं।

मान लो एक आदमी नदी के उस पार ड़ा है। उसे नदी पार करनी है। वह तैरना नहीं जानता है। एक दूसरा आदमी वहां ।गया। उसने पूछा भाई कोई नदी पार करने का उपाय बताओ। आगन्तुक व्यक्ति ने बताया कि इसमें क्या है। नदी प करने का सीधा उपाय है। हवा के सहारे नदी पार करलो। इतना कह कर वह तो चला गया। इस आदमी ने सोचा कि हवा तो सर्वत्र है। मेरे मु में, पेट में और नदी में भी हवा है। यह सोचकर वह नदी में कूद पड़ा। किन्तु वह तैरने के बजाय पानी में डूबने लगा। तुरत वाप बाहर निकल आया। थोड़ी देर बाद दूसरा आदमी फिर आगया। उसने कहा—दोस्त! तेरे कहने में आकर मैं नदी में

कूद पड़ा । । मरते मरते ब । आगन्तु ने ।— ाई ! ाली हवा तैरने हाय नहीं होती । दे मैं बत । कि कि प्र ार मनुष्य को तैराती है । वह ए म आया । उसमें हवा भर र उस । ुंह बंद र दिया । फिर उ पर उस आदमी ो बैठा दिया । वह म क के सहारे र पूर्व नदी पार र गया ।

आगन्तु ने पूछा—अब ब ओ ह र उतारती है या नहीं ? उस ादमी ने कहा—हां भाई हवा पार उत ती है । प ले मैंने हवा ो पनाया न था । अ ानता से यों ही कूद . ।

इसी प्रकार परमात्मा के लिए भी मझियेगा कि जो उ ो पना लेता है, हृदय उस ो बंद रके इन्द्रियों के द्वार बंद र देता है, परमात्मा उ ो इस सार मुद्र से पार र देता है ।

कहने ारां यह है वि ए उ दान ारण होता है और ए निमित्त ारण होता है । उपादान होने पर भी मित्त श्य । होती है । निमि कारण के होने पर ही उ दान कार्यरूप में परिणित होता है । प्रधानता उपाद ारण की है । मिट्टी नी आदि होने पर बीज के बिना नहीं पैदा हो ता । वि तनी ही मिट्टी हो र नी भी खूब हो वि न्तु यदि छोटा । बीज न हो तो वट वृक्ष पैदा नहीं हो । बीज की मुख्यता है । ी उपाद

कारण है। उपादान कारण उसे कहते हैं जो पहले कारण रूप हो और बाद में कार्यरूप में हो जावे। और कारण उसको कहते हैं जो कार्य में सहायक हो। कहा है—

नियमेन कार्यं करोतीति कारणम्

निश्चय से जो कार्य करता है वह उपादान कारण है। और जो स्वयं कार्य रूप में परिणत न हो किन्तु जिसकी सहायता के वि कार्य न हो वह निमित्त कारण है। घड़ा मिट्टी । बनता है मगर कुंभकार की सहायता के विना स्वयं नहीं ज ।।

यही बात आत्मा और परमात्मा के लिए समझो। आत्मा उपादान तो है मगर परमात्मा की सहायता से वह उपाद कारण बन गया। वैसे आत्मा तो अनादि काल से ही है। फिर वह परमात्मा क्यों नहीं बन गया? परमात्मारूप निमित्त रण का योग न मिलने से उपादान कार्य न कर का।

परमात । रण सच्चे दिल से हो तभी वह हमारा सहायक बन क है। इसमें ऊपरी दि ।वा नहीं च सकता। परमात्मा की अदालत में बाहरी उठ उतना महत्त्व नहीं है जितना भावना का है। आपकी भावना देखी जायगी कि किस भाव से प्रेरित होकर आपने धर्म रणी है। भावना के बिना की हुई करणी द्रव्य करणी गिनी जायगी! परमात्मा का स्मरण रने में यदि ।म क्रोध लोभ

पर्यूषण पर्व है। कई लोग इस वक्त तपस्या कर रहे हैं किन्तु किसी कामना को लेकर तपस्या नहीं करनी चाहिये। निष्काम भाव से तप होना चाहिए। इन दिनों में आपसे बने उतना त्याग करो। किन्तु अहंकार त्याग कर त्याग करो। जो कुछ आड़ अंतराय है वह अहंकार की है। अतः अहंकार त्याग करके परमात्मा की प्रार्थना करेंगे तो सदा कल्याण है।

चरित्र

आज श्रावक सुदर्शन की परीक्षा है। परीक्षक कोई साधारण व्यक्ति नहीं किन्तु स्त्री चरित्र में पारंगत रानी अभया है। अभया ने सेठ सुदर्शन को चरित्र भ्रष्ट करने की प्रतिज्ञा ग्रहण की है। चार प्रकार की संज्ञाए हैं—अहार संज्ञा, भय संज्ञा, मैथुन संज्ञा और परिग्रह संज्ञा। मनुष्य में मैथुन संज्ञा का अं अधिक रहता है। जो इस संज्ञा को जीत लेता है वह सबको जीत लेता है। काम को सबसे बड़ा शत्रु कहा गया है। परमात्मा की प्रार्थना करने से काम विकार भी जीता जा सकता है। सुदर्शन मैथुन संज्ञा को जीतने के लिए कृत संकल्प है।

इधर अभया रानी भी सुदर्शन को शील से लायमान करने के लिए कृत संकल्प है कपिला अभया को मझाती है कि व्यर्थ प्रयत्न मत करो।

व्यर्थ गर्व-मत धारो रानीजी मै सब विधि कर छानी
सुदर्शन नहीं चले शील से यही बात लो मानी रे ॥ धन०॥

जो मैं नारी हूं हुशियारी सुदर्शन वश लाऊं
नहीं तो व्यर्थ जगत् में जीकर तुझे न मुंह दिखलाऊं रे। धन.।

पिला कहती है-रानीजी व्यर्थ गर्व न रो। दुनि किसी का भी अभिमान नहीं ला है। गर्व रने से राजा रावण भी हार गया था तो दूसरों क्या बात ह ।

पिला ऊपर से या तो यह बात ह रही है कि सुदर्शन ो तू डिगा नहीं कती किन्तु उसके मन में यह । है कि रानी ो जोश चढ़े और किसी तरह उस व्यक्ति को डिगा दे जि ने मु. को धो । दि है। वह उ व्यक्ति । न मर्दन करना ।हती है जि ने उसको छ । दि था।

मनमें कुछ और भाव र । ौर व्दों से और हना यही मिथ्यात्व है। शास्त्र हा है—

समयं तिमन्नमाणे समया वा असमया वा समया होयाति होय व्वा
ौर
असमयं ति मन्नमाणे असमया वा समया वा असमया होयाति ोय व्वा

कलुषित हृदय होने पर सच्ची या झूठी ब भी झूठी ही गिनी ती है। और शुद्ध दय से ही ई झूठी च्ची बात भी च्ची गिनी जाती है। हृदय शुद्ध है, वि र न्याययुक्त है फिर भी द्मस्थ होने से चूक हो जाय तो व ती माना जाता है। शुद्ध हृदय से यह माने कि ो केवली कहते हैं वह है। ए । ानते ए भी द्म ।

के कारण भूल हो जाय तो भगवान् उसे सम्यग्दृष्टि ही कहते हैं। अतः धर्माराधन के लिए हृदय की पवित्रता प्रथम तं है। र से कोई कुछ भी कहे उसकी नियत पर याल रके उस बात मानना चाहिए।

कई नियों को घानी में पीला गया और गजसुकुमार के सिर पर खीरे रखे गये तब भी वे अपने स से लाय-मान न हुए। वे समकिती थे और समकिती ही बने रहे। इसके विपरीत गौशालक और जमाली जैसे लोग भी ए हैं जिन्होंने भगवान् की निन्दा करने में कसर नहीं रक्खी। इनका परी व्यवहार कुछ और था। और भीतरी भावना कुछ और थी। इसलिए इनकी करणी विपरीत ही रही। वे मिथ्या-दृष्टि ही बने रहे।

कपिला के मु से कहे हुए शब्द दूसरे हैं और भीतर में आशय कुछ और है। भीतर में उसका आशय यह है कि दुनिया में धर्म नाम की चीज न रहे। लोग धर्म धर्म चिल्लाते हैं, यह व्यर्थ है। मौज मजा करना और अपनी इच्छाओं की येन केन प्रकारेण पूर्ति करना ही कर्त्तव्य है।

आज इस जमाने में भी कई लोग धर्म और ईश्वर का नाम इस दुनिया से मिटा देना चाहते हैं। वे धर्म और ईश्वर का बॉयकाट करना चाहते हैं। किन्तु कई लोग इसके विरुद्ध मान्यता रखते हैं। वे धर्म और ईश्वर के नाम पर हंसते हंसते अपने प्राणों का बलिदान तक करने के लिए कटिबद्ध

हैं। मैं गवान् का प्रवर्ताया हुआ है अतः कोई उस पर कितनी ही धूल उड़ाने की कोशिश करे जरा भी स ल नहीं हो सकता। हां, वह ऐसा दुष्प्रयत्न करके अपनी आत्मा को जरूर कलुषित र लेता है।

कपिला की ब तों से और अधिक जो में । अभया ने कहा—मैं तिरियाचरित की आचार्या । यदि मैंने पनी कला के बल से सुद न को अपना गुलाम न बना लिया तो मैं तु को पना मुह न दि । गी। कपिला ने हा— अभी मैं अधिक कुछ नहीं कहना हती। अच्छी बात है आप पने प्रयत्न में ल हों यह मेरी हार्दिक कामना है। यदि आ सेठ को डिगाने में समर्थ हो गई तो मैं प प्रशंसा रूंगी।

अभया कहने लगी—सखी, अब से मैं हर बात व द न को अपने काबू में रने के उद्देश्य से ही किया रूंगी। लोग पर से कुछ भी मझें, मेरा हर म सुदर्शन को लक्ष्य रके हुआ करेंगे। मेरा । पीना, गार जना. न विहार रना आदि सब र्य इ मतलब सिद्धि के लिए होंगे।

कपिला और भया की, उत्सव दे ते हुए रथ में बैठे बैठे, ये सब बातें हो रही थीं। उधर मनोरमा उनके पीछे पने रथ में नीचे दृष्टि किये बैठी थी मानो ईश्वर और पति ध्य न र रही हो। अथवा किसी ने उसको ह र उ र त ने की मानो ण दि । दी हो। इ तरह चलते ते ब

के रथ जहां उत्सव का स्थ था वहां आ पहुंचे। रानी अपने डेरे में ली गई और मनोर अपने डेरे में।

अ । रानी की एक पंडिता नाम की धाय थी। उसने रानी को बहुत उदास दे कर पूछा कि आज आप इतनी उद क्यों हैं? रानी ने कहा-धाय! क्या कहूं, कुछ कहा नहीं जाता। यदि मेरी मनोकामना पूरी न हुई तो मेरा जी टिकना कठिन मालूम देता है। मेरा जीवन गहरे संकट में है मालूम पड़ता है, मेरा अं म काल निकट आ गया है। पंडिता ने पूछा-क्या बात है। आपकी यह युवावस्था, इतना सौन्दर्य, भोग विलास की सामग्री की कोई कमी नहीं फिर क्योंकर मरने की भावना पैदा हो गई।

अभया ने कहा-अपमानित होकर जिन्दा रहने की अपेक्षा मौ को स्वीकार कर लेना बेहतर है। मानधनी को मान ाहिए, जीवन नहीं।

ध ने पूछा-आप अपम किसने किया है। कौन ऐसा व्यक्ति है जो आपका अपमान करने की हिमाकत कर सकता है?

अभया—धाय! तुम पुरोहितानी कपिला को जानती हो। उसके साथ रास्ते चलते चलते मेरा वाद हो गया था।

ध —वाद हो गया तो क्या हुआ। तुम कभी वाद में किसी से हारी हो सदा तुम्हारी जीत हुई है और अब भी होगी। अतः चिन्ता छोड़ो।

पण्डिता कहने लगी—-बस इतनी सी बात के लिए इतनी चिन्ता ? हम कहो सो काम कर सकती हैं। हम आसन से तारे उतार कर ला सकती हैं। हथेली में राई जमा र न पर छौंक लगाकर जिमा सकती हैं। अतः रानी चिंता छोड़ो। तुम्हारी प्रतिज्ञा पूरी होगी। आप स धान होइये। ाप ाधिका और मैं साधन बनती हूं। आप जैसी साधिका और मुझ जैसी साधन रूप हो तब कौनसा ऐसा काम है जो पूरा न हो सकेगा। तुम जिसे कहो उसे पकड़ कर तुम्हारे पास ला सकती हूं। र आप एक काम करना। आप ऐसा रूप दि ना जिससे लोगों को यह विश्वास हो जाय कि ापको कोई देव लग गया है। आप वारंवार मूर्ि हो जाना और जमीन पर गिर ज ा। फिर मैं सुदर्शन को पकड़ लाने उपाय कर ् हूं।

घाट घड़ा वहुविध जब मन में, एक उपाय मन आया
कौमुदी उत्सव निकट आवे, जब काम करूं मन चाया रे ॥धन०॥
कामदेव की प्रतिमा बनाकर महोत्सव खूब मंडाया।
बाहर जावे भीतर आवे सब जन को भरमाया रें ॥धन०॥

रानी को पंडिता धाय ने पट्टी पढ़ा दी थी। वैसे रानी स्वयं ही त्रिया चरित्र में पूर्ण पण्डिता थी। डेरे में ज र उदास होकर रानी सो गई। पंडिता दौड़ कर दधिवाहन राजा के पास गई और कहने लगी कि न मालूम रानी जी को क्या हो गया है। आप इसी व शीघ्र ल कर रानी

हालत देखिये और उचित उपाय रिये। देखने से ही ाप ो होगा कि रानी की हा त कितनी तर । हो गई है।

पण्डिता ने पनी बातों की तुराई और त्रिया चरि से रा । ो रानी के डेरे पर आने के लिए वि दिया। है—

'को गहनो वनो ? त्रिया चरित्रम्'

किसी ने पूछा कि गहन जंग कै सा है ? तो सामने ले ने उ र दिया कि त्रिया रित्र ही गहन वन है। ग में कितना भी सावधान व्यक्ति हो मार्ग भूल । है। द न राजा भी पि । बात में आगया और घबड़ । आ रानी के खेमे पर ाया। उसे इस बा । भय हो गया था कि आ रानी पहन ओढ़ र बाहर नि ली है हीं कोई भूत न लग गया हो। भव है इसी बात गड़ ो।

राजा आने की आहट सुनकर रानी और ि ढोंग रके पड़ा तानकर लम्बी हो ो गई और ऊंहूं ने लगी। राजा ने उसके पास जाकर पूछा कि प्रिये ो ना . देवी तुमको क्या हो गया है ? रा । उसके पर । कपड़ा हटाकर बार बार पूछता था और रानी बार बार पर पड़ा ढ ले थी और अधिक रती

थी। वह यह दर्शाती थी कि उसके रीर कोई देव प्रवेश कर गया है। राजा यह दृश्य दे कर घबड़ाने लगा तब पंडिता कहने लगी। महाराज! मुझे अब याद आया कि ा ों हो रहा है। यदि आप इजाजत दें तो मैं निवेदन रूं। राजा ने कहा-कहो, क्या बात है।

पण्डिता कहने लगी—जब आप युद्ध में गये हुए थे तब पीछे से पतिव्रता रानी ने आ की क्षेम कुशल के लिए स्या शुरू की थी। पति । नारी के लिए पति ही परमेश्वर है। पति की अनुपस्थिति में वह विकल रहती है। उसे पति के बि कोई काम अच्छा नहीं लगता। रानी जी ने भी यह मनौती ले ली कि 'हे इष्ट देवी! मेरे पतिदेव जीते जागते शल पूर्वक घर जायंगे तो पहले मैं तेरी पूजा करूंगी त घर से बाहर नि ूंगी'। उ देवी की पा से आप युद्ध से शल पूर्वक लौ आये। आपने आकर कौ दी उ व में शामिल होने की घोषणा रवा दी। रानी अपनी मनौती पूरा न कर स । ा का पा क । प्रथम धर्म म र रानी जी बाहर निकल आई हैं। आपके हुक्म व प्रेम के स ने रानी जी देव को भूल गई। मगर देव कब रानी को भूलने वाला है। देव ने सोचा कि रानी की इच्छा सार मैं राजाको सकुशल युद्ध से लौटा लाया हूं। किन्तु काम पूरा हो जाने बाद रानी मेरी मनौती पूरी करना भूल गई और इस प्रकार मेरी अवहेलना कर रही है। यह सोचकर देव ने ही यह उत किया है ऐसा मुझे मालूम पड़ता है। अतः इस बात का उप करिये नहीं तो गजब हो जायगा।

पण्डिता थन सुन र राजा और धि घवड़ाया। उसके मन में जो शंका थी वह सच्ची सावित हुई। राजा ने कहा—यह वात मुझको पहले क्यों नहीं कही? पंडिता ने कहा—महाराज यही तो वात है ' म सर्या दुः निसर्या' काम निकल जाने पर लोग दुः भूल जाया रते हैं। यही वात अपने यहां भी हुई है। आपके ने पर आपके दर्शन र के रानी जी सव वात भूल गई। राजा ने पूछा—पंडिता! व क्या करना चाहिए सो वताओ। पंडिता ने कहा—महाराज! अव आप शीघ्र रानी को राजमहल में पहुंचाने का इन्तजाम रा दीजिये और देव का उत्सव मनाने की भी दीजिये। उत्सव छूट पूर्वक मनाया जा के वैसी राज्य की तरफ से पूरी व्यवस्था रवा दें। ऐ न हो कि वी प हमें इधर आने हुक्म दे दें र हमारा उत्सव अधूरा ही रह य।

ए वात और है। देव की पूजा और उत्सव के लिए हमें वार वार वाहर अ ना पड़ेगा तथा जो देव को मानने वाले हैं उनको भी वुलाना पड़ेगा तः पहरे दारों ो हिदा- र दें कि वे द ल न करें। पण्डिता की इच्छा सार राजा ने रा इन्तजाम रा दिया। पंडिता रानी को र ल र महल में ले ई है। व आगे क्या होता है इ विचार आगे हैं।

१५-८-३६

राजकोट

१३

परमात्मा का प्रका प्राप्त रो

श्री अभिनंदन दुःख निकन्दन वन्दन पूजन योगजी
आशा पूरो चिन्ता चूरो, आपो सुख आरोग जी ॥ श्री० ॥

ना—

यह भगवान् अभिनन्दनजी की र्थना है। किस आशा से भगवान् की र्थ करता है वह दे ना है। ानियों ने भगवान् की यह पहि कराई है कि वह दुः ों का न्दन-नाश रने वाला है। जो दुः ों का श होगा व वंदन और पूजन करने के योग्य हो स है। न् अ न्दन दुः ना करने वाले हैं तः उन प्रार्थना गई है। किस प्रकार वान् दुः ों ा ना करने वाले हैं, यह बात सम ने की है।

यदि भगवान् दुः ों को मिटाने वाले हैं तो फिर में इतना दुः क्यों है। कोई धन के बिना दुःखी है। ोई संत हीनता से चिन्तित है। कोई शारीरिक पीड़ाओं से त्र है। कोई गृह क्लेश से परेशान है। इस प्रकार जिधर देखो

ग्रहण कर सकता है। इसी प्रकार जिन जीवों का उपादान ठीक होता है परमात्मा उनका दुः अवश्य दूर करता है।

श्रद्धालु लोग मेरी इ बात को बिना शंका लाये म लेंगे। उनको इसमें कुछ भी संदेह न होगा। मगर इस जमाने के अधिकांश पढ़े लि लोग किसी ब को तब तक नहीं मानते जब तक कि तर्क वितर्क करके अपनी बुद्धि से बात को पूरी तरह ल न लें। मैं भी यही चाहता हूं कि लोग किसी बात को अपनी बुद्धि से तौल कर पूरा निर्णय कर फिर विश्वास करें। बुद्धि से ब को समझकर यदि ठीक जँचे तो विश्वास लाना चाहिये। बुद्धिपूर्वक किया गया विश्वास मजबूत और ठीक होता है। राजा प्रदेशी ने धर्म की बातों पर तभी विश्वास किया था जब उसकी बुद्धि ने उनको मान लिया था। और इसीलिए बाद में धर्म पर उसकी श्रद्धा अडिग रही थी। में श्रावक के लिए कहा गया है कि वारंवार प्रश्नो- र करना चाहिए और धर्म की बातों का निर्णय करके फिर अस्थिमज्जा आदि में रुचाना चाहिये।

मैं अपने लिए भी यही बात कहता हूं कि आप लोग मेरी बातें इसीलिए न मानलें कि वे मेरे द्वारा कही जाती हैं। मेरे कहने से एकदम विश्वास न करो। किन्तु अपनी बुद्धि और अनुभव की कसौटी पर कसकर यदि खरी उतरे तो मानों। यदि सुनते ही किसी बात को स्वीकार कर लेने आप लोगों की आदत होगी और उसमें अपनी बुद्धि का तनिक भी उपयोग नहीं करेंगे तो ऐसी श्रद्धा कच्ची श्रद्धा कही यगी। कारण

जि　में अपनी निर्णाय　शक्ति न होगी व　मेरी तर
किसी　र की बातें　नकर भी तुरंत विश्वास　र लेगा　र
इस　र　भी मेरे क　से विपरीत　थन पर भी श्रद्धा
र लेगा। पूर्व की श्रद्धा को छोड　र नवीन　द्धा　हण　र
लेगा। फिर　ोई ती　रा व्यक्ति अन्य प्रकार की बात　हेगा
तो उस पर भी श्रद्धा　र लेगा। इस प्र　ार बुद्धिही　व
बुद्धिपूर्व　की गई श्रद्धा का　ोई मुल्य नहीं है। श्रद्धा के
　बुद्धि　मेल होता है तभी दोनों—श्रद्धा और बुद्धि
की शोभा है। श्रद्धा शून्य बुद्धि की भी कुछ कीमत नहीं है।

आप लोगों को जो बात अच्छी तरह　म　में न　ये
वह　से पूछो। मैं अपनी　चि　के अनुसार उत्तर देने
मझाने के लिए तय्यार　।

अब　यह है कि क्या परमात्मा दुः　निवार　है।
यदि है तो किस प्रकार है: सूर्य　ो प्र　देते हुए हम
प्र　त्त दे　ते हैं किन्तु परमात्मा कि　तरह दुः　निवार
करता हैं हमारे ध्यान　नहीं आता। ए　ने　वान्
थना　रते　ए　है—

चन्द्र सूर्य दीप मणि की ज्योति तेन उल्लंघितम्।
ते ज्योति थी अपरम ज्योति नमो सिद्ध निरंजनम्॥

　र　जीव प्र　बिना नहीं र　। यदि
प्र　हो तो　र के　धि　ंश　म रु　ते हैं।

सी से पूछा जाय कि तुम किसके प्रकाश में कार्य करोगे तो वह यह उ र देगा कि मैं सूर्य के प्रकाश में कार्य करना पसन्द रता हूं। फिर उससे कहा जाय कि सूर्य दिन में ही रहता है, रात्रि में वह गैर हाजिर रहता है। यदि रात में काम र पड़ेगा तो क्या करोगे। तब वह कहेगा कि रात में चंद्रप्रकाश से काम लूंगा। चन्द्रमा भी कृष्णपक्ष में नहीं रहता तब । करोगे? तब वह कहेगा ग्रह नक्षत्र और तारों के से लूंगा। जब बादल आसम में छाये रहते हैं, ग्रह नक्षत्र और तारों का प्रकाश भी काम नहीं देता वैसी हालत क्या करोगे? तब वह कहेगा दीपक के प्रकाश में । क करूंगा। दीपक के लिए तेल बत्ती आदि की जरूरत रहेगी और वह अग्नि के बिना जलाया नहीं जा सकता। यदि दीपक का योग भी न मिला तब किसके प्रकाश से म लाओगे?

यहां कर उ र देने की गति रुक जाती है। क्योंकि ारण लोग पर ाये हुए प्रकाशों के सिवाय एक विचि प्रकाश को नहीं जानते जिसके प्रका से उ स प्र श ाशित होते हैं। नीजन कहते हैं हम तुम को एक दूसरे ही प्रकार के प्रका की सूचना करते हैं। तुमने जिन सूर्यादि के श का क किया है उससे तुम पराधीन बन जाओगे। किन्तु हम तुमको जि प्रक की बर देते हैं उसमें परतंत्र नहीं है। वह प्रक स्वतंत्र है। तुम्हारे स - धीन है। वह कहीं बाहर खोजने नहीं ज । . । । तुम्हारे भीतर में विद्यमान है। फ तुम उसको भूल रहे हो।

जि ज्योति ने चन्द्र सूर्य दीपक और मणि की ज्योति को पग कर दिया है। जो इन सब ज्योतियों से विलक्षण ज्योति है उस सिद्धस्वरुप ज्योति को सदा नमन है। इस ज्योति में किसी प्रकार का अञ्जन-कालि नहीं है। यह प्रकाश विशुद्ध और नन्त है। इ प्रका में सारा जगत हाथ में लिए हुए आमले की तरह स्पष्ट दि ाई देता है। यह प्रकाश ान रूप प्रका है। वह आत्मा का नि प्रकाश है।

जब इन्द्रियां ो जाती हैं तब मन इन्द्रियों सहायता के बि भी अपना काम ला लेता है। किन्तु मन, बुद्धि के ाधिन है। और बुद्धि आत्मा के आधिन है। आत्मा के लते बुद्धि लती है। गर ात्मा न हो तो न बुद्धि होगी और न । किसी मरे हुए ादमी को कभी स आया है? जो जी त है उसीको सपना आता है और वही सूर्यादि के प्रकाश के में भी सब कुछ देख है। कहिये, वह ज्योति बड़ी रही या सूर्यादि? वह ज्योति और कोई नहीं किन्तु ात्मा ही है। आत्मा की ज्योति से ही जा त वस्था, स ावस्था, सुषुप्ता और माधि की अ था में सब कुछ दे । सुना ज । है।

इस प्रकार ब्र ब प्रकाशों अपेक्षा आत्मा का प्रकाश बड़ा ठहरा अब आत्मा का परमात्मा के साथ सम्बन्ध बैठाते हैं। आत्मा ज्योति से अमर ज्योति परमात्मा की ही है। उस परमात्मा अप ज्योति में पनी ज्योति मिलाओ। आत्मा और त्मा एक ही जाति है। परमात्मा को

आत्मा की · पेक्षा एक विशेषण धिक गा हुआ है। वह विशेषण है परम शब्द। हैं तो दो नों ही त्माएं किन्तु ए परम आत्मा थीत् उत्कृष्ट आत्मा—पूर्ण वि सित आत्मा है जब वि दू री · विकसित और अपूर्णात्मा है। पूर्ण को पूर्ण में मिलाने के लिए ही हा चाता है—

श्री अभिनंदन दुःख निकन्दन वंदन पूजन योग जी।

गवान् अभिनंदन को नमन करता , की भाव पूजा र हूं। योंकि न्द्र सूर्य दीप · ादि की ज्योति से मेरा नहीं लता। मुझे परमात्मा की ज्योति हिए। मुझे अपनी ज्योति भगवान् की ज्योति समर्पित नी है। सूर्य न्द्र दीप आदि तो आवरण भी आ जाते हैं। और भी र ते और भी नहीं भी रहते हैं। किन्तु परमात्मा की ज्योति पर न तो कभी किसी प्रकार ा रण ही आता है और न भी मिटती ही है। सदा शाश्वत रहने ली है। उ ज्यो के प्र हो जाने से मेरी सारी आवश्यकताएं ही नष्ट हो ायगी। फिर बेचारा दुः क्यों र रहेगा। दुः ा और उस ज्योति आपस में रोध है। जिस प्र र अंधकार और प्रकाश में विरोध है उसी प्रकार इनमें भी है।

यदि ोई ादमी अंधा है तो अंधा होने से उसे दुः होगा। और अंधा होने के साथ यदि वह बहरा भी है तो और धिक दुः होगा यदि वह ा भी है और पंगु भी है तो उसके दुः ा पार नहीं। ए एक इन्द्रिय के न होने

से आत्मा अधिक दुःखी होता है। इस पर से समझना चाहिए कि आत्मा की वास्तविक ज्योति परतंत्र हो रही है। उसका देखना जानना और अनुभव करना इन्द्रियाधीन है। जैसे आँखों के लिए चश्मा चाहिए तो आंखें चश्मे की आधीन हुई। इसी प्रकार इन्द्रियां भी मन का चश्मा है। मन इन आँख आदि इन्द्रियों के वश में हो गया है। यदि कोई कहे कि चश्मे के बिना देखा जा सकता है तो क्या आंखों के बिना भी देखा जा सकता है? इसका उत्तर दिया जा चुका है। स्वप्न में बिना आंखों देखते ही हैं। आत्मा में आंखों के बिना देखने की शक्ति विद्यमान है। देहाध्यास के कारण आत्मा आंखों के वश में हो रहा है। चश्मे पर क्या भूलते हो तुम्हारी आत्मा में ही देखने की शक्ति विद्यमान है। उस शक्ति को पहचानो। उसे पहचान कर प्राप्त करने की कोशिश करो। उस शक्ति को जानने व पाने के लिए ही परमात्मा की प्रार्थना की जाती है

कयूं जाणूं कयुं बनी आवशे अभिनन्दन रस रीत हो मित्त।
पुद्गल अनुभव त्याग थीं करी जशुं परतीत हो मित्त॥
परमातम परमेश्वर वस्तुगते ते अलिप्त हो मित्त।
द्रव्ये द्रव्य भले नहीं भावे ते अन्य अव्याप्त हो मित्त॥कयुं॥

भक्त को भगवान् अभिनन्दन से प्रीत करने की भावना है किन्तु उसे कुछ कठिनाई दिखाई देती है। इसलिए वह अपने मित्र से सलाह लेता है। मित्र कोई बाहर का दूसरा मनुष्य

नहीं है किन्तु निज आत्मा को ही मित्र बना उससे ।
ले है।

ाप ोग भी अपनी ाा ो मित्र बना र से
ाह लो। आा बसे ा । मित्र है। ब मित्र तो
जाते हैं किन्तु यह ऐसा मित्र है जो आपकी सहायता रते
रते भी थकता ही नहीं हैं। अन्य रोशनी थ कती
र यह रोशनी भी नहीं थकती। सिद्धान्त में नर । वर्णन
रते ए हा है—

ववगय चंद सूर गह नक्खत्त तारा पवाहा

र्थात् नर में चंद्र र्य ग्रह न त्र और राओं ।
प्रकाश नहीं है किन्तु आत्मा तो वहां पर भी मौजूद है तः
ात्मा को ि बनाओ, उससे सलाह लो। वह भी साथ
नहीं छो ा। आा र परमात्मा । मेल होने अन्तराय
डालने वाला यह पुद्गल ही है। आत्मा परवस्तु पर ममत्व
र है अतः वह ल । हुआ है यदि आप किसी दू रे
के धन पर पना स्वामित्व जमायेंगे तो आपको राज्य दण्ड
। भागी हो पड़ेगा। क्योंकि जिस वस्तु पर ाप । ि-
ार नहीं है उसे अपना नना पराध है। ात्मा पर-
वस्तु ो अपना मान र परमात्मा । पराधी बन र है।
र उससे दूर पड़ रहा है।

शंका जा सकती है कि पुद्ग दि परवस्तु से है?
इसका म यह है कि जिस वस्तु पर आप पना ि-

कार मानते हैं वह यदि आपके अधिकार में न रहे, आपके अधिकार से बाहर चली जावे तो वह वस्तु परवस्तु ही है। दूगल परवस्तु है। उसका नाम ही पुद्गल है। पुद् यानी मिलना और गल यानी बिखरना। मिलना और वि रना पुद्-गल का स्वभाव है। इसके विपरीत आत्मा का स्वभाव स्थायी और सच्चिदानन्द स्वरूप है। आत्मा मिलता बिखरता नहीं है। वह अ ण्ड है। किन्तु पुद्गलों की मालिकी करने में वह अपना स्वत्व ोदेता है। यही परमात्मा बनने में अंतराय है। उदाहरणार्थ आप अपने शरीर के बालों को अपना कहते हो किन्तु आपकी इच्छा के विरुद्ध काले बाल सफेद क्यों हो जाते हैं। यदि उन पर आपका पूरा काबू होता तो आपकी इच्छा के विरुद्ध सफेद कैसे हो जाते हैं। इस शरीर को अपना मानते हो। क्या यह आपके ताबे में है? क्या आपकी इच्छानुसार यह सदा तनदुरुस्त और हृष्ट पुष्ट बना रहता है? कोई बीमारी तो नहीं छूती? इस में बुढ़ापे की झुर्रियां तो नहीं पड़ती? जरा रूपी रा सी इस को पोला तो नहीं बना रही है? यदि यह सब कुछ होता है तो शरीर आप का कैसे हुआ। इसे पर ही मानना पड़ेगा।

परवस्तु को अपना मानने के कारण आत्मा को परमात्मा बनने में बड़ी बाधा हो रही है। इस बाधा को मिटाने के लिए त्याग मार्ग को अपनाने की खास आवश्यकता है। लोग त्याग की निन्दा करते हैं किन्तु त्याग के बिना जीवन टिक नहीं सकता। मेरे पास कोद में वहां के ठाकुर सा. के लड़के आये थे वे मेरे सामने बैठे बैठे ही बीड़ी पीने लगे। मैंने कहा मेरी

इतनी बातें सुनने के बाद भी आपने सभ्यता के विरुद्ध ार्य किया। क्या ाप पर यही असर हुआ ? इन्होंने उ र दिया कि इस में क्या है। यह तो आग है इसके बिना हम ोगों ा ाम कैसे ल सकता है। मैंने कहा ाम तो लुगाई के वि भी नहीं चलता फिर उसे साथ क्यों नहीं लिए फिरते। अंत में वे समझ गये और उन्होंने मर्यादा का पालन किया। मतलब कि त्याग के बिना काम नहीं ल सकता जो लोग त्याग को व्यर्थ मानते हैं वे यदि निष्काम भाव से त्याग ारें तो उनको पता लगे कि त्याग का कितना महत्व है। त्याग मार्ग बड़ा विकट है। एक भक्त हता है—

अभिनन्दन जग नायक तुम सों मैं विनती केहि भांति करूं॥
अघ अनेक अवलोकि आपने अवघ नाम अनुमानि उरौ ॥

हे प्रभो ! मैं आपसे किस ति विनं करूं ! आप नघ हैं और मैं अघ हित हूं। तू पाप रहित है ार मैं पाप हित । फिर ापके पा से पहूंचू। तेरी प्रार्थना के लिए से दौडूं।

भक्त को इस प्र ार का भय होता है। ऐसी दशा में क करना ाहिए। इ के उ र में राम रित्र में भूति । दिया हुआ ए रूप दे ना होगा। पितृ और श्वसुर ल को उज्जवल बनाने वाली सती सीता ो र चन्द्र छुड़वा दिया था उ समय ा त्र व भूति ने इ प्रकार ीं । है। भव भूति कहते हैं कि राम न्द्र ने सीता

को में भेज तो दिया था किन्तु उनको बाद में पश्चात्ताप होने लगा। मैंने सीता को वन में भेज कर अच्छा नहीं किया। सीता गर्भवती थी फिर भी मैंने उसको वन में छुड़वा दिया यह अच्छा नहीं हुआ, इस प्रकार विचार करके रामचन्द्र रात दिन दुःखी रहते थे। वे वन में गये तो वहां जनक भी आये हुए थे। रामचन्द्र सीता को वन में भेज देने के अपराध के डर से पिता स्वरुप जनक के पास जाने में हिचकने लगे। श्वसुर को पिता भी कहते हैं। पति और पत्नी आपस में प्रेम बन्ध इस प्रकार बध जाते हैं कि उनके माता पिता भी एक दूसरे के माता पिता के स न गिने और माने जाते हैं। ऐसा वर्ताव र ने से ही पति पत्नी का सांसारिक जीवन सुखपूर्वक व्यतीत होता है। तभी संसार का गाड़ा ठीक तरह से चलता है।

रामचन्द्र को में . 'कोच और लज्जा अनुभव हो रही है कि मैंने इनकी पुत्री को वन में त्याग दिया है, अब इनके सामने कैसे जाकर ड़ा हो । इनको अपना मुख कैसे दि ।

यह बात आप लोग भी जानते हैं कि निरपराधिनी सीता को रामचन्द्र ने महज इसीलिए त्याग दिया था कि लोग उसके विषय में अपवाद बोल रहे थे। रा न्द्र को सी के चरित्र के विषय में तनिक भी संदेह न था। वे सी को पवि समझते थे। केवल लोकापवाद के कारण शुद्ध चरित्रा सीता को वन में छुड़वा दिया था।

इस प्र ार के अपरा से ंतप्त राम अपने पिता स्वरूप श्वसुर न से भेंट रने ो अनु व र रहे हैं। यही बात भक्त भी कहता है कि हे गो! मैं ने वा ओं के ाल में ंसा हुआ पराधी व्यक्ति प जैसे पवित्र स्वरूप भेंट कैसे करुं। मुझे बड़ी लज्जा और ंकोच हो है। तू घ है और मैं अघसहित । घ पाप ो हते हैं। मैं पापी तुझ निष्पापी से कैसे भेंट रुं। मेरे में क्या प हैं यह बताने के लिए भक्त हता है:—

पर दुःख दुःखी सुखी पर सुख सौं सन्तशील नहीं हृदय धरौं,
देखि आन की विपति परम सुख, सुनि सम्पति बिन आग जरूं।

पराया दुः देखकर स्वयं दुःखी होना र पराये ो सुखी दे र स ं सुखी होना ंत, व या ग नु अभिनन्दन भक्त । स्वभाव है।

यदि कोई भाई यह ंका करे कि पराये के दुः दे र यदि दुःखी होने गें तब तो हमारा जीवन दा दुःखी रहेगा। ारण कि ंसार में दुःखी व्यक्ति बहुत हैं। और यदि हम दूसरों के दुः से दुःखी हुआ ें तब तो सांस लेना भी दू र हो जायगा। इसी प्रकार पराये के सुख से सुखी रहेंगे तो पना व्यर्थ हो जायगा। इ समाधान ज्ञानी इस प्र ार रते हैं। वे हते हैं इ ब ो पनी ात्मा से तौल कर मझो। पनी - ात्मा से पू ो कि जब तुम दुःखी होओ और किसी भले ाद ्े के

ामने जा अपनी दुः गाथा कहो और यदि वह तुम्हारी दुः भरी व नकर जरा भी सहानुभूति न बताये तब तुम्हें कैसा लगेगा। क्या तुम्हारी यह ख्वाहिश नहीं रहती कि तुम्हारी करुण कहानी सुनकर सामने वाला व्यक्ति दो ांसू बहाये और तुम्हारे दुःख में दुखी होकर तुम्हें आश्वा- करे। जब तुम स्वयं यह चाहते हो कि कोई तुम्हारे ाथ सहानुभूति दर्शाये तब क्या तुम्हारा यह फर्ज नहीं हो ज । है कि म भी दूसरों के साथ सहानुभूति प्रकट करो। यह एक रल और अनुभूत नियम है। स्वयं प्र णित नियम है जि के लिए किसी अन्य प्रमाण या साक्षी आवश्यकता नहीं होती। तथा दूसरों को सुखी देखकर सुखी होने से निजी व्यर्थ कैसे हो जायगा बल्कि निजी द्धि णित हो जायगा।

जो दू रों को दुःखी दे कर दुःखी नहीं होते उनके लिए यह हा जाता है कि इनका कलेजा पत्थर का बना हुआ है। वह भी ोई आदमी है जिसका हृदय पर दुः से द्रवित न होता हो। मनुष्य स्वयं श्रेष्ठ बनना चाहता है किन्तु दूसरे के दुः में हिस्सेदार नहीं होना चा । तब वह श्रेष्ठ कैसे हा जा सकता है। किसी आम्रवृक्ष का अधिष्ठायक देव यह कहे कि ाम मेरा है। मैं इसके ल किसी को न ाने दूंगा। आप उस देव के विषय में क्या कहेंगे। यही कि यह देव नहीं कोई राक्षस है। इसी प्रकार कोई रोवर या नदी आपको आप घड़ा पानी से न भरने दे और घड़ा पकड़ ले तब आप इसके विषय में क्या कहेंगे। पवन यदि जीवन प्रदान

करे, पानी प्यास बुझाये और अग्नि भोजन पकावे तो आप कहेंगे। यही कहेंगे कि इनका उपयोग आ यदि ये चीजे दूसरों के में न आईं तो इनका होना न होना बराबर है। इसी प्रकार मनुष्य के लिए भी मानो कि जो दूसरे के उपयोग में नहीं आता वह किसी काम का। च पृथ्वी पर भार भूत है।

वान् ने शास्त्रों में अनुकम्पा बताई है। अनुकम्पा का अर्थ यह है—

कनुकूलं कम्पनं इति अनुकम्पा

अर्थात् अपने जैसे प्राणी को दुःखी देखकर दुःखी होना है। दूसरे के सहानुभूति रखना आवश्यक कर्त्तव्य है। किन्तु आप लोग केवल लेने में लगे हुए हैं, देना तो जानते ही नहीं हैं। दूसरों से मांगते फिरते हो कि दो दो। इस प्रकार भिखारी बने हुए हो किन्तु मांगने से नहीं मिला करता। दूसरों को देने से हम को भी सुख मिल सकता है। 'सुख दिये सुख होत है, दुःख दिया दुःख होत' यह बात गहरा अर्थ रखती है। यदि आप दूसरों को देते रहेंगे तो आप स्वयं सुख सागर बन जायगे। जिन लोगों ने दूसरों को देने का मार्ग स्वीकार किया है उन्होंने देते देते अपना शरीर तक दे डाला मगर न किया।

मेघरथ राजा ने कबूतर की रक्षा के लिए अपना सारा शरीर तक तराजू पर चढ़ा दिया था। महाभारत में भी शिविराजा की कथा आई हुई है। शिवि ने दूसरों को सुख पहुंचाने के लिए अपना शरीर तक देना स्वीकार कर लिया था। हदीसों में मोहम्मद साहिब के लिए भी कहा हुआ है कि उन्होंने फा ता के लिए अपने गालों का गोश्त देना स्वी ार किया था। इस प्रकार महापुरुष दूसरों को अपना सर्वस्व देने में सुख मानते हैं। यदि इसी प्रकार आप लोग भी दूसरों को सुख देने में आनन्द मानने लगें तो आपका जीवन ही बदल जाय! आप महान् आत्माओं की गिनती में आ जायं।

यदि आपके दिलों में यह शंका खड़ी हो कि हम सब को सुख कैसे पहुंचा सकते हैं क्योंकि सब तक हमारी पहुंच ही नहीं हो सकती तो इसका उत्तर यह है कि—मान लीजिये एक आदमी ने एक सार्वजनिक औषधालय कायम किया है। उसकी भावना है कि हर कोई व्यक्ति औषध य से लाभ उठावे। उसके मन में किसी के लिए किसी प्रकार का भेद भाव नहीं है। जो अस्पताल में पहुंचेगा वही दवा प्राप्त करेगा और स्वास्थ्य लाभ लेगा। वह दवा ाना सारे राजकोट शहर को दवा नहीं दे सकता और न सारा शहर ही उस दवाखाने में पहुंच सकता है। फिर भी वह औषधालय सार्वजनिक कहलाता है। कारण कि उसका द्वार बिना भेदभाव के सब जनता के लिए खुला है। इसी प्रकार आप सब लोगों तक पहुंच कर सब को सुखी नहीं बना सकते और न सब लोग आप तक पहुंच कर अपना दुः दर्द ही बता सकते हैं। तब

भी यदि · ।प दा सर्वदा यह भा ।र ते हैं कि जो मुझ त पहुंच र या मैं जिन तक पहुंच स ता हूं उनको सुखी बना तो ।प घ को सुखी बनाने वाले ही गिने जायंगे। भगवान गति अचा है और वह सब वों तक पहुंचकर उनके ल्याण ।मना र ती है। शरीर स्थूल होने से उतना नहीं ु ता। भावना यह र नी ।हिए—

त्रिभुवन की कल्याण कामना दिन दिन बढती जाय
दयामय ऐसी सति हो जाय।

यदि ।पने व प्रा णों के । ध्यान न र ौर पनी स्त्री बच्चों तक ही सीमित रहे तो आप में र बाघ बिल्ली में क्या न्तर गिना जायगा। अपने बच्चों ध न तो घ बिल्ली भी र ती है। मैं आपको उपालम्भ दूं या बा बिल्ली को। बिल्ली पने बच्चों को हीं र ना चाहती है तब पहले जाकर वह स्थान दे ाती है। फिर उस स्थान पर पने बच्चों को रखती है। किन्तु खेद है कि ।प लोगों में से बहुत से लोग क्या रते हैं। ।प को पनी लड़की देनी होती है तब आप क्या दे ते हैं? लड़की के को देखते हैं या जो ।पको अधि रुपये दे के उस को देखते हैं? इसी ।र यदि लड़के का सम्बन्ध रना हो तब लड़की तरफ दे ते हैं या तिलक डोरा की तर ? यही कि जो धिक रकम देवे उसी लड़ आप पसन्द रते हो। यदि ड़ मैट्रिक बी. ए. त पहुंच गया है

तब तो आपका दिमाग आ म तक चढ़ जाता है। द
हजार लेने के सिवाय अन्य बात भी न करेंगे।

बिल्ली आदि जानवर तो अपनी त के सुख
ध्यान र कर स्थान देखते हैं और प लोग इन्स कहलाने
वाले प्राणी होकर लड़के लड़कियों के सु की तर न दे र
रुपयों की तर देखते हो, यह बड़ी हैरानी की बात है। जो
पनी सं न तक की दया नहीं कर सकता और उसकी
मत लेकर देता है वह दूसरों की क्या दया करेगा।
कन्या व पुत्र दी के लिए स ने ले को मजबूर करके
छ भी र की लेन देन करना अन्याय है और नुकम्पा
को दूर हटाना है।

मतलब कहने का यह है कि भ कहता है कि भे
राम को जनक के पास जाने में को हो रहा था उसी प्रकार
कोच अपने कृत्य दे दे कर हो रहा है। हे प्रभो!
मैं किस प्रकार तुझे अपना । और तु तक पहुंचूं।
पराये दुः से दुःखी होना और पराये से खी होना
जनों का स्वभाव । भगवन्! तेरी रण में आनेवाले
के लिए यह आवश्यक है कि वह अपने को पर दुः दुखी
और पर सुखे सुखी माने। किन्तु मेरा बर्ताव इसके विपरीत
है। मैं दूसरों को खी दे कर ईर्षा अग्नि में जलता रहता
हूं और दूसरों को दुःखी देखकर बड़ा प्रसन्न होता हूं।

भगति विराग ज्ञान साधन कहि, बहुविधि डंहकत लोग फिरुं।
सिव सरवस सुखधाम नाम तव बेचि नरकप्रद उदर भरुं॥

सा पाप प्रकट कर देता है तो उससे लड़ने के लिए उतारु हो जाता हूं। इतना ही नहीं किन्तु दूसरों के रज के समान दोष को पहाड़ जितना करके बताता हूं और अपने पहाड़ समान दोष को राई जितना बताने की भी हिम्मत नहीं है। अपने छोटे से गुण को पहाड़ जि ना महान् बनाकर बताने में बड़ा न्द आता है और दूसरे के बड़े गुण को दे र आनन्द नहीं ाता उल्टे दुः होता है। उस निन्दा करने में मजा आता है। इस प्रकार अनेक रूप बना कर मैं लोगों को ठगा रता हूं। किन्तु वासना रहित होकर तेरा स्मरण करने के लिए एक क्षण जितना समय भी नहीं मिलता ऐसी द । में हे प्रभो! तेरा स्मरण करूं तो कैसे करूं। कैसे तेरी प्रार्थना करूं कैसे तु से भेंट रूं।

नाना वेश बनायं दिवस निशि पर बीति जेहि तेहि जुगति करूं।
एकौ पल न कबहूं अलोल चित्त हित दे पद सरोज सुमरूं॥

हे द मय! मेरे में इतने अवगुण हैं। ाथ साथ सन्त-जनों से द्रोह करने का महान् दुर्गुण भी है। सन्तों से द्रोह करना धर्म की जड़ काटना है। मैं सन्तों से द्रोह करता आ भी मण्डली में अपना नाम आगे र ना चाहता हूं। भगवन्! मैं तेरी प्रार्थना कैसे करूं।

भक्त लोगों को इस प्रकार का पश्चाताप होता है। ब हम इस बात पर विचार करें कि इस पश्चाताप से छूटकारा कैसे हो सकता है। श्री रामचन्द्र को भी पश्चाताप था कि मैंने

नि० ारण ानकी ो जंग मे दिया ा। ब जन ो कैसे दि ा ' र जन के सामने ाने में ाते थे। न भी इ वात को ताड़ गये कि राम मु से मिलने में ो र रहे हैं और उनको पने कृत्य ा पूरा प ताप है। इस लिए स्वयं जनक ने राम से हा कि राम! तुमने जो कुछ किया है वह समयानुसार उचित ही है। ऐसा रना ावश्य था। तुमने इस ार्य के रा सी को परिक्षा सौटी पर सा है। तः न्ता और को छोड़ो।

न ने र चन्द्र ो इस प्रकार ा ा न दिया था। परभ क्या हता है सो सुनिये—

अधम उद्धारन नाम तिहारो चावो इन संसार जी।

हे प्रभो! मैं अधम हूं और ाप धम-पापी के उद्धार कर्त्ता हैं। ाज दिन त ापने मेरा उद्धार इ लिए नहीं कि क्योंकि मैंने अपने पाप छिपा रखे थे। मुझे पने कुकृत्यों का पछतावा नहीं था। कुकृत्य रके और धि प्र होता था। दुष्कृत्यों को भले कृत्य मानता था। अब मैं आपकी शरण में ा र पने पापों ो प्र ट करता और दय से पश्चात्ताप करता हूं। ब मेरा शीघ्र ही उद्धार कीजिये। सार समुद्र से मेरी नैया ो पार उतारिये।

लोग धर्मी बनना चाहते हैं। लेकिन पने पापों ो छिपाकर वन ाहते हैं, यही उल्टी वात है। पापों को छिपाकर धर्मी वनने की व एक न द्वारा बताता ।

एक बार `णिक राजा ने अपने बुद्धिशाली पुत्र अभय कुमार से पूछा कि पापी लोग अधिक हैं या धर्मी जन। अ कुमार ने उत्तर दिया कि हैं तो पापी लोग ही अधि किन्तु अपने को धर्मी कह ने और बनने वाले लोग अधिक मालूम देते हैं। पुनः राजा ने पूछा कि यदि लोग धर्मी बनना हते हैं तो क्यों नहीं जाते। अभय ने उत्तर दिया कि पने पाप छिपाकर लोग ीं बनना चाहते हैं। यही कारण है कि वे विक धर्मी नहीं बन पाते। राजाने हा—यह त भे प्रत्यक्ष बतलाओ तब मेरे ध्यान आयेगी।

यकुमार ने नगर के बाहर दो खेमे (डेरे) तनवा दिए। एक खेमा काला था और दूसरा सफेद। खेमे तनवा यह घोषणा नगर में करवा दी गई कि जो लोग पापी हों वे ले खेमे में जावे और जो धर्मी हों वे सफेद खेमे में। राज्य की घोषणा सुनकर धड़ाधड़ लोग सफेद खेमे में घुसने लगे। जब सफेद खेमे में घुसने की जगह न रही तो लोग उसके बाहर बैठ गये मगर काले खेमे की तर जाने की किसी ने इच्छा तक नहीं की। केवल ए श्रावक काले खेमे में जाकर बैठ गया।

जब सबेरा आ और मार के साथ अ र र । ने दोनों खेमों की हालत देखी तो उसके आ र्य का पार न रहा। सफेद `ा लोगों से ठस स भरा है। बल्कि ने लोग जगह की कमी के कारण ब र बैठे हुए हैं। काले खेमे केवल एक श्रावक ` आ है भयकुमार ने दी कि

फेद खेमे में से ए   ए   व्यक्ति नि   र अपने धर्मीपन
ा बूत पे   करें। हुक्म सुनते ही सब मे पहले वेश्या
नि ल   र आई और कहने लगी कि महाराज ! मैं सबसे
अधि   धर्मात्मा   । मैं ो   ाती पीती   , पहनती ओढ़ती हूं,
ाव ि गार   रती   वह सब परोपकार के लिए ही करती
  । पराये युव ों   ा मनोरञ्जन और   सनातृ   करना मेरा
ध्येय है। मेरे   मान परोपकारी जीव और कौन होगा।

इसी प्र   र ोर जू ारी शराबी   ादि ोग   ाकर
अपने २   ार्य की उपयोगिता और औ त्य सिद्ध करने लगे।
 ाबी कहने   गे हमारे समान समाधि   ढ़ाने वाला और
 न होगा।   ाधुओं ो समाधि   ढ़ाने में देरी लगती है।
 न्तु हम तो एक बोतल पी   र तु   समाधिस्थ हो जाते
है। इसी प्रकार पर दारा से गमन करने वाले कहने लगे कि
हमारे   मान मुक्त जीवन बीताने वाला कौन होगा। हम किसी
ए स्त्री   बन्धन में नहीं   सते। हम सदा पक्षी की तरह
स्व   रहते हैं जब मन ाहा किसी वृक्ष पर जा बैठते हैं।
 मारे   मान निःस्पृह कौन होगा।

फिर महाजन लोग आये और   पने   र्मात्मपन की   बूतें
पे   रने लगे। हम लोग   खेती   रते हैं न व्यापारादि।
 केवल ब्याज पर रुपये देते हैं और सीधा   ामान   ा र
 पना   ज़ारा   रते हैं।   म किसी प्र ार   ा पाप नहीं
 रते।

मित्रों ! आज इस नाजुक जमाने में आलस्य ने कैसा पाप करा रखा है, कहते हुए लज्जा आती है। लोग समझते हैं कि हम व्याज ाते हैं, दूसरा कोई काम नहीं करते अतः हमको किसी प्रकार का पाप नहीं लगता। मगर मैं कहता हूं, व्याज ाना ही एक बड़ा पाप है और व्याज के कारण दूसरे भी अनेक पाप लगते हैं। पंचभदरा में प्रतापचन्दजी श्रावक रहते थे। पहले उनकी श्रद्धा जीव रक्षा करने में पाप होने की थी मगर बाद में वे शुद्ध श्रद्धा धारी बने थे। एक बार वे गंगापुर में से मिले। मैंने पूछा कैसे आये हो ? उन्होंने उत्तर दिया कि आपके दर्शन की भावना तो थी ही किन्तु अभी एक दूसरे प्रयोजन से आया हूं। एक शंका लेकर उपस्थित आ हूं।

पूज्यवर ! मैंने एक वणजारे को कुछ रुपये व्याज से दिये हुए हैं। देते वक्त मैंने पूछ लिया था कि किस काम के लिए रुपये लेते हो तो उसने बताया था कि नमक रीदने वास्ते रुपये लेता हूं। वह बहुत दिनों से मे नहीं मिला था अतः मेवाड़ में उसके होने की बर कर यहां आया हूं। उससे रुपये मांगे तब कहने लगा कि नमक रीदना न पोस । था अतः आपके रुपयों से बकरे खरीद लिए हैं। अभी बकरों का भाव मंदा है। यदि आप स तक ठहर जाते हैं तो ठीक है अन्यथा अभी बकरे साइयों को बेचकर आप के रुपये चुका दूं। वणजारे से यह ह सुनकर मैं चुपचाप अ की सेवा में उपस्थि आ हूं।

आपने यह सुअवसर प्रदान कर मेरे पापों को प्रकट करवा दिया। मैं श्रीमान् का जितना उपकार मानूं उतना थोड़ा है। अब आप जैसा उचित समझें, करें। दण्ड दें या क्षमा प्रदान करें, यह आपकी इच्छा पर निर्भर है।

राजा श्रावक की बात सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ। उसे अभयकुमार की इस बात पर विश्वास हो गया कि दुनिया में पापी अधिक हैं मगर अपने को धर्मात्मा कहलाने की अधिकांश इच्छा रखते हैं। धर्मी लोग कम हैं। किन्तु पापी लोग धर्मी होने का ढोंग रचकर धर्मियों की श्रेणी में अपना नाम लिखाना चाहते हैं। पापी लोग अपना पाप छिपाकर दुनिया के सामने अपने को स्वच्छ और शुद्ध रूप में पेश करते हैं।

भाइयों! उस श्रावक ने अपना पाप प्रकट कर जिस प्रकार अपने को हल्का बनाया था वही तरीका पाप नाश करने का है। लेकिन लोग अपने पापों को दबाकर जबान की सफाई से अपने को धर्मात्मा मनवाना चाहते हैं। कहा है कि—

जीभ सफाई करके भाई श्रावक नाम धरावे।
पोली मुट्ठी जहा असारे ज्ञानी यों फरमावें॥

भीतर कु और भावना है और ज से कुछ और बात बता कर अपने को शुद्धा री बताने की कोशिश करना व्यर्थ है। शा में बताया गया है कि पोली मुट्ठी असार है। उसी तरह जिसका दिल कोरा है, सह मूति शून्य है

धर्मात्मा नहीं हो सकता। भले ही कुछ लोग उसे धर्मात्मा मानने की भूल कर लें। किन्तु सदा के लिए सच ई छिप नहीं स ती। अनाथी नि के रित्र में यह बात आगे आने वाली है कि पोली मुट्ठी की तरह भ्रम या पोल लाना नहीं हो सकता।

मेरे कहने का नतीजा यह निकलता है कि अपने भीतर में छिपे हुए गुप्त पापों को प्रभु के सामने प्रकट करने से पाप छूप सकते हैं। प्रभु अशरण का शरण है। वह म से अधम व्य का भी उद्धारक है। किन्तु र्त इतनी है कि उ के मद्द कूट पट नहीं चल सकता बच्चे के समान भोले बनकर नि ालस हृदय से हृदय शुद्धि करनी चाहिए।

जो मन में सोई बैन में, जो बैनानि सोई कर्म।
कहिये ताको सन्तवर, जाको ऐसो धर्म॥

जो बात मन में हो वही बात ब्दों द्वारा व्यक्त र । और जो बात व्यक्त की जाय आचरण भी उसी के नुकूल हो तभी मनुष्य ंत कहा जा सकता है। में छ र ना, शब्दों से कुछ और बता , तथा आ र कुछ और ही ा रना दुर्जन ा ल ण है। ऐसा व्यक्ति न ता।

प लोग भी पना पाप दबा ो मत। कि - र के ामने प्र र दो। वह म उद्धारन और पतित

न है अतः उसके मने दिल ोलकर रखने से आपका पापों से छुटकारा हो जायगा। आप अधर्म को अधर्म मानोगे तभी स ग्दृष्टि होकर आत्म कल्याण कर सकोगे।

१६-८-३६
राजकोट

१४

वैर से वैर शान्त नहीं हो सकता

सुमति जिनेश्वर साहिबा जी, मेघरथ नृप नो नन्द;
सुमंगला माता तणो, तनय सदा सुख कन्द।
प्रभु त्रिभुवन तिलो जी ॥१॥

ार्थना--

यह भग न् सुमतिनाथ की प्रार्थना है । इस प्रार्थना
भक्त ने भगवान् मतिनाथ से बड़ी । है। उ
ाशा वाजिव है या गैर जिब इस किये
बिना उ ने आशा है। वह किसी प्र ार के त वित
में न पड़ अनन्य भाव से हृदय में परमात्मा क्ति ो
स्थ दे रहा है। किसी के । वाद वि द .
प्रभु भक्ति । - वलम्बन नहीं ले रहा है किन्तु तः स्फुटित
ई वों से प्रेरित हो पुष्प से

प्रभुभक्ति का रसपान कर रहा है। वह किसी के द्वारा निन्दा किये जाने की पर्वाह नहीं करता और न किसी की स्तुति का ही याल करता है। वह अपनी धून में मस्त है। यदि भंवरे से कोई कहे कि मालती के फूल में अमुक दोष हैं तो वह बुरा नहीं मानता किन्तु रस पीने में मस्त रहता है। इसी प्रकार भ ी परमात्मा के स्वरूप के विषय में वाद विवाद और तर्क वितर्क में न पड़कर केवल भक्ति में ही लवलीन रहता है। कहा है—

वादो नावलम्बनीयः बाहुल्यावकाशत्वात् नियतत्वाच्च ।

भक्त लोगों को चर्चा में न पड़कर परमात्मा की भक्ति अपनानी चाहिए। कारण कि चर्चा या वाद विवाद से बात ती ही जाती है। कोई स नतीजा नहीं निकलता। महाभारत में कहा है कि—

तर्को ऽ प्रतिष्ठः

अर्थात् तर्क की ोई स प्रतिष्ठा नहीं है। तर्क । उ भी नहीं है। जिसकी जितनी बड़ी बुद्धि उ । ही बड़ा उसका तर्क होता है। प्याज के छिलके उतारे जाओ ।खिर में कुछ न मिलेगा। अतः भक्त का कर्त्तव्य है कि वह भ्रमर की तरह निन्दा स्तुति या वाद विवाद में न पड़कर प्रभु भक्ति रता ज ।

सूर्य विकासी कमल से यदि कोई कहे कि सूर्य की किरणें गरम होती हैं अतः तू सूर्य किरणें मत ग्रहण कर तो क्या वह उसकी बात पर ध्यान देगा ? कदापि नहीं। पपीहा से कोई कहे कि सुन्दर सरोवर भरा हुआ है पानी क्यों नहीं पी लेता, क्यों स्वाति नक्षत्र की बुन्दों के लिए प्यासा मर रहा है ? तो क्या पपीहा उसकी सलाह को मानेगा ? नहीं मानेगा।

लोग भी ऐसे होते हैं। वे बुद्धिवाद में उल कर नन्य भाव से प्रभु भक्ति करने में ही व्यस्त रहते हैं। उनको किसी के द्वारा की हुई निन्दा से दुः नहीं होता। किन्तु प्रभु भक्ति में विघ्न ाने पर दुः होता है। यदि प्रभु भक्ति बराबर होती रहे तो उन्हें बड़ा ानन्द आता है। इस बात के सिवा दुनिया किसी बात में उनको सु दुः नहीं होता।

ापको भी प्रभु भ करने का यह सुन्दर अवसर मिला है। पर्यूषण पर्व के ाधे दिन व्यतीत हो चुके हैं। ब चार दिन और बाकी हैं। इन चार दिनों में अनन्य भाव से ऐसी ही भक्ति करो। ऐसा वसर फिर नहीं मिल सक । ो वक्त हाथ से नि ल गया वह पुनः नहीं ाने ा है।

र॰ रि

. सूत्र ा जो प्र ग ल रहा है उस से ती र व मेरे हृदय को अत्यन्त प्रस रने वाले हैं। उ ग सुकुमार चरित्र से भगवान् सुमतिना की क्ति बता ।

लोग यह बात जानते हैं कि गज सुकुमार का जन्म किस सर पर हुआ था। फिर भी उस प्रसंग को दुहरा र कुछ रल बना देता हूं। देवकी को अभी त यही ात कि उसके सात त्र हुए थे। जिन में से एक ग्वाले के घर पर रह कर बड़ा हुआ है और छ पुत्र कंस के द्वारा रे गये थे। कि जब उ ने भगवान् अरिष्टनेमि से यह ना कि के पुत्र ंयम ा पालन कर रहे हैं, तब उनकी खुशी का र न रहा। उसे कितनी खुशी हुई होगी, हम न्दाजा नहीं लगा कते।

उसको स धर्म पर बड़ी जम गई। वह कहती है—लोग कहते हैं कि धर्म में ोई क्ति नहीं है मगर इन छ पुत्रों को जिन्दा दे कर झे सत्य और धर्म अनन्त शक्ति का भ हुआ है। मैं समझती थी कि दुष्ट ंस ने पांव पछाड़ कर मेरे पुत्रों को मार डाला है। केवल कृष्ण ही ए उसके हाथ से बचा है। मैंने पुत्रों के मारे जाने के सम्बन्ध में छान बीन भी नहीं । मैं केवल पति आ ा का पालन रना ज ती थी। मेरे पुत्र उनके भी पुत्र थे। वे जितने झे प्यारे थे उतने उनको भी थे। कि कं के थ वचन वद्ध होने से रक्षा के लिए उन्होंने उसको ौप दिए थे। झे तर्क वितर्क करने वश्यकता न थी। जो कुछ उन्होंने किया है सत्य का पालन करने के लिए किया है। वे हते तो न पालन करने के लिए कोई दूसरा मार्ग भी ा कते थे। किन्तु उन्होंने जिस रूप में न दिया था उ रूप में पाला है।

चिन्ता हो यह मेरे लिए तथा मेरे राज्य वैभव के लिए लज्जा की बात है।

श्री कृष्ण ने माता को कार कर कहा—माताजी ! आज आप उदासीन क्यों बैठी हैं जब मैं प्रणाम करने आया करता हूं तब आप सदा प्रसन्न वदन होकर मुझ से बोला करती थी और लाड़ प्यार करती थी। किन्तु आज क्या कारण है जो आप इस प्रकार चिन्ता मग्न हो रही हैं? झ से भाषण भी नहीं करती, मेरे सिर पर हाथ नहीं फेरती।

ष्ण की बोली सुनकर देवकी का ध्यान भंग हुआ। उसने कहा— त्र कृष्ण ! मैंने तुम्हारा आगमन ज ही न था। तुम मेरे योग्य और सच्चे त्र हो। अतः दुः का रण पूछते हो किन्तु अपना दुः तेरे सामने क्या कहूं?

हूं तुझ आगल शी कहूं कन्हैया,
बीतक दुःखड़ा री बात रे गिरधारीलाल।
दुःखनी तो जग में घणी कन्हैया,
पिण दुःखनी थारी मांय रे गिरधारीलाल।

इस विषय का महात्माओं ने सरल काव्यों द्वारा सरस वर्णन किया है। उस थोड़ा नमूना आपके मने रखता हूं।

देवकी कहती है—पुत्र ! तू मुझ से मेरे दुःख की बात पूछता है। किन्तु मैं क्या कहूं। इस जगत् में अनेक स्त्रियां दुःखी हैं लेकिन मेरे समान दुःखियारी और कौन स्त्री होगी।

महापुरुषों को जब चिन्ता होती है तो वे उसको च्चा रूप देते हैं। कई लोग झूठी चिन्ता करने लगते हैं और थूंक लगाकर आंसू दिखाने लगते हैं। पहले तो महापुरुषों को चिन्ता होती ही नहीं है। और यदि कोई चिन्ता होती है तो उसके समान कोई दुः नहीं समझते। इसीलिए देवकी कहती है कि मेरे समान दुःखीयारी ी इ जगत् में कौन होगी।

देवकी की बात सुनकर श्री ष्ण कहने लगे कि माता ! तेरे समान कोई दुःखी नहीं है तो मेरे समान दुःखी न होगा ! जब मेरी माता दुःखी है तो मैं सुखी कैसे हो । झ को धिक्कार है जो मेरे रहते मेरी माता दुःखी है

देवानु प्रिय मित्रो ! श्रीकृष्ण अपनी माता के दुः से इतने दुःखी हो रहे हैं मगर आप लोग अपनी पनी ताओं के थ । व्यवहार रते हो इ बात पर वि ार रो। इ जमाने में ई लोग ष्ण के समान भी होंगे। मगर ई तो पनी माता ो डांटते हैं। ी के ाले ग र ा को ार देते हैं। माता बेचारी डरती है कि त्र न है यदि कहूंगी तो घर से निकाल देगा। इस बूढ़ापे में अ ठि ा है ां जा । विनीत पुत्र पे ा रते हैं गर

यह नहीं ो ते कि मैं कि के साथ ऐसा बर्ताव र रहा । मैंने जराती स्त में यह कविता पढ़ी है—

टगमग पग टकतो नहीं खाय सके नहीं खाद ।
उठी न सकतो आपथी लेश हती नहीं लाज ।
ते अवसर आणी दया बालक ने मां बाप ।
सुख देखे दुख टेवने ए उपकार अमाप ।
कोई करे एवे समय बे घड़ियक बरदास ।
सारी उमर तक रहे ते नर नो नर दास ।

ाज मातृ शि । पर ध्यान नहीं दिया जाता है। लेकिन जब त माता और पुत्र के म्बन्ध का पूरा या न दिलाया जाय तब तक शिक्षा अधूरी है। आज इस बात पर ध्य दिया जाता है या नहीं, यह बात दूसरी है। किन्तु जब तक म । और त्र का सम्बन्ध रहेगा इस कविता का भाव भी कायम रहेगा। लोग बड़े होकर मूंछों पर ताव देने लगते हैं। किन्तु उस समय को याद नहीं करते जब उनके पैर जमीन पर न टिकते थे, घिस घि कर चलते थे, स्वयं हाथों से ाना नहीं । कते थे और अपनी र । भी ाप नहीं कर सकते थे। तब की बात याद करो कि माता का कितना उपकार है और उस कितना महत्त्व है। जैन । में म ।

"देवयगुरुजण संकासा" श्री उपासक दशांगसूत्र अध्ययन तीसरा

स्वयं इस बात को समझते थे कि इन छोटी मोटी बातों का दुः मेरी माता नहीं माना करती। कोई बड़ा दुः है तभी इतनी चिन्ता में मग्न थी। धन, कुटुम्ब या मेरी चिन्ता से भी बढ़कर कोई चिन्ता है। जो चिन्ता साधारण व्य से नहीं मिटाई जा सकती वैसी चिन्ता होनी चाहिए। ष्ण ने आग्रह पूर्वक पूछा कि शीघ्र चिन्ता का कारण बताने की कृपा करो।

कृष्ण का आग्रह दे कर देवकी कहने लगी–प्रिय पुत्र! तेरे सामने मैं अपनी चिन्ता का कारण व्य न करूंगी तो किसके सामने करूंगी। तू ही मेरा दु पूछने और सुनने वाला है। तथा दुः दूर करने वाला भी तू ही है। क्या कहूं, कहा नहीं जाता। कृष्ण! मैंने सात पुत्रों को जन्म दिया मगर एक भी त्र को शिशु अवस्था में खेला नहीं सकी। व्यर्थ पेट में भार ढोया और व्यर्थ ही माता की पदवी पाई। छ पुत्र तो सुलसा के घर बड़े हुए और दीक्षित हुए जिसक दर्शन व परिचय अर्हन्त अरिष्टनेमि से मुझे हुआ। और सातवां तू यशोदा के घर गो ल में बड़ा हुआ। मैं लाड़ प्यार रने से कोरी ही रह गई। जिसमें हीरे का ण नहीं है उसे व्यर्थ हीरा कहा जाता है। चित्र के सूर्य को सूर्य कहने से क्या लाभ? जो ताप आदि नहीं दे ।

कृष्ण! माता वह है जो अपने पुत्र को नहलाती धुलाती हो, उसका मलमूत्र साफ करती हो, उसको दूध पिलाती हो और उससे लाड़ प्यार करती हो। मैं ये सब कर्त्तव्य पूरा न कर सकी। यों ही माता का नाम धराया है।

समेट कर पुनः मूल रूप रण कर लिया। जिस रूप में आये थे वही प बना लिया देवकी हने लगी--कृष्ण! तू इस बात को भता है कि दूध में मिली शक्कर नहीं निकाली जा कती। फिर इतनी जिद्द क्यों पकड़ी थी? कृष्ण बोले--माता मैं इस बात को ज ता हूं कि दूध में मिली क्कर नहीं निकाली जा सकती। किन्तु बालक इस ब को क्या जाने। मैं उ मय बाल था। मैंने बालोचित हठ पकड़ी थी।

देवकी बोली—कृष्ण! यह ठी है। किन्तु इतने मात्र से मेरे मन को तोष नहीं होता। इस बनावटी रचना से मेरे मन को ति नहीं होती।

ष्ण ने कहा—माता! अच्छी बात है। मैं ऐसा उपाय सोचता कि जिससे मेरे छोटा ई पैदा हो। प चिन्ता और दुः छोड़कर प्रसन्नवदन रहियेगा।

ाप लोग ाव हैं अतः कृष्ण के कार्य पर ध्यान लगा कर चार करिये। भाई की प्राप्ति के लिए कृष्ण ने कौनसा उपाय क में लिया था इसको सोचो। आप लोग बार बार कहा रते हो कि महाराज! हम श्रावक हैं, ह घर बार भालना पडता है, ब बच्चों का रक्षण करना पड़ता है। तः ऐसे कई क करने पड़ते हैं जिनका धर्म से कोई बन्ध नहीं होता। आप साधु हैं अतः ापके लिए सब कुछ निभ सकता है किन्तु मित्रों! मैं पूछता हूं कि क्या कृष्ण ाधु थे? नहीं, कृष्ण आदर्श गृहस्थ थे। फिर भी भाई की ति के ति

पास । र उपस्थित हो । । देव हाथ जोड़ र बोला—क्या आज्ञा है ? झे क्यों याद किया गया है ?

ाज ष्ण मौजूद नहीं है । मगर वह तप तो मौजूद है जिसके हारे देव का आ न भी हि ज । है । जिस तप से दे सन भी हिल सकते हैं उस तप का ाल न न लेकर इधर उधर भ ते फिरते हो यह लज्जा बात है ।

कृष्ण ने देव से कहा कि मेरी म को प त्र की अ श्यकता है तुम ऐसा उपाय रो जि से मेरे भाई हो । इसी प्रयोजन के लिए तुमको कष्ट दिया है ।

कृष्ण की बात नकर देव ने हा—कृष्ण ! ापने को ऐसे समय याद किया है जब कि तुम्हारे भाई होने का योग है । तुम्हारे भाई होने वाला है । जब वर्षा होने वाली थी कि लोगों ने वर्षा के लिए मनौती मानी । वैसी ही बात तुम्हारी भी हुई है । किन्तु एक बात है कृष्ण, तुम्हारे भाई अवश्य होगा । लेकिन वह छोटी अवस्था में ही भगवान् अरिष्ट नेमी के पास ज्ञान नकर दीक्षित हो जायगा ।

आप लोग इस बात का विचार करिये कि अपने भाई के दीक्षित होने की बात सुनकर कृष्ण को प्रसन्नता हुई होगी या रंज हुआ था । आज लोग दी । का म लेते ही ने लगते हैं । उनको अच्छे विद्वान् और र ार शील साधु तो चाहिए । लेकिन दीक्षा नहीं चाहिए । विना योग्य व्य यों के दीक्षित हुए, योग्य साधु कहां से मिल कते हैं । अ की

ा ना तो रना मगर शादी न रना। यह बा से हो
ती है कि बिना ादी किये त्र प्राप्ति हो। ब दी ा
होगी तो साधु क्या आसमान से टपकेंगे? अच्छे ाधु ाप
लोगों की भावनाओं से पैदा हो ते हैं। यदि ापकी यह
ा रहे कि हमारा पुत्र बड़ा हो र दी ा धारण र य
धर्म ा पालन करे तो अच्छा है, योग्य ाधु मि कते
हैं। ऐसी भावना के अ व में ऐसे ही ाधु मिलेंगे जो दू रों
के सिर झुकवाने के अभिलाषी है। थवा की ादि
ा हों। उनसे आत्म कल्याण नहीं हो ा।

मेरा भावी भाई दीक्षा ग्रहण रेगा यह ान र ष्ण
तीव प्र न्न हुए। कृष्ण वि रने लगे कि इससे बढ़
सौभाग्य की बात क्या हो ती है कि मेरा भाई भागवती
दीक्षा अंगी ार रके पना ार जगत् का ल्याण करेगा।
मैं राज्य ार्य के जग का भला करता और मेरा भाई
म ण रके स्वपर का भला रेगा यह च्छा ही है।

बध ला से उठकर कृष्ण अपनी माताके ाये
ार ा र हने लगे माताजी चिन्ता छोड़िये। आपको
मा और साढे सात रा वाद त्र की प्रा होगी। यह
व सुन र देवकी बहुत प्र हुई। देवता भविष्य वाणी
के अ सार मा साढे ात रात्रि बाद देवकी ने त्र को
जन्म दिया। त्र जन्म ा उत्सव कितने ठाठ से मन ा ग
हो इ ल्पना रिये। पहले ात पुत्रों ा उत नहीं
म ा उ र इ उत व में नि ाली गई।

र ˙ ष्ण जिस उत्सव के प्रबन्धक हों उनकी क्या बात कहना। उस समय यादव लोग पूर्ण समुन्नत और सुखी थे। दे पर बा । मण या भीतरी पट का जरा भी भय नहीं था। तः ष्ण ने अपने भाई के जन्म का उत्सव बड़े उत्साह साथ मनाया। आजकल के उत्सवों की तरह ऊपरी आडम्बर बहुलता न थी किन्तु जनता के कल्याण और मनो विनोद धिकता थी।

बालक का नाम गज सुकुमार र । गया। पांच धाय माताओं से उनका पा पोषण हुआ। जब गज सुकुमार युवावस्था प्रवेश कर रहे थे तब उनकी शिवरमणी से शादी राने के लिए ही मानों भगवान् नेमीनाथ द्वारिका के बाहर पधारे। ष्ण को अत्यन्त प्रसन्न वदन दे कर गज सुकुमार ने पूछा-भैया! आजआप इतने खुश क्यों हैं? क्या बात है? आप कहीं जाने की ारी कर रहे हैं? कृष्ण ने उत्तर दिया-जगत् के कल्याण कर्ता भगवान् नेमीनाथ पधारे हैं, उनके दर्शनार्थ ान में जा रहा हूं गज कुमार ने कहा-भैया! ऐसे पवित्रात्मा भगवान् के दर्शन के लिए मैं भी आपके थ ूंगा।

मित्रो! ष्ण को देव । हा हुआ गज सुकुम ा भविष्य याद था। वह ज ते थे कि गज सुकुमार भग न् अरिष्टनेमी के पास आत्म ञ कर दीक्षा अंगीकार लेंगे। अब आप लोग बताइये कि कृष्ण अपने प्यारे भाई को भगवान् के स ले जावे या नहीं? यदि पको किसी देव से

आज मैंने भगवान् नेमीनाथ के दर्शन किये हैं। माता ने कहा
त्र ! तेरे नेत्र पवित्र हो गये। मैंने अंजनादि से तेरे नेत्र साफ
थरे र ` थे वे ाज भगदर्शन से सफल हो गये हैं।

फिर गज सुकुमार ने कहा-- माता मैंने भगवान् की वाणी नी है। माता ने कहा--पुत्र तेरे कान पवित्र हो गये। आभूषणों से कानों की ोभा नहीं है। कानों की शोभा सत्पुरुषों के वचन वण से है। फिर गज सुकुमार ने कहा-- म । मैंने भगवान् के वचन श्रद्धे प्रतीते और रुचाये हैं। माता ने कहा--पुत्र तेरा जीवन और शरीर सफल हो गया।

गज कुमार ने विचार किया कि अभी तक माता मेरे मनोगत भ ों को नहीं समझ पाई है। अतः स्पष्ट शब्दों में हा कि ता जिस आदमी को भगवान् के वचनों पर श्रद्धा प्रतीति औररुचि हो जाती है उसे ंसार का माया जाल अच्छा नहीं लगता। भगवान् का उपदेश जिसकी हड्डी और मज्जा में प्रवे कर जाता है उसको संसार जहर के समान अ लगता है। मुझे भी संसार अ ार और जहर के समान लगता है अतः भगवान् की सेवा में दी । अंगीकार करना ाहता ं।

गजसुकुमार की त नकर देव माता को स्वा-विक पुत्र स्नेह हित आ। इससे उ को मूर्छा आगई। मूर्छा से उठकर कहने लगी कि त्र तेरी छोटी है अतः मैं दी । अ । कैसे दूं। गज सुकुमार ने हा—माता यदि देश पर

कोई शत्रु ढ़ाई करके आजावे उ वक्त तू मुझे घर में छिपा र रखेगी या त्रुओं का सामना रने की बात कहेगी। माता ने हा—भला ऐसे वक्त घर में कैसे छिपाकर रक्खूंगी। तुझे रण संग्राम में जाने के लिए प्रोत्साहन दूंगी। मैं वीर त्रियाणी और वीर माता हूं अतः ऐसे प्रसंग पर मेरी यही इच्छा होगी कि यदि गर्भ में भी पुत्र हो तो वह बाहर निकल कर युद्ध में प्रयाण करे। ऐसे अवसर पर कायरता की बात से र कती हूं।

गज कुमार बोले-माता जब साधारण शत्रु का सा । रने लिए भी तू मुझे नहीं रोकना चाहती तो कर्म शत्रु से युद्ध रने के व ऐसी बात क्यों हती है। तू वीर माता है तः अंतरंग युद्ध के प्रस्थान के व तुझे प्रस होना हिये।

गज कुमार का थन सुनकर देवकी को जोश आ ग । मेरा पुत्र दी । ले र सिद्ध बुद्ध और होवे इससे ब कर उस हित की और क्या बात हो स ती है। य प्रस । बात है और पुत्र के योग्य ही ब है।

कृष्ण को भी यह समाचार विदित होगया कि गज सुकुमार सार से उदासीन हो गये हैं और मुनि बनना हते हैं। उनके पास आकर कहने लगे—भैया! तुम दीक्षा मत लो। मेरी इच्छा है कि मैं राजपाट छोड़ कर तुमको सौंप दूं और तुम्हारी सेवा रूं। इससे अधिक भाई के लिए कृष्ण

क्या त्याग र सकते थे। किन्तु गज सुकुमार ने कहा–राज्य पाट स्वीकार कर लेने पर भे जरा मरण और जन्म ादि का दुः तो न होगा? कृष्ण ने कहा–ये दुः मिटाने की ता हमारी नहीं है। ये दुः तो आत्मा स्वयं ही मिटा ता है। दूसरा व्यक्ति नहीं मिटा सकता। गज कुमार बोले—"जब प मेरे जन्म-मरण नहीं मिटा सकते तो मुझे दीक्षित होने से क्यों रोकते हैं।" ष्ण निरुत्तर हो गये, और कहने लगे, अच्छा, एक दिन के लिए राज्य करना स्वीकार र लो।

गजसुकुमार ने एक दिन राज्य करने की वात य सोचकर स्वीकार कर ली कि इससे मेरे हाथ में सत्ता आ जायगी जिससे दीक्षा की तैयारी में गमता हो जायगी तथा मेरे वैराग्य की परी ा भी हो जायगी। राज्य अंगीकार करके स छोड़ देने से कच्चे-पक्के वैराग्य की जाँच हो जायगी।

 ष्ण ने अपना राज्य गजसुकुमार को सौंप दिया। राज्य सौंप कहने लगे यद्यपि हम आपको सब कुछ सौंप के हैं फिर भी अ की कोई इच्छा या आज्ञा हो तो कहिये, हम उसे पुरा करें। तुरंत गज कुमार ने हुक्म दिया कि मेरे लिए दो ल सौनैया देकर न्त्य न से दीक्षा के उपकरण मंगवाओ। तथा एक ला सौनैया देकर नाई से मेरा र मुण्डन ाओ।

दीक्षा के उपकरण ओघे पात्र आदि रत्नों के बने ए न थे जिसके लिए दो ल सौनैया देने की आवश्यकता हुई।

किन्तु वे क्षत्रिय थे, दा र थे। वनिया न थे ो मोल तोल रते। : स्वतः इनाम के रुप में इतनी र म देते थे।

गजसुकुमार की सुनकर कृष्ण म गये कि इनका वैराग्य सच्चा है। स्मशानिया वैराग्य नहीं है। यह रंग रमीची रंग है, जो चढ़ने के वाद उतरता नहीं। उन आ नु- ार सब श्री मंगवाई गई ैर दीक्षोत्सव किया ग । फिर भगवान् नेमीनाथ की सेवा में उनको ले गये। भग न् के पा प र गज कुमार ने निव्रत ारण र ति । निव्रत लेकर विचारने लगे कि यह सि रा के ैंने जो व्रत लिया है वह नियों के ंरक्षण में र र जीवन बिताने वास्ते नहीं लिया है। किन्तु जल्दी से जल्दी न्म मरण के दुः ों से छुट रा ने वास्ते या है।

अरज करत तन देखत ऐसे सुनिये श्री जिनराज,

किला फतह तुरत हुवे मुझ ऐसी राह बताय।

द्वादशमी प्रतिमा वहने का हुक्म दिया फरमाय॥

गज कुमार भगवान् के पास जा र कहने गे-भगवन्! मैं शीघ्रातिशीघ्र इ शरीर रूपी ि . ो छोड़ र जन्म मरण अंत रना ाहता । भे इ जा रह पसन्द नहीं है मैं रीरी होना ाहता ं। पा रके ोई ऐसा उ य बताईये कि जि से जल्दी मुक्ति प्र र ।

आप ोग गज मार के समान अ रण नहीं ते। मगर उनको आद में मने र ो। सुना

जाता है कि रेडियम धातु की कीमत साढे चार करोड़ रुपया तोला है। ऐसी बहुमूल्य धातु यदि चार छ तोला मिल जाय तो क्या कहना है। किन्तु यदि उसका एक रजकरण भी मिल जाय तो उससे भी बहुत काम हो सकता है। इसी प्रकार गजसु मार का जीवन रेडियम के पहाड़ के समान है। उस जीवन के एक अंश का भी यदि आप अनुसरण कर सकें तो बड़ा आनन्द आ जाय।

आज ही दीक्षित हुए और आज ही गजसुकुमार को मोक्ष प्राप्त करने की भावना कैसे उत्पन्न हो गई? यह प्रश्न पैदा होना स्वाभाविक है। बात यह है कि जब किसी बात की सच्चाई मालूम हो जाती है तब उसके बाद ज्ञानी व्यक्ति को उसके विपरीत आचरण करना कठिन हो जाता है। गज-सुकुमार का वैराग्य इतनी उत्कृष्ट दशा को पहुं चुका था कि उन के लिए यह शरीर रूपी कारागार असह्य हो गया था। यदि किसी सच्चे या प्रामाणिक व्यक्ति को जेल की सजा हो जाय तो क्या वह जेल में पड़े रहकर सड़ते रहना पसन्द करेगा या बाहर निकलने का तत्काल उपाय करेगा? किसी अमीर के लड़के को जो सदा इत्र फूलेल के अन्दर रहने वा । हो कोई कारणसर टट्टी में बंद कर दिया जाय तो क्या वह उसमें बंद रहना चाहेगा? वह यही चाहेगा कि मुझ से जो कुछ लेना चाहो ले लो मगर इस नारकीय दुर्गन्ध से शीघ्र निकालो।

यही बात भगवान् गजसुकुमार के लिए लागू होती है। उनकी आत्मा शरीर रूपी पिंजड़े में से उड़ने के लिए छटपटा

रही है। एक क्षण के लिए भी वह देरी करना पसन्द नहीं र
रहे हैं। पातञ्जल योगशास्त्र में कहा है कि अन्य रणों से
समाधि देर से भी जागृत हो सकती है किन्तु वैराग्य
भावना से शीघ्र ही समाधिभाव पैदा होता है। उत्कृष्ट वैरा
के कारण गजसुकुमार ने अपने को साथी मुनियों के बी में
रखना भी उचित न समझा। और भगवान् से अनुनय वि
किया कि मुक्त होने का अचूक नुस्खा बताइये। भगवान् ब
कुछ जानने वाले थे। वे सर्वज्ञ सर्वदर्शी थे। तः नवपूर्व
ानधारी और बीस वर्ष की दी ा पर्याय वाले के लिए जो
बारहवीं प्रतिमा ग्रहण रने योग्य होती है वही बारहवीं
प्रतिमा आज के दीक्षित गजसुकुमार के लिए बता दी। संसार
से मुक्त होने का यह एक उत्कृष्ट साधन है।

भगवान् अरिष्ट नेमी की आज्ञा पाकर गजसुकुमार महा-
ाल स्म ान में चले गये। वहां पहुंच कर एक रात्री के लिए
नासिका पर दृष्टि र कर ध्यान में मग्न हो गये। ड़े र ध्य
तल्लीन हो गये।

उधर से सोमिल आ निकला। उसने दे ा यह कौन
मनुष्य स्मशान ड़ा है। निकट से देखने पर उसे ालुम
हु ा कि यह तो गज कुमार है जिसके साथ मेरी कन्या ा
वि ह रने के लिए श्री कृष्ण ने मांगणी की है और जो
कुंआरी अंतः पुर वन्द है। बस दे ते ही उसके मन में क्रो
उमड़ आया।

अनेक लोग साधु को देखकर बड़े प्रसन्न होते हैं। साधु दर्शन से उनका हृदय प्रफुल्लित हो उठता है और उत्तेजित विकार भाव भी शांत हो जाता है। किंतु सोमिल का क्रोध उमड़ आया, इस में पूर्व जन्म के उसके संस्कार कारण भूत हैं।

सोमिल कहने लगा कि हे अपथ्य प्रार्थिक! काली पीली अम स्या में जन्म ग्रहण करने वाले! लज्जा लक्ष्मी हीन! अवांछित की वाञ्छा करने वाले! तुमने साधुपन ग्रहण करके मेरी कन्या ा अपम किया है। मैं तुझे ऐसा दण्ड दूंगा कि भविष्य में कोई ऐसी भूल न करे।

वह स्थान एकान्त था। कोई अन्य मनुष्य वहां न था। तः अच्छा अवसर जानकर पासके तालाव से गीली मिट्टी ले आया। मिट्टी लाकर ध्यानस्थ खड़े गजसुकुमार के मस्तक पर ारों ओर पाल बांध दी। पाल इस प्रकार बांधी कि तक पर रखी हुई चीज बाहर न गिर सके। यह पाल गज- कुमार के मस्त को ठंडाई पहुँचाने के लिए नहीं बांधी गई थी किन्तु उनको कष्ट पहुंचाने के लिए बांधी गई थी। मिट्टी में उतना कष्ट देने की ताकत न थी और न वह गर्म ही थी। अतः स्मशान में जलाये हुए मुर्दों की अवशिष्ट अग्नि उठा लाया और उनके मस्तक पर धर दी। चारों ओर मिट्टी की पाल पहले ही बनी हुई है ताकि अग्नि के धधगते अंगारे उनके मस्तक से नीचे न गिर सके।

कई लोग दुनिया में ऐसे भी होते हैं जो पहले गीली मिट्टी की पाल के समान मीठी मीठी बातें करते हैं। मगर

उनकी वे मीठी बातें शांति पहुं ाने के लिए नहीं होतीं। उनके भीतर में कपट भाव छिपा रहता है। मीठी बातों के बाद वे ऐ ा क्लेश खड़ा र देते हैं कि जन्म भर त वह बे ारा दुःखी रहता है और मन में घुलता रहता है। ही बात ोमिल ने भी की थी अधिक कष्ट पहुंचाने के लिए उ गजसुकुमार के मस्त पर गीली मिट्टी की पा बांधी थी। जो लोग ऊपर से मीठी बातें बनावें और भीतर से ाग लगावें वे सोमिल के मान हैं। उनकी लेश्या सी गिनी य?

आजकल संसार यही हिसाब लरहा है कि भीतर और है और बाहर कु और है। राजा धनि ोग पर से यह दि ाते हैं कि हम जो छ कार्य करते हैं वह दूसरों की भलाई के लिए करते हैं। राज्य मृद्धि और सु ाकारिता के लिए हम राज्य र रहे हैं और मजदूरों भलाई के लिए हम ार ने ला रहे हैं, ऐ ा भाव राजा और सेठ साहुकार लोग प्रकट करते हैं। किन्तु उनके मन ावना क्या है यह उनके बर्तावों से प्रकट है। क्या उनके दिलों में प्रजा और मजदूरों के हितकी भावना रही हुई है? य में विषैली और स्वार्थ पूर्ण भावना होते हुए भी शब्दों की स ाई से अपने को परोपकारी रने वाले राजा र सेठ सोमिल के समान हैं। सोमिल रा पाल बांधने ा ा है।

ाधुपन ग्रहण रके भी ई ऐ ा बर्ताव रते हैं। ते कुछ र ते कुछ हैं। लोगों ा विश्वा प्र

करने के लिए कई साधु नामधारी हृदय में कुछ और भावना रखते हैं और पर से बर्ताव दूसरा करते हैं। उनका ऐसा कार्य सोमिल द्वारा गजसुकुमार के मस्तक पर पाल बांधने के समान है।

पांजरापोल के सेक्रेटरी ने आप लोगों के सामने सहायता के लिए अपील रखी है। आप लोग मन में समझते होंगे कि हम जो कुछ देते हैं वह दान करते हैं। लेकिन इस बात का विचार करो कि आप दान दे रहे हो या अपना कर्त्तव्य पूरा कर रहे हो। ऐसा कौन मनुष्य होगा जिसने अपने जीवन में गाय की सहायता न ली हो। घी दूध दही छाछ आदि का ब कोई उपयोग करते हैं। बैलों द्वारा उत्पन्न नाज सब लोग ाते हैं। यदि पंचगव्य न हो तो आप क्या ें और मूंछों पर ताव कैसे लगावें ? जिस गाय का दूध घी खा जावें उसका ब । न चुकाना कृत । नहीं तो क्या है। दूध पिलाने के कारण गाय माता कहलाती है। जो माता का पालन न कर सके वह भी कोई त्र है। आपका यह शरीर गाय की कृपा से बना हुआ है। गाय की पा से ही आपका चेहरा लाल लाल बना हुआ है।

जिस गाय का दूध पीकर आप पहलवान बने हुए हैं। उस गाय पर आज क्या आफत आई हुई है। आपकी पहलवानी क्या काम की। गाय माता दुः पावे और उसके बेटे मौज करे यह कितना अनुचित है। पहले जमाने में गौरक्षा का प्रश्न ही नहीं खड़ा होता था। गाय को माता की उपाधि

दी गई थी अतः उ की र । के लिए उपदेश जरूरत ही न थी। दूसरी बात पहले गौहत्या न होती थी। गायें साई ।ने में जाती हैं। इ तो पानी न बरसने से उन । ष्ट और धि क बढ़ गया है। माता दुः ये और बेटा निष्क्रिय रहे यह शोभा की बात नहीं है। अधि क्या कहूं—

सत्य का शब्द तो एक ही बहुत है बार ही बार क्या बक्कना रे।
पाषाण के बीच में तीर भेदे नहीं मूर्ख से बहुत क्या झक्कना रे।
रैन दिन होत घन घोर बरसा घनी चीकने घड़े नहीं छांट लागे।
कहत कबीर ये जीव जड़ हो रहे मोह के मेल ते नाय भागे॥

गज र सिर पर माटी की ल बांधकर सोम ने श्रि से धगधगते ंगारे र दिये हैं। यदि गज सुकुमार उस पर क्रोध रना ाहते तो क्या नहीं कर सकते थे? वे देवकी के पुत्र और ष्ण भाई थे तथा भी वीर थे। उन एक हा से उसके प्राण निकल सकते थे। सोमि उनके ामने क्या चीज वे संसार ो थर्रा सकने ले व्यक्ति थे। किन्तु उन्होंने कुछ और सोचा है। वे विचारने लगे कि मैं जल्दी से जल्दी शरीर रूपी कारागार से मुक्त होना चाहता हूं और इसी लिए भिक्षु की बारहवीं प्रतिमा धारण की है। ोमिल ने मेरा क्या रा किया। अच्छा ही किया है। मैं जो ाहता ं उ उ मदद ही की है।

यदि गजसुकुमार इस प्रकार विचार करना चाहते कि मैंने इस आदमी का क्या बिगाड़ा है. मेरी इच्छा है मैं किसी की लड़की के साथ शादी करूँ या न करूं, मैं स्वतन्त्र हूं. तो भी लोक व्यवहार में बुरा न माना जाता। लेकिन इस प्रकार के तर्क-वितर्क में वे न पड़े। उन्होंने भक्ति मार्ग का आश्रय लिया जिसमें तर्क को उतना स्थान नहीं है। अंगारों से उन को घोर वेदना शुरू हुई। शास्त्र में इस प्रकार पाठ है:—

तयणं से गज सुकुमाले अणगारे,
वेयणा पाउब्भूया उज्जला जाव दुरहियासा

नि का मस्तक खीचडी की तरह दबद खदबद सीझने लगा। सोमल ने मिट्टी की पाल बांधी भी इसीलिए थी कि अग्नि नीचे न गिरने पावे। उस समय उनको कैसी वेदना होती रही होगी जरा कल्पना करिये। परन्तु मुनि यह विचार कर रहे थे कि मेरा हीरा पैदा हो रहा है। जैसे किसी थके हुए व्यक्ति को सवारी करने के लिए मोटर मिल जाय, प्यासे को पानी मिल जाय, भूखे को रोटी मिल जाय और अंधे को नेत्र मिल जाय तो उसको कितनी खुशी होगी। उक्त वस्तुएं देने वाले पर वह कितना प्रसन्न होगा। वैसे ही गज-सुकुमार को मस्तक पर अग्नि रखने से बड़ी प्रसन्नता हुई है। मैं मुक्त होना चाहता हूं और यह शरीर मेरी मुक्ति में बाधक हो रहा है। सोमल ने इस बाधा को हटा दिया है अतः यह मेरा परम मित्र है। यह मेरा उपकारी है। मोक्ष प्राप्ति में साज देने वाला है।

इस प्रकार की निर्वैर   ।   । र कर शुक्ल ध्यान के उच्च पाये पर आरूढ़ हो र गजसु मार सिद्ध बुद्ध और मुक्त हो गये। यदि   ाप लोग भी गज कुमार की निर्वैर   ।   । अपना लें। तो बड़ा भला हो जाय। गजसुकुमार का आदर्श जीवन भारत की परंपरागत   संस्कृति के अनुकूल है। वैर से ैर शान्त नहीं हो   किन्तु   ांति र ने से, क्रोध न करने से वैर   ान्त होता है। ऋद्धिशाली और स ाधारी इस राजकुमार की क्षमा आदर्श क्षमा है। उनका जीवन हमारे लिए ाईना है जिसमें अपना   देखकर हम भी   पनी   ालि मिटा सकते   । जो उनका अ   रण करेगा उ   दा कल्याण है।

७-८-३६
राजकोट

१५

आत्मिक शान्ति का अचूक प्रभाव
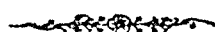
पदम प्रभु पावन नाम तिहारो, पतित उद्धार न हारो ।
जदपि धीवर भील कसाई, अति पापीष्ट जमारो,
तदपि जीव हिंसा तज प्रभु भज; पावें भवोदधिपारो ॥ पदम.

र्थना—

इस प्रार्थना में भक्त ने बहुत सरल और सीधी सादी भाषा में एक सुगम बात जगत् के सामने रखी है। वह कहता है कि भाइयो ! तुम काल का सहारा लेकर, कलियुग नाम बताकर, शारीरिक कमजोरी अथवा कलहमय जमाना बताकर धर्म की गहन बातों का पालन न कर सको तो एक सरल काम करो।

तो सुमरन बिन या कलियुग में और नहीं आधारो
मैं वारी जाऊं तो सुमरन पर दिन दिन प्रेम वधारो ॥पदम०॥

भगवान्! इस कलियुग में तेरे स्मरण के बिना संसार समुद्र से पार पाने के लिए दूसरा कोई मार्ग नहीं है।

यदि आप लोग परमात्मा का पावन पवित्र और पाक नाम सदा जीभ से जपा करो, उसके नाम का घोष चलने दो, उसको हृदय में धारण किये रहो तो क्या आपको कुछ बोझा लगता है या कठिनाई मालूम देती है? जब समय मिले तब प्रभु नाम का स्मरण करते रहने में क्या कुछ खर्च लगता है? यह सब से सरल काम है। फिर भी अधिकांश लोग कामक्रोध और लड़ाई गड़ों की ब ों में समय बीता देते हैं, अथवा गन्दा साहित्य या गन्दे उपन्यासादि पढ़ने में कालयापन करते हैं। मगर प्रभु न का रटन नहीं करते। यह काम वैसा ही आ जैसा लक्ष्मी तिलक निकालने आये और अपना मुंह फेर ले। तिलक न निकलवाये। यदि आ और कुछ न कर सको तो परमात्मा के नाम का घोष चलने दो। इससे आपको वही ल होगा जो तप । दि करने से होता है।

परमात्मा का नाम लेना सबसे सीधा काम है। मगर आलस्य और प्रमाद के कारण दूसरी बातों में मन लगा रहता है और भगवान् को भूला दिया जाता है। मैं पूछता हूं आप घर से चलकर अथवा बाहर गांव से रेल में बैठकर यहां आये हैं तो रास्ते में और रेल में आपको समय मिला हुआ था।

उस समय आप क्या　रते थे ? क्या भगवान्　। नाम स्मरण　ते थे या कोई दूसरा घाट घड़ते थे ? क्या उस समय यह　र था कि कहीं रेल नहीं उलट जाय । या　किसी अन्य प्रकार के विघ्न की आशंका थी जिससे कि　प नाम स्मरण न कर सके । मेरा तो　याल है यदि रे　उलटती हो अथवा कोई दूसरा वि　उपस्थित होता हो तो भी भगवान् का नाम लेने से रेल का उलटना और वि　ों का उपस्ि　होना रुक सकता है । यदि ऐसा पक　विश्वास होता तो नाम जपना छोड़　व्यर्थ　मों में　मय बरबाद न किया जाता । भ　लोग लोगों　ो　ावधान　रने के लिए कहते हैं—

नाम जप नाम जप नाम जप बाउरे
घोर भव नीर निधि नाम निज नाउरे ।

आपको उपालम्भ न दिया जाय तो क्या किया जाय । भ　जन कहते हैं कि ऐ पागल मनुष्य ! तू पर　त्मा का नाम　ों नहीं करता है ! इस भयंकर भव स　द्र में पर-त्मा　नाम जपन ही नौका के समान है । जिस नौका के हारे　न्त भव भ्रमण कट जाता है । इसीलिए तुझे पाग　उपाधि दी गई है । तू परमात　के नाम की　सा बहुत　रता है मगर नाम स्मरण के वक्त　ालस्य प्रमाद क्यों　रता है ? तुझे बावरा न कहें तो क्या कहें । जिसको तू रत्न मानता है वह यदि मि　जाय तो उसे स्वीकार न करके　दे　। स्वीकार　रके　पनावे नहीं तो बावरापन ही　हा जायगा ।

परमात्मा । इतना महत्व है फिर भी दूसरे तुच्छ ामों में फँसे रहना मिष्टान्न छोड़कर विष्टा खाना है। थवा जैसे कुत्ता किसी जीमनवार में भूठन चाटता है किन्तु यदि उसको बुलाकर भोजन कराया जाय तो वह नहीं आता। उस कुत्ते को बावरा ही कहेंगे। कुत्ते में भले बुरे और हिता-हित ान नहीं है। यदि उस ज्ञ होता तो शायद वह भूल न रता। किन्तु श्चर्य है कि मनुष्य में अपना भला बुरा ोचने क्ति होने पर भी वह अपना हित नहीं रता। । इतनी टेक र । है कि यदि उसे भरपेट खुराक मिल की हो तो वह उधर उधर नहीं भटकता। मगर ज्ञानी कहते हैं कि ए बावरे प्राणी! तेरी आत्मा कुत्ते से भी गई जरी है जो कभी संतोष नहीं धारण करती।

परमात्मा का नाम स्मरण करने में द्रव्य क्षेत्र काल भ दि का कोई बन्धन नहीं है। जब मन में आवे तब नाम स्मरण किया जा सक है। कैसी भी विषम परिस्थिति हो-चाहे आंधी आये या तूफ परमात्मा का स्मरण करने में ोई बाधा नहीं आ सकती। ये पर्यूषण के दिन हैं। इन दिनों में जिस तरह रत्नों को सोने के तार में पिरोकर रक्षा के लिए गले में डाल लिया जाता है उसी तरह परमात्मा के नाम को प्रेम के तार मे पिरोकर हृदय में धारण कर लो। अखण्ड घोष चलने दो। ऐसा करने से आपके चेहरे का रंग बदल जायगा। आप में तेजोस्विता आ जायगी। आपके हृदय के भाव छ दूसरे ही हो जायंगे। आपको देखकर सब को शांति

मिलेगी। कैसा भी तप्त व्यक्ति पके पास वे पके ग से शांति प्र रने लगेगा।

परमात्मा के नाम का स्मरण करने का आग्रह इसलिए किया जाता है कि परमात्मा ने पहले बहुत तप किया था। तीर्थङ्कर रित्र कुछ साधारणता लिए हुए होता है। उनके सारे म और कल्याण मानव समाज के लिए होते हैं। उनको देवाधिदेव हा जाता है किन्तु विचार करने पर मनुष्याधिप हना अधिक उपयुक्त मालूम होता है। मनुष्याधिप होने पर भी देवाधिपति इसलिए हा गया है कि मनुष्याधिपति तो राजा भी होते हैं। तीर्थंकर मनुष्यों के ही अधीन नहीं किन्तु देवों के भी धिपति हैं। भगवान् का जन्म कल्याणक मनाने के लिए इन्द्र और देव इसलिए आते हैं कि उनके द्वारा जगत् और मानव माज कल्याण होने वाला होता है। जगत् ल्याण ो अपना कल्याण मानकर ही इन्द्रादि देव तीर्थंकरों का जन्मोत्सव मनाते हैं। इससे स्पष्ट है जगत् ल्याण के रण ही भगवान् तीर्थंकर दे धिदेव कहे जाते हैं।

प और है। भग न् जन्म रात्रि में होता है। उस समय इन्द्रादि देव आकर भगवान् को मेरु पर्वत पर ले जाकर उत्सव ते हैं और सूर्योदय के पूर्व पस उनको उन मा के र जाते हैं। वे तीर्थंकर के शरीर को धरोहर के रूप में ले जाते हैं और जन्मोत्सवादि की खुशीयां मनाकर नः उनकी माता के पा र जाते हैं। तीर्थंकर दी

ग्रहण करने के पूर्व तक अपने घर में रहते हैं। फिर दीक्षित होकर तपस्यादि करके केवल ज्ञान केवल दर्शन प्राप्त करके मनुष्य समाज और संसार का कल्याण करते हैं। इससे भी यही सिद्ध होता है कि भगवान् मनुष्याधिप हैं।

भगवान् महावीर का जन्म भी मनुष्यों के कल्याण के लिए ही हुआ था। यद्यपि भगवान् महावीर का जन्म चैत्र शुक्ला त्रयोदशी को हुआ था किन्तु यह परम्परा है कि कल्प-सूत्र के अनुसार जिस दिन जन्म वर्णन पढ़ा जाता है उस दिन भी भगवान् का जन्म दिवस मनाया जाता है। अतः आज जन्म दिन न होने पर भी जन्म दिन मनाया जाता है। यह जन्म दिन वास्तविक नहीं किन्तु औपचारिक है। मेरी समझ में पर्यूषण के दिनों में लोगों में धार्मिक उत्साह अधिक रहता है। उस उत्साहपूर्ण वातावरण में आपके दिलों में भगवान् के जीवन का महत्व बैठाने के लिए शायद जन्मोत्सव मनाने का पूर्वाचार्यों ने उचित समझा हो और यह परम्परा जारी की हो कारण कुछ भी हो। हमें तो आज भगवान् का गुण ज्ञान करना है और उनके द्वारा मानव समाज और इतर जगत का कल्याण संपादन किस प्रकार हुआ था यह जानना है।

श्री जिनराज को ध्यान लगावे ता घर आनन्द रंग बधावे।
सिद्धारथ राय के नन्द निरुपम रानी त्रिशला देवी कूंखे आवे।
चैत सुदी तेरस की रजनी जनम लियो प्रभु सब सुख पावे।श्री.।

" आज ापके सामने गवान् महावीर के जन्म के सम्बन्ध में कुछ विचार उपस्थित करता हूं। आप कहेंगे कि उनके जन्म हुए को बहुत लम्बा मय व्यतीत हो चुका है, उन ा जन्म क्षत्रियकुण्ड ग्राम में माता त्रिशला और पि ा सिद्धार्थ से हुआ था, अब कैसे और हां जन्म मनायेंगे। यदि राज कोट में भगवान् का जन्म करायेंगे। यदि इस भोजनशाला में भगवान् को जन्मायेंगे तो य भी बहुत लम्बी चौड़ी है। हां कहां जन्मायेंगे। यदि इस सभा में जन्माना चाहेंगे तो यहां कई लोग नींद ले रहे हैं और कई ंघ रहे हैं। मगर मित्रों! मैं भगवान् का जन्म उन हृदयों में कराना चाहता हूं जो एकाग्र होकर उनको अपने हृदय में स्थान देना ाहते हैं जो मन और इन्द्रियों को व में करके भगवान् को प्राप्त करना चाहते हैं उनके दय में भगवान् का जन्म अवश्य होता है।

जैन सिद्धांत यह नियम है कि जिस म ा हां उपयोग होता है वह वहीं बसता है ऐसा माना जाता है। अनुयोग द्वार सूत्र में इस विषय को समझाने के लिए एक रोचक प्रश्नोत्तर है। किसी ने किसी को पूछा कि रे तू हां निवास करता है? सामने वाले ने उत्तर दिया कि मैं लो निवास करता ं। प्रश्नकर्त्ता ने कहा कि लो तीन हैं— र्ध्वलोक मध्यलोक और अधोलोक। तुम किस लो में रहते हो। उत्तर दाता ने कहा मैं मध्य लोक में रहता ं।

प्रश्नक ा—मध्यलोक में संख्य द्वीप और स द्र हैं, तुम हां बसते हो सो बताओ?

उत्तर दाता—मैं जम्बूद्वीप में बसता हूं।

प्र कर्ता—जम्बू द्वीप असंख्य हैं। तुम कौन से जम्बू द्वीप में रहते हो ?

उ र द ा—मैं मध्य जम्बू द्वीप में रहता हूं।

क ा—मध्य जम्बूद्वीप में अनेक क्षेत्र हैं। कहां रहते हो ?

उत्तर दाता—मैं भरत क्षेत्र में रहता हूं।

प्र कर्त्ता—भरत क्षेत्र में कई देश हैं। तु हां रहते हो ?

उत्तर दाता—मैं काठियावाड़ प्रदेश में रहता ।

क ा—काठियावाड़ में अनेक ग्राम नगर हैं। तुम कहां रहते हो ?

र दाता—मैं राजकोट में रहता हूं।

प्रश्नकर्त्ता—राज कोट में अनेक मोहल्ले हैं। तुम कहां रहते हो ?

उत्तरदाता--मैं सदर बाजार में रहता हूं।

प्रश्नकर्त्ता-सदर बाजार में अनेक भवन हैं तुम कहां रहते हो ?

उत्तरदाता--मैं अमुक भवन में रहता हूं।

प्रश्नकर्त्ता--अमुक भवन में कई कमरे हैं। तुम कहां रहते हो ?

उत्तरदाता--अमुक भवन के अमुक कमरे में वसता ।

प्रश्नकर्त्ता--उस कमरे में चूहे बिल्ली मक्खी मच्छर खटमल आदि कई प्राणी रहते है। कहां रहते हो ?

उत्तरदाता--मैं ढे तीन हाथ के अपने रीर र ता ।

प्रश्नकर्त्ता- इस रीर में र मांस हड्डी आदि भी र ते हैं तथा अनेक कृमि भी रहते हैं। तुम हां रहते हो ?

इस आखीरी प्रश्न के उ र में ब्द आदि तीन य वाले कहते हैं कि तू कहीं नहीं रहता सिर्फ पने उपयोग रहता है। जहां जिस वक्त तेरा उपयोग होता है उ तू वहीं रहता है।

जिस मनुष्य के दय में गवान् । विचार है उ व भगवान् उसके दिल में वसते हैं यह ब्दादि तीन नयों । मत है। तः भगवान् महावीर स्वामी । पने हृदय में जन्म कराने के लिए नन्य भाव से उनकी तर उ ोग गाओ।

गवान् के जन्म के विषय में शा में हा है कि ते ालेणं तेणं मयेणं।

र्थात् उस ाल और समय में (भगवान् का जन्म हुआ)। ाल और समय दोनों देने का उद्देश्य यह है जो मिति और देने । होता है। किसी भी प्रकार त लि कर उसमें म्वत् और मिति दोनों लि जाते हैं यदि वत् लि । हो और मिति न लिखी हो और वत् न लि । गया हो तो व त गल्त माना जाता है। इसी तरह काल और मय दोनों दिये गये हैं। ास्त्रीय परिभाषा में दिये गये । और । र्थ लोकिक भाषा में वत् और मिति के रूप में म । हिए।

भगवान् महावीर का जब जन्म हुआ था वह काल ौथा आरा था वह समय भगवान् पार्श्वनाथ के शासन की माप्ति का था। उस समय के सम्बन्ध में कहा है कि वह बसन्त ऋतु थी, चैत्र का मास था और शुक्ल पक्ष की त्रयोदशी थी। त्रयोदशी की आधी रात को भगवान् ने गर्भ में नौ मास और साढे सात रात्रि पूरी की थी।

नौ मास और साढे सात रात्रि गर्भ का पूरा काल गिना जाता है। जो बालक पूरा काल गर्भावस्था में व्यतीत करता है उसमें क्या विशेषताएं होती हैं, यह बात टीकाकारों ने विस्तार से बताई है।

जिस रात में भग न् का जन्म हुआ था उसरात में सब ग्रह उच्च स्थान पर आ गये थे। लोग हूर्त ढूंढते फिरते हैं मगर हूर्त कहता है कि जो जीव अच्छे संस्कार लेकर जन्म ग्रहण करता है उसको मैं ढूंढा करता हूं भगवान् के जन्म के वक्त ब ग्रह उच्च स्थ पर इसी लिए आ गये थे कि भगवान् अनन्त पुण्याई लेकर जन्मे थे। साथ साथ वे जगत् । कल्याण करने वास्ते जन्मे थे।

ग्रहों के उच्च नक्षत्र पर आने का सबूत उस व वातावरण की शान्तता थी। उस समय सब दिशाएं शांत थी और सब शुभ शकुन भी प्रकट हुए थे। उ वक्त पक्षियों का नाद मधुर था। पवन भी मन्द गन्ध बहा रहा था। धीरे धीरे पृथ्वी को स्पर्श करता हुआ अनुकूल बह रहा था। री

मेदीनी न्न से परिपूर्ण थी। पृथ्वी पर र और ांति देने वाली फसल लहलहा रही थी। दुनिया में शांति ा मुख्य ारण प्रकृति की अनुकूलता है जब ति अच्छी होती है, और फसल च्छी होती है तो वह समय अच्छा माना ाता है। महा रुषों का जन्म ऐसे अच्छे मय पर ही हुआ रता है। उस समय सारे जगत् में हर्ष की ए हर फैली ई थी।

ऐसे कूल और दायक मय में व उ रा ल्गुनी न त्र ने चन्द से योग जोड़ा तब महारानी त्रि ला देवी ने नीरोगानीरोगी रीति से भगवान् महावीर ो जन्म प्रदान किया। सूर्य को पूर्व दि ा जन्म देती है। जि दिशा से सूर्य निक ता है उसे पूर्वदि ा ही जाती है। इसी प्रकार महारानी त्रि ला भी पूर्वदि ा के समान् महावीर की जन्म दात्री हलाई है। सूर्य किसके लिए उदय होता है? यदि वह अपना प्र पने तईं सीमित र ले तो उसे सूर्य ौन कहेगा? सूर्य पने प्रकाश से संसार को जीवन प्रदान है अतः उसके भ उसकी पूजा करते हैं। इसी प्रकार भगवान् महावीर ने गत् में ान रूपी प्रका फैलाया और जगत् कल्याण किया था अतः उनके भ हम लोग उनकी पूजा रते हैं, उनको वंदन नमस्कार रते हैं और उन ुणगान व स्मर रते हैं। यदि ापने भगवान् ा मह मझ लिया है तो इ तरह भक्ति रो कि अन्यत्र जावे ही नहीं। सदा यही भावना रहनी हिए कि स्मर और से रने योग्य ोई है तो वह महावीर ही हैं। दू रा कोई नहीं।

किसी भाई को मन में शङ्का हो सकती है कि महावीर के प्रति इतना पक्ष पात क्यों ? इसका उत्तर यह है कि तीर्थङ्कर शब्द में भी महापुरुष गतार्थ हो जाते हैं। उदाहरण के लिए सूर्य को देखिये। उसके प्रका के सामने ग्रह नक्षत्र तारे चन्द्र और दीपक आदि का प्रकाश नहीं दिखाई देता। इन बका श सूर्य प्रका में मिल जाता है। इसी प्रकार तीर्थंकर महावीर के चरित्र में अन्य सब का चरित्र और नाम गतार्थ हो जाते हैं।

वैसे जगत् में नेक महापुरुष हुए हैं। किन्तु महावीर के म उज्ज्वल जीवन चरित्र किसी का नहीं है। महावीर ने बहुत कष्ट सहे हैं जितने किसी ने नहीं सहे हैं। मैं जैन धु हूं और उनका भक्त हूं : उनका गुणग करता हूं यह ब सत्य है। मगर अन्य लोग भी उनकी प्रशंसा करते हैं। सम्राट् रवीन्द्रनाथ टैगोर ने जिन्होंने गीताञ्जली पर नोबल इज़ प्र किया है, लिखा है कि महावीर का जन्म उ जमाने में हुआ था जब दुनिया में अन्धाधुन्धी मची हुई थी। पशु की क्या ब कहें मनुष्य यज्ञ में होम दिये जाते थे। लोग सच्चे सिद्ध छोड़कर पाखण्ड में पड़े हुए थे उस काश्यप गोत्रीय भगवान् महावीर । जन्म हुआ था। उन्होंने स ज्ञान के द्वारा जगत् अज्ञानान्धकार मिटाकर विक तत्त्व समझाया था। उनके अहिंसापूर्ण आचरण और उपदेश से लोग किसी जीव को कष्ट देने से डरने लगे थे।

लोकमान्य तिलक को अ सब लोग ज ते हैं। उनसे अहमदनगर में मेरी भेंट हुई थी। उन्होंने बड़ौदा जैन कॉन्फरंस

के समय जो कुछ कहा था उसे गौण र मेरी ला ात में जो बात कही थी वह बताता ं । उन्होंने स्पष्ट हा । कि हिन्दु धर्म पर जैन धर्म की गहरी छाप े । हम हिन्दु लोग य याग में इतने व्यस्त थे कि कुछ कहा नहीं जाता । जिसको म्बल नदी कहा जाता है वह चर्मवती नदी है । उसके दोनों किनारे चमड़े से भर गये थे और नदी र से वह चली थी । इतने प यज्ञ में मारे जाते थे । इस प्रकार हम हिन्दुओं में उस य हिंसा बढ़ी हुई थी । भगवान् महावीर ने उस हिंसा को मिटाया और हिन्दुधर्म पर जैन धर्म की ाप ई ।

जब अन्य गण्य न्य विद्वान् भगवान् के जीवन की उत्कृष्टता स्वीकार करते हैं तब हमारा र्ज हो जाता है कि हम भी उनकी कीर्ति और उनके द्वारा दिया हुआ अहिंसापूर्ण उपदेश जगत् में फैलायें उनके नाम और उपदेश को ैलाने की जिम्मेवारी हम लोगों पर है ।

भगवान् महावीर ने ने र्य किये हैं उन को लग लग न गि र ं प में ादेता ं कि उन्होंने बिगड़ी व को धारा । जि जीवन या गति बिगड़ की थी उसके जीवन और गति को भगवान् ने सुधार दिया । बिगड़ी को सुधारने वाला ही महापुरुष या भगवान् है । सुधरी क्या सुधार । धारना तो बिगड़ी को ाहिए ।

बिगड़ी कौन सुधारे नाथ बिन बिगड़ी कौन सुधारे ।
शासन नायक सब गुण लायक वीतराग जिन राया रे ॥बि.॥

साधु सरोषी हुआ चण्डकोशी पन्नग महादुःख दाई रे
डंक दियो तब प्रभुपति बोध्यो दियो स्वर्ग सुखदाई रे ।बि.।

गवान् महावीर जगत् के कल्याण कर्त्ता व बिगड़ी के धारने वाले किस प्रकार बने इसके द ले शा व उनके जीवन रित्र में भरे पड़े हैं। उन सब का परिमित समय में वर्णन करना शक्य नहीं है। उनमें से एक दा ला आपके सामने पेश करता हूं।

एक साधु की दशा बहुत बिगड़ी थी। उसने पने शिष्य पर प्रचन्ड क्रोध किया था। क्रोध निर रण न कि था ि न्तु सच्चे कारण से क्रोध किया था। र भगवान् का ान है कि । कारण होने पर भी क्रोध करना उचित नहीं है।

यदि आप पर कोई झूठा कलङ्क लगा दे तो भी यह न कर संतोष करना चाहिए कि दूसरा व्यक्ति मुझ पर कलङ्क नहीं लगा सकता। मेरी आत्मा ने कलङ्क का कार्य किया है अतः मुझ पर कलङ्क लगा है। शास्त्र में कहा है—

अप्पा कत्ता विकत्ता य दुहाणय सुहाणय

दुः और सुख का कर्त्ता अपना आत्मा ही है। दूसरा व्यक्ति सुख दु में निमित्त मात्र होता है। मूल कारण आत्मा ही है। अतः कलङ्क लगाने वाले पर मुझे क्रोध क्यों कर चाहिए। गजसुकुमार ने सोमिल ब्राह्मण का क्या अपराध किया था जिससे उसने उनके मस्तक पर अग्नि के अंगारे र

थे ? फिर भी गजसुकुमार ने सोमिल पर तनिक भी ो नहीं किया। बल्कि शीघ्र मुि प्र रने में निमित्त बनने के ारण उसका उपकार स्वी ार किया। हम गजसुकुमार के गुणगान इसी लिए गाते हैं क्योंकि ोध रने का ारण होने पर भी उन्होंने क्रोध नहीं किया था।

विकारहेतौ सति विक्रियन्ते, येषां न चेतांसि त एव धाराः।

विकार का ारण मौजूद होने पर भी जिन के ि त्त में ाम क्रोध मद मोह और लोभ आदि का विकार जागृत न हों वे धीर पुरुष कहे जाते हैं। उन धीरपुरुषों का थोड़ा भी ण यदि ाप लोग अपने जीवन में अ ा सकें तो कल्याण है। ानी जन कहते हैं— ोध किसी हालत में न करना ाहिए चाहे कोई झूठी बात कहकर आपको उत्तेजित करने की ोशिश करे। वह तो आपकी परी ा की सौटी है उस थदि ाप फेल हो गये तो आपकी क्षमा का क्या र्थ होगा। ो रने से साधुव्रतधारी की द ा भी कैसी बिगड़ती है उसे चण्ड ौशिक सांप योनि धारण करनी पड़ती है।

चेले ने पने ु पर झूठा लङ्क गा दिया। रुजी अपने क्रोध को न दबा के। वे चेले को ओघे से मारने के लिए दौड़ पड़े। आप आनते हैं कि क्रोध अंधा होता है। ोध का ावेश जिस व्यक्ति को ढ़ जाता है वह भी बे ा हो जाता है। गुरुजी क्रोध में बेभान होकर दौड़े कि रास्ते ंभे से सिर टकरा गया और जमीन पर गिर पड़े। सिर घातक ोट लगने से उसी वक्त काल करके चण्ड कौशि

सर्प की योनि में पैदा हुए। वह सर्प दृष्टि विष था। जिधर वह दृष्टि कर देता उधर के लोग उसके जहर से परेशान हो जाते थे उसने सारे जङ्गल को तबाह कर दिया और सारा मार्ग बन्द कर दिया उस ओर कोई आदमी भूल से चला न जाय इसके लिए दयालु व्यक्तियों ने मार्ग में आदमी नियु र दिए जो लोगों को सावधान कर दिया करते थे।

मित्रो! जरा महावीर के जीवन पर दृष्टिपात करो। उन्होंने किस प्रकार उस प्रचण्ड विषधर का विष उतार दिया था। महावीर ने सोचा कि बेचारा वह साधु सर्प की योनि में अपना जीवन नष्ट कर रहा है। उसकी गति बिगड़ रही है। मेरा कर्त्तव्य है कि मैं अन्य लोगों की तरह इस सर्प को भी धारूं तब मैं सच्चा महावीर कहलाऊंगा।

अक्सर देखा गया है कि महापुरुषों के जीवन के साथ सर्प का सम्बन्ध आता है। कृष्ण का कालिया नाग से संबंध होना, बुद्ध का सर्प के साथ संसर्ग होना, बाइबल के अनुसार मौसिया और मोहम्मद का सर्प से सम्बन्ध होना यह बताते हैं कि महापुरुष सर्प पर अपनी आत्म शक्ति की आजमायश रते हैं।

पौराणिक कल्पना है कि समुद्र मंथन करने से अमृत सरा दि अनेक वस्तुएं निकली थीं उनको सब देवों ने ग्रहण कर लिया था। किन्तु जब हलाहल विष निकला तब सब देव भाग खड़े हुए। उस समय विष्णु ने शंकर से कहा आप यह विष पी जाइये नहीं तो यह सारे जगत् को विनष्ट

र देगा। विष्णु   ।   हना म   कर शंकरजी विषपान   र
गये। इसलिए वह निल ंठ महादेव   हलाये।

जिस तरह   मृत   ादि पदार्थों ो अन्य देवों ने अ
लिया था उसी तरह मान बढ़ाई ग्रहण   रने के लिए   व ोई
तैयार हो जाते हैं। किन्तु विष के   मान गालियां ंर   प-
मान जन   वर्ताव महा रुष ही   हन   र   ते हैं। ो
गालियां, मार और हीनतापूर्ण   बर्ताव   हन   रके इस विष
 ो   जम   र जाता है और   गत्   ाण   रता है व
देवाधिदेव   जाता है।

आज   ल लोग महादेव की   पूजा   रते हैं। किन्तु
जानना   ाहता ं कि वे विष को हजम   रने के लिए पूजा
 रते हैं या विष ो फैलाने के लिए? विष ैलाने की क्रि
 स करने के लिए शंकरजी की पूजा मत   रो। विष ो
पचा   दूसरों की र ा के लिए पूजा   ो। जि   प्रकार में
रु   ागार चौरीयों की र ा के लिए   हर पी गये थे उसी
प्रकार   ाप लोग भी जहर ो प   र दूसरों की र
प्रयत्न   रो।

 गवान् म   वीर ने देखा कि चण्डकौशि   सर्प के
 ांतक से लोग बहुत ं   और   है।   : ोगों को
भी   रना   ाहिये ै र सांप ा भी सुधार
 हिए। यह सो   र   गवान् बिहार   उसी ओर गये
जि   ओर वह सांप रहता था।   र्ग में पहरे दारों ने   वान्
से   ा कि   प कहां   रहे हैं? इ   ओर

विष घर रहता है। वह साधुओं को भी कुछ नहीं गिनता। आप पीछे लौ जाइये। इधर मत जाइये।

भगवान् इस बात को जानते थे कि वह सर्प नहीं है मगर साधु है। क्रोध के कारण साधु ने सांप की योनी में जन्म ग्रहण कि है। यह नियम है कि जीव जिस भाव से मरण प्र करता है उसी भाव में आगे की योनि धारण करता है। जैसी मति वैसी गति। अच्छी या बुरी गति की प्राप्ति भावों से सम्बन्ध र ती है। भगवान् इस ब को जानते थे। अतः पहरेदारों की बात न कर मौन पूर्वक हंसते रहे। भगवान् को हंसते देखकर पहरेदार कहने लगे कि हमने आपकी भलाई के लिए उधर जाने से रोका है और आप हमारी हंसी कर रहे हैं। भगवान् फिर भी स्कराते रहे। उनका पैर आगे तो पड़ता था मगर पीछे न हटता था। पहरेदारों ने फिर कहा कि इस सर्प की दृष्टि से ही विष . जाता है अतः आप उधर न जायं।

इतना मना करने पर भी जब भगवान् का कदम आगे बढ़ते दे । तब एक पहरेदार बोला—भाईयों! इसको जाने दो यह ˋत के में जा चाहता है,हमारी बात नहीं मानता है तो इसको जाने दो। इसको अपनी साधुता का घमण्ड है तो जाकर देखले कि क्या ल पाता है।

भगवान् इस पहरेदार की बात पर भी मन्द हंसी हंसते रहे। वे सांप को और पहरे दारों को एक दृष्टि से देखते थे। इन्होंने सोचा इस में जिननी वुद्धि है उसी के अनुसार यह

बात ह रहा है। इ से अधि बेचारा क्या   ता है। इस प्रकार गवान् । न किसी पर राग   । और िसी पर ेष ।व। ब । ल्या रने   । थी।

ग न् ।गे ल दिए। पहरेदार   ।प ें हने लगे कि इ महात्मा के चेहरे पर कितना ैकि ते है। हम ोगोंने इतना हा मगर इसके हरे पर को   रेखा त नहीं खिची। ंत दांत और गंभीर रहते हुए   दिया। ो, हम लोग इसके पीछे पीछे जाकर देखे कि यह हां ता है और क्या र है। सांप इ की क्या द । र है ो लकर दे ें तो ही। दूर दूर गवान् के पीछे पीछे पहरेदार भी लने लगे।

ईर्या समिति । पालन करते हुए मेरु पर्वत के म अडो गवान् महावीर सर्प   बांबी के पा पहुचे। वहां पहुच र बांबी के ेप ही ध्यान लगा कर ड़े हो गये। भग न् में रीर की छाया सर्प की बांबी पर पड़ी जि से र्प को ।न् ।या कि ोई मनुष्य यहां आया है। वह वि रने गा पे । े मनुष्य है जो मेरी बांबी के नि ट ।ने   हि र   है! उसने पनी दृष्टि से भगवान्   तर   ष । कि गवान् की ।न्ति के ।मने उ   विष बेकार ो गया। गवान् को विष । कुछ र नहीं आ।

ं वि ।रने गा कि मैंने ई मनुष्यों पर दृष्टिि ेंका था और जिससे वे मौत की घाट र गये थे। े । एक भी व्यक्ति न दे । जो मेरी नजर से गता । हो।

भागते हुए व्यक्ति को भी मैंने कभी नहीं छोड़ा। मैं अपने आकर्षण से उसको अपने पास खींच लिया करता था और मार डालता था। लेकिन यह मनुष्य बड़ा विचित्र है। स्थिर और अडोल खड़ा है। इसको इसकी ढिठता का दन्ड देना चाहिए। वर्ना मेरा विष वृथा चला जायगा।

इस प्रकार सोचकर सर्प अत्यन्त क्रोध में भर कर अपनी बांबी से बाहर निकला। इधर उधर घूम कर क्रोध को और अधिक उत्तेजित कर लिया। फिर लाल लाल नेत्र करके निर्निमेष दृष्टि से भगवान् की तरफ देखने लगा। वह अपनी दृष्टि से भगवान् को जहर चढ़ाने का प्रयोग कर रहा था। पर उसका यह प्रयोग महावीर के सामने व्यर्थ चला गया। भगवान् की आंखों से न मालूम कैसा अमृत झर रहा था कि सांप का जहर शान्त हो गया।

यदि किसी भाई को यह शंका हो कि क्या यह संभव है कि दृष्टि के कारण इतने प्रचण्ड विषधर सर्प का विष भी शान्त हो सकता है ? तो इस बात का समाधान पाने के लिए उसे योग शास्त्र का अध्ययन तथा योगाभ्यास करना चाहिए। उसको पता लगे कि योग साधना में कितनी शक्ति है। जिसने योग का थोड़ा भी अभ्यास किया है वह ऐसी शंका नहीं कर सकता और न ऐसी बात को असंभव मान सकता है।

आप लोगों ने मेस्मेरिजम का प्रयोग देखा होगा। जिस पर दृष्टि बांध कर मेस्मेरिजम का प्रयोग किया जाता है वह

ादमी लकड़ी की तर पड़ा रहता है और कड़ी के मान कड़ा भी हो जाता है। फिर उस पर दस द पांच पां आदमी कूदा भी करें तब भी उ ो कुछ नहीं देता। उसके एक हाथ ो पचा आदमी मि कर भी मोड़ नहीं कते। मेस्मेरिजम में दृष्टि की ि के सिवा और क्या है। आप मेस्मेरिजम में प्रयु दृष्टि ि को तो मानें और भगवान् की अमृतमय दृष्टि की शक्ति को न मानें या उसमें शंका लायें यह कहां त उचित है।

आं ों से विप ने । साँप । प्रयोग ब निष्फल हो गया तब और धिक गुस्सा लाकर उ ने भगवान् के पैर के अंगूठे पर डंक मारा। अंगूठे को ाटने पर भी भगवान् हज प्र न्न मुद्रा ड़े थे। मानों कुछ हु ा ही न हो। ज्यों ही भगवान् के रक्त की धारा सर्प के मु पहूंची कि उस सारा विष शान्त हो गया। जब निर्विष हो र सर्प शान्त हो गया तब भगवान् ने कहा— रे चण्ड कौशिक ! तू बोध प्राप्त कर बोध प्र कर। यदि तू तत्त्व ो जान ायगा तो मेरे ता है।

हाँ जगत् कल्याण ी भगवान् महावीर और हां तिय योनिधारी दूसरों को स ने वाला सर्प ! कितना अंतर है। किन्तु महावीर का मार्ग कुछ निराला ही है। वह सांप को भी पने मान बनाना हते हैं। वह त्रु ो मारना नहीं ाहते मित्र, बनाना ाहते हैं। ाप लोग भी ाहें तो र के ारे गड़े शान्तिमय तरी ों से मि कते हैं।

शत्रु को मार डालने से अथवा उसको कष्ट पहुंचाने से शत्रुता कम नहीं हो सकती। वह और अधिक बढ़ती जाती है। मान लीजिये आपके मार डालने से आपका दुश्मन मर गया। मगर उसके दिल में आपके प्रति रही हुई शत्रुता या दुर्भावना तो नहीं मरी। वह तो ज्यों की त्यों कायम है। वह व्यक्ति दूसरा जन्म ग्रहण करके आपसे बदला लेगा। और यदि वह जान से मर नहीं गया है और जिन्दा रह गया है तो फिर कभी मौका पाकर वैर वृत्ति धारण कर बदला लेगा। वैर मिटाने का ली तरीका भगवान् महावीर ने अपने जीवन से बताया है कि शत्रु को मित्र बनालो। किसी को दुश्मन मान लेने की भावना ही गलत है।

क्रोध से क्रोध नहीं मिटता। क्रोध से क्रोध बढ़ता है। उपशम अथवा क्षमा धारण करने से क्रोध कम हो सकता है। शा में कहा है:—

उवसमेण हणे कोहं, माणं मद्दवया जिणे।

उपशम-शांतिभाव से क्रोध भाव को जीतो और न ता से अभिमान को।

सर्प ने भगवान् को डंक मारा और भ ान् ने उ पवज में सद्बोध दिया। दोनों ने अपने अपने स्वभाव के अनुसार कार्य किया।

भगवान् की नजर से निकली अमृत रा से ान्त होकर सर्प सोचने लगा कि यह कोई विलक्षण व्यक्ति है जो

डंक मारने पर भी मुझे उपदे दे है। इ के शरीर का रक्त भी मुझे न्य लोगों के रक्त के मान ारा नहीं मालूम देता। इसके रक्त में मिठास है। इ तरह सो कर सर्प ने अपनी दृष्टि भगवान् की तरफ फैलाई। भगवान् की दृष्टि से उसकी दृष्टि मिलते ही उसमें और शांति भावना । गई। रहा सहा क्रोध भी ला गया।

शास्त्र में शुक्ल लेश्या का वर्णन किया हु । है। उस र्णन में क्ल लेश्या के वर्ण गन्ध रस और स्पर्श । विस्तृत वर्णन है। आप लोग बाहर के वर्ण गन्ध रस और स्पर्श के पीछे पड़े रहते हो। किंतु यदि शुक्ल लेश्या के वर्ण गन्ध रस ौर स्पर्श को समझो और समझकर शुक्ल लेश्या ारण रो तो बहुत ही आनन्द आ जाय। संसार में जो म से उत्तम सुगन्धित द्रव्य माने जाते हैं उनसे अनन्त गुणी अधि श्रे गन्ध क्ल लेश्या की होती है। तथा इसी प्रकार उत्तम से उत्तम वर्ण रस और स्पर्श युक्त पदार्थों से अनन्त गुणा उत्तम वर्ण रस और स्पर्श शुक्ल लेश्या का हो है। अधिक क्या कहें आप शुक्ल लेश्या प्राप्त के इस चीज । नुभव जिये। यद्यपि ुचना लेशीपद त है परन्तु शु लेश्या उ सोप है।

यदि कोई कहे कि शुक्ल लेश्या । वर्ण गं र और स्पर्श हमें मालूम नहीं देता, हम से न लें। शुक्ल लेश्या- री मनुष्य को दे ने ूघने । ने और स्पर्श ने से प्रतिपादित वर्णादि । बो नहीं होता। इ न । उत्तर देने के लिए आधुनिक वि ान मारी बहुत मदद रता

है। सुना जाता है कि जर्मनी में कोयले आदि कूड़े कर्कट के ढेर लगे पड़े हैं। उन ढेरों को चाखने से उनमें मिठास नहीं मालूम देती। किन्तु वैज्ञानिकों ने पता लगाया है कि उस कूड़े कर्कट में साधारण शक्कर से तीन सौ गुनी अधिक मिठास है। और अब तो कहते हैं कि पांच सौ गुनी मिठास है। उस कूड़े कर्कट से साधारण शक्कर से पांच सौ गुनी मिठास निकलती है। यों चाखने पर मिठास नहीं मालूम होती किन्तु यंत्रों की सहायता से इतनी उत्कृष्ट मिठास निकाली जाती है। यही बात शुक्ल लेश्या के सम्बन्ध में भी जानो।

सुना है कि मन का भी फोटो लिया जा सकता है। जिसका जैसा मन होता है वैसा ही फोटो भी आता है। मन उज्जवल हो तो फोटो का रंग शुक्ल होता है और यदि मन कलुषित हो तो फोटो का रंग कृष्ण होता है। जब मन के उतारे हुए फोटो में भी भावों का रंग दि ई दे सकता है तो लेश्या के वर्ण गन्ध रस ओर स्पर्श में शंका करने की कहां गुन्जायश रह ज है।

यहां आजकल शहर में सर्कस का ल आया हुआ है। उसके विज्ञा के चित्र जगह जगह चिपकाये हुए हैं। उन में से एक चित्र मैंने भी दे । है। उसमें दोनों ओर दो शेर खड़े हैं और बीच में बकरा खड़ा है। सिंह और बकरा एक साथ कैसे . हो सकते हैं। मैंने तो यह दृश्य चित्र में दे । है मगर आप में से कइयों ने सर्कस में यह दृश्य साक्षात् देखा होगा। इसी प्रकार सर्क में सिंह और बकरा एक थ

पानी पीते हैं। एक सिंह पर आदमी ड़ा हो जाता है। सर्कस में सिंह को भय लाल या न्य तरीकों से ाबू किया जाता है। जब अन्य तरीकों से सिंह व में हो है तो महात्माओं की अनन्त शान्ति के प्रभाव से उनकी गोद में सिंह ैटने लग जाय तो इसमें क्या ाश्चर्य की बात है। वैसे हम दे ते ही हैं कि एक हिंस मनुष्य और दयालु मनुष्य के नेत्रों में कितना र्क होता है इसी तरह शुक्ल ादि लेश्याओं में महान् अन्तर होता है।

गवान् महावीर की आं ों के से चण्डकौशिक र्प में शुक्ल लेश्या का प्रवे हुआ जि से वह नि ेष हो गया। वह भगवान् के चरणों में लौटकर हने गा प्रभो! आपकी मुद्रा दे ने से मुझे भान हुआ कि मैंने बहुत पाप किये हैं। मैंने अने मनुष्य और प पक्षियों को ता है। इ प्रकार विचारपूर्वक प ा ाप रते रते र्प को जाति स्मरण ान हो गया। पूर्वजन्म ा न हो जाने से ने लगा कि भगवान्! मैं महले ाधु था किन्तु क्रो के ारण सर्प की ोली में पैदा हुआ ैार अने लोगों को जहर ढ़ा है। प्रभो! मेरा यह पाप ब टेगा।

जिन्होंने विषधर को भी प्रतिवो देकर ा र दिया उस महावीर को न भजोगे तो कि को भजोगे? महावीर बिगड़ी को धारने वाले हैं। र्प ि ड़ी द को दिया। इ ए उठते ै ते ते फिरते न घोष ालू र ो। उ से आपको शान्ति मिलेगी।

चण्डकौशिक ान्त हो गया। अब यह शंका अवशिष्ट रह जाती है कि चण्डकौशिक ने भगवान् के पैर के अंगूठे में काटा था फिर भी उनको विष क्यों नहीं चढ़ा। इसका समाधान यह है कि विष दूसरे विष के साथ मिलने से जागता है। जिस तरह बिजली के दो तार मिलने से बिजली जगती है। इसी तरह यदि हममें विष होगा तो सर्पादि का विष चढ़ेगा अन्यथा नहीं चढ़ सकता। यदि हमारी आत्मा में क्रोध नहीं है तो दूसरे व्यक्ति का क्रोध हम पर कुछ भी असर नहीं कर सका। विष के लिए भी यही बात लागू होती है।

भगवान् में विष या क्रोध था ही नहीं। अतः चण्डकौशिक का विष उन पर कैसे असर कर सकता था। आपके थ में यह ब नहीं है कि आप दूसरों को निर्विष या क्रोध रहित बना दो। किन्तु यह बात तो आपके हाथ की है कि ाप स्वयं निर्वैर और शान्त दान्त बन सकते हैं। यदि आपने अपनी आत्मा को वश में कर लिया तो किसी प्रकार के जहर का आप पर असर नहीं हो सकता।

चण्डकौशिक आत्मालोचन कर रहा है कि मैंने कइयों को विष चढ़ाया है और तो और मैंने स्वयं भगवान् महावीर तक को न छोड़ा। उनको भी काटा है अब आयन्दा मैं किसी को न काटूंगा। जो हुआ सो हुआ अब से किसी को विष न चढाऊंगा। इस तरह निश्चय करके अपना मुख बांबी में डाल दिया और अन्य सारा रीर बाहर र दिया। ताकि जिसको जो कुछ करना हो शरीर से करे। सर्प की ऐसी त्ति देखकर भगवान् वहां से चल दिए।

जो पहरेदार भगवान् के पीछे पीछे ाशा दे ने आये थे वे कहने लगे कि यह मोड़ा बड़ा रामाती नि ।। दे ो सर्प कितना शान्त होकर पड़ा है। हीं यह मर तो नहीं गया है। यह मुर्दे के समान पड़ा हुआ है। वे ोग सांप जिन्दा है या मर गया है यह जानना ाहते थे। िन्तु सांप के पास ाकर दे ने की हिम नहीं पड़ती थी। : दूर से कं ड़ फेंक र जांच करने लगे कि यह हिलता है या नहीं। ंकड़ लगाने पर भी जब सर्प न हिला तो वे डरते डरते उ के समीप ाये। और लकड़ी से उ को हिलाने लगे। र्प इधर से हिलाने पर उ र हो जा ौर उधर हिलाने पर इधर हो जाता था। मगर ा बाहर नि ालता था। और न उनकी तर दे ता था।

पहरेदार सम गये कि यह िन्दा है मगर न्त स्वभावी बन गया है। यह उ साधु रामात है। लोग ौतु भी दे ना ाहते हैं और डरते भी हैं। पहरेदारों ो वि ास हो गया कि ब यह र्प ोगों ो विष नहीं चढ़ायेगा तब ग्राम ग्राम में यह बर पहुं दी गई कि अब ान्त हो गया है। यह बर सुन गंवों से ोग उ र्प ो देखने लिए दौड़े आये। उ ा ोगों पर ं तो ही। ोग आ र उ पू रने गे। घी दूध ादि ने लगे। लोग ि पूजा रते हैं। मगर पूजा रने ा तरी ा नहीं ानते। र्प िए ब पूजा र वाले और कष्ट देने वाले मान थे। ोई उ और न ोई मित्र। ब ए ही दृष्टि थी। घी दूध

कारण ंख्य चींटीयां वहां इकट्ठी हो गई और उसके रीर को क काट कर चलनी बना दिया। मगर सर्प यही वि र करता था कि यह मेरे पापों का प्रायश्चित्त है। चींटियां मेरी सहायक हैं जो मेरे पाप नाश करने में मददगार बन रही हैं। गज कुमार ने भी यही भावना रखी थी।

यद्यपि वह जातिसे सर्प था मगर उसकी भावना इतनी निर्मल हो गई कि वह शुक्ल लेश्या धारी हो गया। जो लेश्या भ ान् महावीर में थी वही लेश्या सर्प की भी हो गई। वह समाधि भाव में मर कर शुक्ल लेश्या से आठवें देव लोक में उत्पन्न हुआ। शुक्ल लेश्या का प्रारंभ छुठे देव लोक से हो जाता है। आठवें में वह और अधिक उज्जवल हो जाती है। यह नियम है कि जीव जिस लेश्या में मरता है उसी लेश्या में दूसरी योनि में जन्म ग्रहण करता है। भगवान् महावीर की शुक्ल लेश्या में और आठवें देव लोक में उत्पन्न देव की शुक्ल लेश्या में तरतम भाव अवश्य है। भगवान् की लेश्या विशुद्ध थी।

सर्प ने अपनी लेश्या बदलती थी। मगर आप अपनी तर देखिये। साधु साध्वी श्रावक और श्राविका चारों भगवान् के शिष्य कहलाते हैं। यदि आप क्रोधादि विकारों को न त्यागेंगे तो इस सर्प से भी गये बीते न कहलायेंगे? अतः क्रोध को त्याग कर महावीर को हृदय में धारण करो। यदि प भगवान् को हृदय में जन्माओगे तो देवता लोग आपके पास भी दौड़े आयेंगे। शास्त्र में कहा है कि—

देवावि तं नमंसन्ति जस्स धम्मे सया मणो ।

: न की प्रीति गाओगे तो ए ।

१८-८-३
राजकोट

१६

ब्रह्मचर्य का साधक तप

प्रतिष्ठसेन नृप को सुत, पृथ्वी तुम महतारी;
सुगुण सनेही साहिब साचो, सेवक ने सुखकारी ।
श्री जिन राज सुपार्श्व, पूरो आश हमारी ॥१॥

र्थ ।

यह भगवान् सुपार्श्वनाथ की प्रार्थना है। इस प्रार्थना की कड़ी में वह बात कही गई है जो सब प्राणियों को इष्ट है। ऐसा कौन प्राणी है जो अपनी आशा पूरी न करना हता हो! सब लोग यह चाहते हैं कि हमारी मनोवांछा पूरी हो। भ भी भगवान् से यही प्रार्थना करता है कि हे प्रभो! मेरी आशा पूरी करो। य . तू मेरी आशा पूरी न करेगा तो कौन करेगा? मेरी आशा पूरी किये विना तू मेरा स्वामी भी " ।?

व्याकरण के नियम के अनु ार प्रत्ये क्य के दो विभाग होते हैं। प उद्देश्य और दूसरा विधेय। जो जाने हुए अर्थ को बतावे वह उद्देश्य है और जो न जाने हुए अर्थ को बतावे वह विधेय है। प्रत्येक समझदार व्यक्ति इस बात का विचार करता है कि मेरे कहे हुए वाक्य का क्या उद्देश्य है और क्या विधेय है इस प्रार्थना का विधेय कोई पूर्व आशा है। उस अपूर्व आशा की पूर्ति के लिए भक्त भग न् से र्थना करता है कि भगवान् मेरी आशा पूरी करो।

इस जगत् में ऐसा ौन प्राणी है जो आ ा पूरी राने के लिए प्रय न करता हो। सब प्राणियों के ारे प्रयत्न आशा पूर्ति कराने के लिए ही होते हैं। फिर भ को यह हने क्यों ावश्यकता हुई कि मेरी आशा पूरी रो। दूसरी बात पर त्मा की र्थना क ना रहित होकर करनी ाहिए। किसी ामना की पूर्ति के लिए प्रार्थना न होनी ाहिए निष्काम ाव से की गई प्रार्थना सच्ची प्रार्थना है। मगर इस प्रार्थना भ अपनी मना प्रकट र रहा है। यह विरोधा भास ों है?

इ विरोधाभास ो मिटाने के लिए प्रार्थना ा विधेय देखिये। वाक्य ा र्थ उसके विधेय से लगा हिए। विधेय ो म कर ि र उसके विषय में ाहिए। पि इस र्थना में आ पूरी रने वना गई है मगर हमें यह दे ा ाहिए कि वह ा सी है। जीव अनादि ा से पनी पूरी

चाहता है मगर अभी तक अनन्त काल व्यतीत हो चुकने पर भी उसकी आशा पूरी नहीं हुई है। अतः गंभीरता से विचार करना चाहिए कि भक्त कौनसी आशा पूरी कराने की प्रार्थना करता है। इस वाक्य में आशा विधेय है। मगर वह विधेय किस आशा के लिए है, यह देखो।

भक्त कहता है कि भगवन! मैं अनन्त काल से आशाओं की पूर्ति के लिए प्रयत्न शील हूं। आशा का दास बनकर दूर-दूर भटकता फिरता हूं। मगर ये आशाएं, जैसे घासलेट तेल या पेट्रोल डालने से आग बुझने के बदले और अधिक भड़कती है, वैसेही ज्यों ज्यों इनको पूरा करने का यत्न करता हूं, दिनों दिन अधिकाधिक बढ़ती जाती हैं। अतः प्रभो! मैं तेरी शरण में आया हूं। मेरी आशा इस तरह पूरी करो कि फिर कभी आशा ही न हो। प्रभो! मैं आप से 'आशायें ही न हों' इस बात की आ करता हूं। आशा मिटाने की आ करता हूं। कामना मात्र से रहित होने की आपसे प्रार्थना करता हूं। आशा तृष्णा वांछा या कामना ही न रहे' यह प्रार्थना करता हूं। बस प्रभो! मेरी यही एक अंतिम आशा है कि 'मैं आशा रहित हो जाऊं'।

यदि किसी भण्डार में चिन्तामणि रत्न के साथ स अन्य अनेक बहुमूल्य रत्न भरे पड़े हों, और किसी को मनोवांछित वस्तु लेने की इजाजत मिल गई हो तो वह कै सी वस्तु लेना न्द करेगा? यदि वह मनुष्य बुद्धिमान् होगा तो चिन्तामणि र लेना ही सबसे अधिक पसन्द करेगा।

ार कि चिन्तामणि ` मिल ाने से अन्य र
आदि अपने आप इच्छा रते ही मि ते हैं। परमात्मा
भी ऐसी ही प्रार्थना करनी ाहिए जि से सब नाएं पूरी
हो जाय। अथवा दूसरे शब्दों हें तो तेरी प्रार्थ से मुझ
में कोई आशाही अवशिष्ट न रहनी हिए ।

तू दयालु दीन हौं, तू दानी हौं, भिखारी ।

भगवन् ! तू दयालु है, मैं दीन । तू दानी है,
भि ारी हूं। मैं ंसार के लोगों के सामने अपनी दीनता
प्रदर्शित रता हूं और वे दाचित् दया रके मेरी दीनता
मिटा भी देते हैं, किन्तु इ से मेरी दीनता और बढ़ती ती
है। यदि ोई मु को राज्य भी प्रद र देतो वह भी री
दीन या बन्धन ब ने वाला ही होगा। तः मेरी दीन
मि ने वा ए मात्र तू ही दानी है। तेरे जै दानी इन्द्र
नरेन्द्र ादि कोई भी नहीं है।

यदि ोई कहे कि मनुष्यों ो ने दुः ों ने घेर र
है। दुः ों को मिटाने के लिए रात दि चिन्ता गी रहती
है। किसी ो पुत्र शादी चिन्ता है तो किसी ो आजी-
ा की चिन्ता रही है। इन ब चिन्ताओं को मिटाने
ा जो वाजिब उपाय है उसे छोड़ र त्मा प्रार्थना
रने ग दुःखों वृद्धि ना है। इस मारा
जीवन व्यर्थ गा।

ई का उत्तर यह है कि मनुष्य जीव नही एक ऐसा जीवन है जिसमें परमात्मा की प्रार्थना की जा सकनी है। मनुष्य जन्म ही प्रार्थना का पात्र है। देव और इन्द्र भी प्रभु प्रार्थना करने के उतने पात्र नही है जितना मनुष्य है। अतः ज्ञानी कहते हैं कि ए जीव ! तू दुखों से घबड़ाता क्यों है ? जिन दुखों से घबड़ा कर तू प्रभु प्रार्थना करने से हिचकता है वे दुः तेरे अपने ही किये हुए हैं। परमात्मा की सहायता लेकर उन दुः ों को तू सरलता से मिटा सकता है। दूसरी व दुः दुः चिल्लाकर रोते रहने से कोई पूरा नहीं हो कता। तू यही विचार कर कि ये दु. मेरे किये हुए हैं अतः इन को मिटाने की सामर्थ भी मुझ में ही है। मैं इन दुःखों को सहायता देता हूं इसलिए ये टिके हुए हैं। अब भगवान् की रण पकड़ता हूं जिससे ये सब दुः दूर हो जायंगे। दुः या आशा तृष्णा मिटाने का अचूक उपाय परमात्मा की प्रार्थना ही है।

परमात्मा से दुः नाश करने की प्रार्थना करने के पूर्व यह जान लेना ाहिये कि दुः क्या है ? जीव ! अभी तू दुः और को भी नहीं समझता यह तेरी नादानी है। कहा है-

दुःख को सुखकरि मानियो भमियो काल अनन्त
लख चौरासी योनि में भाष्यो श्री भगवन्त।
मुक्ति का मारग दोयलो जीवा चतुर सुजान
भजलो नी भगवान तज दो नी अभिमान मुक्ति ॥

भूः के दुः से घबड़ा कर उनमें सु म लिया गया था।
ोई यदि यह ब कहे कि लड्डू भूख अवश्य मिटाते

हैं तो यह बात भी भूल से भरी हुई है। लड्डू सदा के लिए भूः नहीं मिटाते। आपने ल लड्डू ाये थे, आज और ायेंगे या नहीं? आज यदि और ायेंगे तो कल वाले लड्डुओं ने क्या किया? यदि कहें कि कलके लड्डुओं ने कल भूः मिटाई और आज के लड्डू आज भू ि ते हैं तो यह सिलसिला सदा जारी ना पड़ेगा। इस तरह सदा खाते रहना पड़ेगा। यह तो उ फोड़े वाली ब हुई जो भरा गर हो ज ा है। पस सूः जा है, फिर पस तय्यार हो ज है। यह एक बीमारी है जिससे पीछा छुड़ाना कठिन ाम है।

जिस प्र र जीव क्षुधावेदनीय कर्म के उदय से भोजन सुख म है। उसी प्रकार ज्ञानावरणीय दर्शनावरणीयादि मों के उदय से घबडा र किसी न किसी वस्तु में सु की कल्पना है और म ने ा है। परन्तु ार के भौतिक पदार्थों में सुख है ही नहीं।

आप लोग कहेंगे कि महाराज! आप हे सं र पदार्थों में न मगर हमें तो उन बड़ा न्द मालूम देता है। इसके उत्तर में हूं कि जो ादमी जो काम करता है उसमें र ही ा है। यदि वह दुः मानता तो वह ही क्यों? चोर चोरी करने ही

सु मानता है। रंडीबाज जुआरी और राबी पने पने कार्यों में सु मानकर ही करते हैं किन्तु दे ना यह है ि उनको जिन कामों में सु मालूम देता है उन ामों में दूसरों को क्या मालूम देता है? इज्जतदार और सम दार व्यक्ति चोरी जुआड़ी आदि कार्यों में महान् दुः का भव रते हैं। अतः ज्ञानी जन कहते है कि जीव! तू जिन पदार्थों में मान रहा है उन में सु नहीं है। तू दुः को सु मान रहा है।

सब कुछ कहने का भावार्थ यह है कि सुख और दुः को ज्ञानियों की दृष्टि से दे ने की कोशीश करो। इतना तो मानो कि तुम्हारी दृष्टि में विपर्यास है। ज्ञानियों को धन्यवाद दो जिन्होंने सुख दुः का वास्तविक ज्ञान कराया है।

अब इस बात पर विचार किया जाता है कि भगवान्

से आशा पूरी करने की प्रार्थना की गई है वह पूर्व ाशा भगवान् के द्वारा किस प्रकार पूरी होती है भगवान् ने आशा पूरी करने मार्ग धर्म बताया है। और धर्म का उपदेश पात्र को ध्यान में र कर दिया गया है। जिसकी जैसी सामर्थ्य हो उसके अनुसार धर्माचरण करे। धीरे धीरे गे ब । जाय मगर पीछे कदम न ह ये। भगवान् ने जि धर्म का उपदेश दिया है उसके सम्बन्ध में हा है—

दान सुशील तपोयुत भाव चहुं विधि धर्म महा सुख दाता।
मोक्ष करे सुख स्वर्ग भरे नर लोक विषे बहु ऋद्धि मिलाता॥

दारिद दुःख करैं चकचूर लहे जीव उत्तम सम्पाति साता।
तीरथनाथ बखानत है युत धर्म कथा सुनते बहु ज्ञाता॥

भगवान् ने धर्म के चार भेद बताये हैं। दान शील तप और भाव ये चारों धर्म के भेद और मोक्ष के मार्ग हैं। किसी नगर के यदि एक ही द्वार हो तो लोगों को प्रवेश और निर्गम में बाधा होती है। किन्तु चारों दिशाओं में चार द्वार होंतो क िनाई नहीं होती। इसी प्रकार धर्मरूपी नगर के यदि एक ही द्वार होता तो सब लोग सरलता पूर्वक उस में प्रवेश नहीं कर सकते थे। अतः भगवान् ने चार मार्ग बताये हैं। जैसी जिसकी शक्ति हो तदनुसार मार्ग अपना कर धर्म में प्रवेश कर सकता है।

सब से पहला मार्ग दान बताया गया है। दान को पह नम्बर इस लिए प्रदान किया गया है कि दुःखी जीवों को इससे छ तृप्ति मिले। दान के द्वारा दुःखियों का दुः मि या जाय इसलिए पहले इसका निर्देश किया गया है। आज दान धर्म की कमी देखी जाती है। लोगों में निर्धनता दरिद्रता और अनुदारता आगई है। इसलिए दुः का कारण बढ़ गया है। विज्ञ जन कहते हैं कि यदि दान के द्वारा एक दूसरे की सहायता जाय तो दुः नहीं हो सकता। मगर आज कृपणता का सा ाज्य छाया हुआ है। अपने ही ाने पीने और ऐश आराम की तरफ बहुत अधिक ध्यान है। दीन दुखियों के दुः दर्द मिटाने की तर बहुत कम ध्यान है कृपणता के कारण दुः ों में द्धि हो रही है।

कृपणता के सम्बन्ध में बोलते हुए मुझे बड़ी शर्म - नुभव हो रही है। आज साधुमार्गी समाज में जितनी कृपणता आ रही है उतनी शायद किसी दूसरी समाज में दे ने ो मिले। यहां राजकोट का इतना बड़ा समाज है यदि ाहे तो धर्मोन्नति के बड़े बड़े काम ोल सकता है। किन्तु दे ा यह जाता है कि देने का नाम लिया कि दिल धड़कने लगता है। लोगों को देने का अभ्यास ही नहीं है त; देने की बात भी नहीं सुन सकते। यदि कोई साधु दान करने के सम्बन्ध में अधिक उपदेश देने लगे तो तुरंत लोग कहने लग जाते हैं कि साधुओं को इस प्रपञ्च में पड़ने की क्या आवश्यकता है। यदि साधु दान देने की बात कहे तो केवल साधुओं को देने की बात ही कहनी चाहिए। अन्य को देने बात में ाधुओं ो न पड़ना चाहिए। इ प्रकार कई ंकुचित दिमाग के लोग जिन्होंने जैन धर्म के मर्म को नहीं समझा है, हने लगते है। और दुः की बात है कि जैन समाज में ए फिरका ऐसा भी है जिसकी मान्यता साधुओं के रि वाय किसी दूसरे दीन हीन दुःखी को कुछ भी देने मे ए ान्त पाप होने की है। मान्यता ही नहीं उन ा आचर भी उनकी न्यता के अनुसार है।

परन्तु शा ों में ावक के लिए हा गया है कि उ के ़र अभंग होते हैं। दान देने के लिए उ घर र सदा खुले रहते हैं। उसमें यह भेद नहीं है कि जैन धु ओं ो तो देना ैर दूसरे साधु या अन्य ावश्य ा वाले लोगों को न देना। इस्लामी हब में भी मोहम्मद ाहब

ने कहा है कि अपने भाइयों की मदद करो। यदि तुम स्वयं गरीब हो तो अपने सामर्थ्यवान् भाइयों से सहायता ग्रहण करो। और यदि तुम सामर्थ्यवान् हो-सम्पत्ति वाले हो तो अपनी आय में से चालीस प्रतिशत जक दो। वह जकात एकत्रित करके अपने दुःखी भाइयों की सहायता करो। जिससे कि कोई दुःखी न रहने पाये।

मुसलमानी मजहब में दान के सम्बन्ध में ऐसी बात कही हुई है। मगर आपके सम्बन्ध में ऐसा मालूम देता है तो आप दान करना बुरा समझते हो। दान या देने की बात ही आपको बुरी लगती है। देने का नाम ही आपको नहीं सुहाता है। कोई दान की अपील करने के लिए खड़ा हुआ कि वह आपको खवीस जसा जान पड़ने लगता है। यह दशा देखकर बाहर से संस्थाओं के लिए मांगने के हेतू आये हुए लोगों को चुप हो जाना पड़ता है।

जैसे आपके यहां पांजरापोल खुली हुई है वैसे ही घाटकोपर में जीवदया ाता खुला हुआ है। वई के लोगों को दूध पीलाने के लिए जो भैंसे गौरी लोग बाहर से रीद कर लाते हैं, वे जब दूध देना बंद कर देतीं हैं तब को कसाई ाने ले जाते हैं। बहुत दिनों तक बेचारी भैंसे तबेले में बंध रहती हैं। जब दूध से उतर जाती हैं तब उनको तबेले में से ेलते हैं। बहुत दिनों से तबेले में बंद रहने से जब वे खोली जाती हैं तो बड़ी प्रसन्न होती हैं और कूदने लगती हैं कि अ हम को बाहर की हवा ने को मिली है। लेकिन

उन बेचारी भैंसों को क्या पता है कि वे क्यों गोली गई हैं! उन भैंसों को कत्ल खाने में ले जाया जाता है। वहां उनके चारों पैर बांध दिए जाते हैं। फिर उन को लाठियों से इस प्रकार पीटते हैं कि उनका चमड़ा ढीला पड़ जाय और घि चर्बी दे सके। इसके बाद उन । बूंद बूंद दूध नि ाल लि जाता है। और फिर कत्ल र दिया जाता है। उनके मड़े खून मांस और चर्बी का उपयोग अलग अलग ार्यों में किया जाता है। र्बी का अधिकांश भाग मीलों पड़ों पर लगाने के उपयोग में लाया जाता है। मै जहां त पता है एक छोटे पड़े के मील में भी साल भर में सवा छ सौ चर्बी लगती है। अहमदाबाद की मीलों सम्बन्‍ में सुना है कि वहां वर्ष में एक ला इक्यासी हजार मन र्बी ग ाती है।

यह र्बी कहां से आती है? कर ानों से यह र्बी ती है। मैंने बंबई के उपनगर बांदरा और कुर । के कत्ल-नों का हाल सुना है। हाल सुनकर । र्य होता है कि उन दूध पीने वाले भाइयों के पीछे मूक पशुओं की कैसी ह ाएं होती हैं। फिर भी लोगों को वि ार नहीं ाता। मीलों में जो र्बी लगती है वह इन दो कत्ल ानों से पूरी नहीं हो ती। अतः बाहर से र्बी मंगाई ाती है। विदेशों में सुना है कि चर्बी के लिए ए ए लम्बे खून के हौज बने हुए हैं।

क्या आप लोग इस नृ ह । ंड को नहीं रो सकते? क्या इन मारे जाते हुए मूक प ों रक्षा नहीं

र सकने ? घ कोपर के जीवदया ते ने कत्ल ने के लिए बेंची जाने वाली भैंसों को बचाने का काम अपने हाथ में लिया है। कसाई ने के लिए जाती हुई भैंसों को खरीद कर उनको पांजरा पोल में र । जाता है और इस प्रकार उस र । की जाती है। क्या आप इस रक्षा के कार्य में किसी प्र र का ग नहीं ले सकते ? यदि आप अधिक कुछ न कर सकें तो कम से कम वह दूध तो छोड़ सकते हैं जिनके पीछे नृशंसा हत्याकाण्ड होता है। क्या कोई भाई ऐसा नियम ले सकता है कि मैं बंबई कलकत्ता में दूध न पिऊंगा।

मतलब यह है कि साधु मार्गी स ज में उदारता की कमी है। मोटर नाटक सिने और फैशनेबल सामान री-दने का । तो बढ़ा हुआ नजर आता है। मगर परोपकार के कार्यों में करने में कृपणता देखी जाती है इसलिए ज्ञानी कहते हैं कि दान दो। यदि तुम को शांति चाहिए तो दान दो यह सोचो कि क्ति रहते हुए मैं दूसरों की सहायता जरूर करुगा। यदि कुछ कष्ट भी सहना पड़े तो सहन करुगा। मगर दूसरों की मदद वश्य करूंगा। यदि आप लोग अपनी शक्ति का व्यय ठीक रास्ते से करेंतो आपको दान की महत्ता । लग सकता है।

जो उपकारी है उस प्र पकार करने में कोई विशेष महत्व नहीं है। वह तो साधारण कर्त्तव्य है। किन्तु जि । आप पर कोई ास उपकार नहीं है उनका यदि भला करो तो विशेषता है। हम साधु लोग यों तो नहीं कह सकते कि अमुक

संख्या को या अमु कार्य में इतने रुपये दो। क्यों कि ए ा कहने से रुपयों के हिसाब किताब की हम पर जिम्मेवारी - ा जाती है अतः इस प्रपञ्च में हम नहीं पड़ स ते। हम उपदेश दे सकते हैं कि गरीबों या दुःखियों की हायता रना अच्छा ाम है। इस लिए यही हते हैं कि दान देकर दु.खी प ओं की सहायता करो। ऐसा कौन मनुष्य होगा जिसका गाय भैं से तालु न हो। आप पर उनका उपकार है। अतः फैशन का र्चा बचा कर उनकी सेवा या सहाय या दया करो तो कोइ विशेष बात नहीं है ठिन ाम भी नहीं है। अतः दान धर्म की ओर ध्यान लगाओ।

दूसरा शील धर्म है। इस पर बहुत हा जा कता है किन्तु आज अन्य बातें कहनी हैं अतः ो र कहता ं। आज फैशन शील को ा रही है। उसने शील को दूर ा दिया है केवल ऊपरी न रा ही न रा रह गया है। भीतर पोलंपाल है। अतः ब्रह्मचर्य र ा की ओर भी ध्यान लगाओ।

तीसरा तपो धर्म है। तप धर्म जितनी महि जैन समाज में है उतनी विरल ही कहीं हो। ास्त्र में बारह प्र र के बताये गये हैं। उनमें से पह ा अन न तप है। न ा मतलब है भोजन न रना। महा ारत में भी हा है—

तस्मादर्थे च कामे च तपो न अनशन समम्।

र्थात् अर्थ काम और मो प्रा ए न समान कोई दूसरा तप नहीं है। जैन ा में भी न ो प्रथम नम्बर दिया ग है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि विविध धर्म शास्त्रों में न न तप का बड़ा महत्व बताया गया है। फिर भी आजकल लोग तप करने से हिचकते हैं। वल्कि कई तो तप से घृणा तक करते हैं। वे कहते हैं कि इस तरह के एक एक दो दो मास तक के लम्बे तप करने से और भूखों मरने से क्या लाभ है ? जि को तप करना है वे तो करते ही हैं। किन्तु जिन को नहीं कर है वे करनेवालों की टीका करते हैं। मगर तप की टीका करना तप द्वारा सुरक्षित शीलादि गुणोंकी जड़ काटना है।

तप से होने वाले लाभ का अनुभव तपस्या करने वाला व्यक्तिही अनुभव कर सकता है। तप के विषय में यह बात ास ध्यान में र ने की है कि तप की समाप्ति होने पर पारणा और ान पान पर पूरा ध्यान दीया जाना चाहिए। पारणा न बिगड़ना चाहिये। पारणा व बाद में खान पान पूरा ध्यान न देने से रोग होने की संभावना रहती है। जब रोग हो जाता है या कोई मर भी जाता तब लोग तप को बदनाम करने लगते हैं। तप से न तो कोई बीमार होता है और न मरता है। बल्कि रोग हो तो भी तप से मिट जाता है। जैन धर्म तो तप का समर्थक है ही। मगर आज कल अमरिका निवासी भी तप का महत्व समझने लगे हैं। वे भी रोग मिटाने का तप को एक ास साधन म ते हैं। वस्तुतः तप सर्व प्रकार से लाभप्रद है किन्तु धारणा और पारणा पर बहुत ध्यान रखने की जरूरत है।

जो तप के महत्व को सम ा है वह उसकी कभी निन्दा नहीं कर सकता। गांधीजी को उनके मित्रों व हितैषियों

ने हा आप द्ध हो गये हैं तः ब तप करिये। इस पर गांधीजी ने उत्तर में हा कि मेरे तप छोड़ने की बात कहना गोया जिन्दगी छोड़ने की बात कहना है। मैं तो उप स से ही जीता । इस प्रकार गांधीजी तप ा मर्थन रते थे। मगर जिन्होंने भी उ में तप नहीं किया वे उस ा क्या महत्व सम सकते हैं। गीता में हा है—

विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः ।
रसवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते ॥

इस श्लो पर टीका करते हुए लोक न्य बाल गंगाधर तिलक ने कहा है कि पयों से निवृत्त होने के लिए न न तप करना अनु त है। यह तो एक प्रकार का ह ांड है, त्मघात है। ों कि भू ों मरने पर भी वि ों की वा ना तो बनी ही रहती है। वासना को मिटाने का उपाय रना हिए। भू ों रह र रक्त मांस ाना ए प्र ार का ाई है।

तिलक ने न न तप की इतनी हद्द निन्दा क्यों ? इस ा कारण री समझ में यह आता है कि उन्होंने भी तप नहीं किया। भी एकादशी व्रत भी किया हो या न या हो। ऐसी द ा में बिना नुभव के वे तप का महात्म्य कते हैं। मगर गांधी ने तप करके अनुभव किया अतः इसी श्लोक र्थ ते ए लि ते हैं कि विषयों से निवृ होने ार पां ों इन्द्रियों को काबू में रने ने लिए तप के बराबर ोई दूसरा ाधन नहीं है।

उपर उल्लिखित श्लोक का अर्थ यह है 'निराहार रहने से विषय निवृत हो जाते हैं मगर रस बाकी रह जाता है। वह परमात्मा दर्शन से मिट जाता है।

निराहार का मतलब किसी प्रकार का आहार न रना है। छाछ पीना या धोवन पानी पीना आहार में शामिल है। इनके सहारे किया गया अनशन तप नहीं कहा जा सकता। शास्त्र में तेले के पश्चात् तप में धोवन पानी लेने का निषेध है। केवल गर्म पानी ही लिया जा सकता है।

तप करने से विषय किस प्रकार शान्त हो जाते हैं यह बात एक द ले से साफ करता हूं। एक सम्पन्न कुटुम्ब था। उसमें तीन ही प्राणी थे। पिता पुत्र और पुत्र वधू। दैवयोग से पुत्र युवावस्था में ही मर गया। पुत्र वधू विधवा हो गई। घर में ससुर और वधू दो ही व्यक्ति रह गये। ससुर ने विचार किया कि पुत्र वधू युवावस्था में विधवा हो गई है अतः शील की रक्षा क लिए इसके सामने मुझे सादगी आदि द्वारा आदर्श उपस्थित करना चाहिए। यदि मै कर्त्तव्य न निभाऊंगा तो यह कैसे निभायेगी। यह सोचकर श्वसुर ने एमी सादगी धारण की कि मानो उसी पर वैधव्य आगया हो।

आजकल लोग अपना कर्त्तव्य तो नहीं पालते मगर बेचारी विधवा बहू या पुत्री को उसका धर्म पालने के लिए मजबूर करते हैं। एक बूढे सेठ की स्त्री मर गई और उसकी बेटी भी विधवा हो गई। सेठ ने दूसरी ।दी करली और इस

प्रकार आ रण किया कि उनको दे कर उनकी बेटी भी दुरा-
ारिणी बन गई ।

मगर उस श्वसुर ने वधू को धवा दे र अपना
आचरण इतना पवित्र निर्मल और सादा बना लिया कि पुत्र
वधू भी वैसा ही आचरण करने लगी । वह भी र की तरह
सादा ान पान और सादा वस्त्र पहनने लगी । उसे काम
वासना का याल तक न ाता था ।

एक बार पुत्र वधू के पीयर में किसी की ादी थी ।
उसको विवाह में शामिल होने के लिए लेने वास्ते ादमी
ाया । श्वसुर ने बहुतेरा समझाया कि विवाह की धाम धूम
और रागरंग में इसको मत ले जाओ । मगर अत्याग्रह के
कारण बहू को भेज दिया बहू अपने पियर गई । विवाह के
अवसर पर कैसी धाम धूम होती है और कैसा ानपान
होता है यह ाप लोगों से छिपी हुई बात नहीं है । उस
ध धूम को दे कर और वैसा गरि ान पान करके शील
धर्म की रक्षा करना साधरण व्यक्ति के लिए कितना श्किल
ाम है ।

बहू ने यह सब दे और ान पान पर भी उ ा
अं श न रहा । तः उसका मन बदल गया । उसके र
ने उसको यह बात सम ा रखी थी कि बेटी ! यदि भी तेरे
से शील न पले तो त्य ो मत छोड़ना । क्योंकि त्य ैर
शील का जोड़ा है । जो भावना मन में आवे उसे मेरे ामने

प्रकट कर देना। किन्तु छिपाना मत'। श्वसुर की यह शिक्षा उसे याद थी। अतः घर आकर एक पत्र लिखकर अपनी इच्छा श्वसुर को दर्शादी कि मेरा मन अब काबू में नहीं रहता है अतः मेरे योग्य पति ढूंढ दीजिये और उनके साथ मेरा पुनर्विवाह कर दीजिये। मैं गुप्त पाप सेवन नहीं करना चाहती अतः पति की तलाश कर दीजिये।

आज यदि कोई बहू इस प्रकार का पत्र अपने श्वसुर को लिख दे तो श्वसुर जूता मारने के लिये उतारू हो जायगा। स्वयं चाहे कितना ही आचारण भ्रष्ट हो मगर बहू की ऐसी गुस्ताखी सहन नहीं कर सकता। मगर वह श्वसुर ऐसा न था। वह समझदार था तथा दूसरे के कष्टों को महसूस करने वाला था। अतः बहू का स्पष्ट भाव दर्शक पत्र पाकर बहुत प्रसन्न हुआ। कम से कम, बहू का मन शीयल पालने से विचलित हो गया है मगर सत्य पर अभी तक दृढ़ है इस बात पर वह बहुत प्रसन्न था। यदि सत्य बचा हुआ है तो शील भी बच जायगा। उसके मन में दृढ़ विश्वास था कि—

सच्चं खलु भगवओ

सत्य खरेखर भगवान् है। बहू ने सत्य नहीं छोड़ा है और अपने मनोभावों को खुले शब्दों में प्रकट कर दिया है, यह कम बात नहीं है।

श्वसुर ने उत्तर में लिख दिया कि बहू तुम धन्य हो जो सत्य पर कायम हो। यदि अन्य बहू होती तो अपने मनो

भावों को छिपाती और त पाप सेवन । आ लेती । ँ
आज से तुम्हारी इच्छा पूरी करने के म में गता ।
मुझे तभी चैन पड़ेगी जब तुम्हारी इच्छा पूरी हो यगी ।

वहू को पत्र लिखकर श्वसुर विचार ने । कि
मेरे कुल का धर्म, मेरे कु की ज और र्यादा त मेरी
और मेरी वधू की लाज व मर्यादा कि प्र र रहे । वहू ।
इसमें कोई दोष नहीं है । दोष हमारी माजि व्य था ।
है । विधवाओं के लिए ै । तावरण हिये तथा उन
न पान रहन हन और जीवन यापन । तरी । ै ।
हिये इस बात पर मा गौर नहीं रती है । ब के
लिये समान वातावरण रहे और फिर शील की र । की ।
रना टि काम है । ज के दोष के कारण बहू में
शैतान प्रवेश कर गया है । वह शैत तक उ के मन में
से न निकले तब तक काम नहीं बन सकता । : स्वयं कष्ट
सहन करके भी बहू का शैतान निकालना चाहिए । । में
कहा हु है कि अनशन तप करने से यह काम रूपी ैत
शान्त हो जाता है अतः भे इसी उपाय अज य
करनी हिये ।

इ प्रकार विचार रके र न न तप ग्रह
रके दूकान पर ै गया । दासी को पत्र दे र मौखि
कहला दिया कि मैं जिस म में हाथ डा । हूं उसे पूरा
किये विना चैन नहीं लेता । मैं भोजन भी तब दूंगा ब

कार्य पूरा हो जायगा। बहू भोजन के लिए मेरी प्रतिक्षा न करे। वह यं भोजन करले।

श्व र ने यह बात कहला दी। मगर बहू के भी यह नियम था कि वह श्वसुर को भोजन कराये बिना स्वयं भोजन न करती थी। कहावत है—

मांटी पेला बइरो खाय, तिको जमारो एलो जाय।

यद्यपि यह कहावत पति पर लागू होती है। मगर वह बहू अपने श्वसुर को जीमाये बिना न जीमती थी। उनका इतना अदब र ती थी और सेवा करती थी।

दासी के द्वारा श्वसुर का पत्र पाकर बहू बहुत प्रसन्न हुई। में मनसूबे बांधने लगी कि अब क्या है, अब तो श्वसुर मेरे लिए नया पति ढूंढ लायेंगे। अच्छा हुआ जो यह बात मैंने मन में छिपाकर नहीं रक्खी। नहीं तो, न मालूम गुप्त पाप सेवन का अवसर आ जाता, जिससे मैं और श्वसुर दोनों बदनाम होते। अब श्वसुर स्वयं दलाल बनकर मेरे लिए वर ढूंढ रहे हैं। मैं स्वयं रूपवती और यौवन सम्पन्न हूं। तथा धन की भी कमी नहीं है। कौन युवक मुझे व मेरे घर को पसन्द न करेगा !

बहू अच्छे वस्त्राभूषण पहिन कर इत्र फूलेल लगाकर नये पति के आगमन की प्रतीक्षा में बैठी है मेरे श्वसुर मेरे लिए पति लेकर आही रहे होंगे। भोजन के व दासी को कहा

कि श्वसुर जी को भोजन करने के लिये बुला ला। दासी गई मगर श्वसुर ने कह दिया कि मैं कार्य सिद्ध हुए बिना भोजन न करूंगा। यह बात मैं पहले कह चुका हूं। बहू से कह देना कि मेरा इन्तजार न करे वह भोजन कर ले।

अपने नियम में बंधी होने से बहू ने भी भोजन नहीं किया। शाम को बहू के मन में विचार आया कि मैंने बहुत जल्दी की है। चंचलता के वश होकर दागिने पहन लिए हैं। अभी इनको उतार देना ही अच्छा है। इस तरह विचार कर सब शृंगार व दागिने उतार डाले। प्रातःकाल बहू ने पारणे के लिये भोजन बनाया और श्वसुर को बुलावा भेजा। मगर श्वसुर ने यही बात कहला दी कि मैं कार्य सिद्ध हुए बिना भोजन नहीं करूंगा। मेरे कारण बहू ने भी भोजन नहीं किया है यह दुःख की बात है। वह भोजन कर ले।

इस प्रकार दूसरा दिन भी दोनों का निराहार बीत गया। तब बहू के मन में विचार आया कि मैंने यह कैसा नीच विचार किया है कि जिसके कारण पूरे दो दिनों से श्वसुर भूखे हैं। श्वसुर को धन्य है जो मेरी नीच इच्छा पूरी करने के प्रयत्न में लगे हुए हैं।

तीसरे दिन फिर पारणा करने के लिये बहू ने रसोई बनाई और श्वसुर को बुलावा भेजकर कहलाया कि अब मुझ से भूखा नहीं रहा जाता है। कृपा करके आप भोजन कर लीजिये। मगर श्वसुर का उत्तर निश्चित था कि काम हुए बिना भोजन न करूंगा।

तीसरे दिन की रात में बहू की विषयेच्छा एकदम शांत हो चुकी थी। वह विचारने लगी कि मैंने यह क्या मूर्खता की है। श्वसुर क्यों तीन दिनों से भोजन नहीं कर रहे हैं, यह बात अब मेरी समझ में आ रही है! जो मेरी विषय वासना पूरी करे उसी को अपना पति बनाना चाहिये।

चौथे दिन प्रातः काल बहू ने फिर श्वसुर को बुलाने वास्ते दासी को भेजा। उनका वही उत्तर था कि अभी काम पूरा नहीं हुआ है। बहू ने पुनः दासी को भेजा कि उनसे कहना कि एक बार घर आकर मुझसे मिल लें।

सुर घर ाये। बहू पैरों पड़कर कहने लगी कि मुझे क्षमा करना। मुझे अपने नीच विचारों पर अफसोस है। आपकी मैं बहुत ऋणि हूं जो आपने मुझे अपने धर्म से बचा लिया है। आपके जैसा ससुर मिलना कठिन है। मेरा कार्य पूरा हो चुका है। अब आप भोजन कर लीजिये।

श्वसुर ने कहा बहू! अभी तुम भूखी हो अतः ऐसा कह रही हो। जब पेट रोटियां पड़ जायंगी तब वही बात फिर जाग्रत हो जायगी। मैं बूढ़ा आदमी हूं, यदि फिर तुम्हारा मन बिगड़ गया तो मैं क्या करूंगा। अतः अच्छी तरह विचार कर लो। फिर जैसा जँचे वैसा निश्चय करना।

बहू ने कहा—पूज्य श्वसुर जी! मैंने अच्छी तरह सोच विचार कर निश्चय कर लिया है कि अब मैं पूर्ण ब्रह्मचर्य व्रत पालूंगी। कदाचित् में बुरा विचार पैदा हो यगा तो

उसे मिटाने औषधि मुझे मिल चु है। आपने इन ती गों में म दिनों में काम ो जीतने की अचूक औषधि मुझे बता दी है। व जरूरत पर इस दवा से मैं काम लिया करूंगी। जिस अनशन के प्रताप से मेरे मन का शैतान निकलकर भाग गया है उसी अनशन ो अब मैं अपना पति बनाती हूं। दो तीन उ स किये कि मन का विकार आपने ाप शांत हो जायगा।

श्वसुर बहू । नि य सुनकर कहने लगे कि तुमको धन्य है और तप को भी धन्य है। मेरी और मेरे कुल की लाज तप ने र ली है।

कहने का सारांश यह है कि तिलक ने कभी उपवास न किये होंगे अतः उसका महत्त्व न समझ सके। किन्तु गांधी जी ने पने जीवन में कई र लम्बे उपवास किये हैं तः वे का महत्त्व समझ के हैं। एक वार गांधी जी ने स्वराज्य के सिलसिले में भी इक्कीस उप स किये थे। जिनके उपलक्ष्य में देश भर के लोगों ने करोड़ों उपवास किये थे।

तप से शील धर्म की र । होती है। हजारों विध स्त्रियों के ब्रह्मचर्य रक्षा नशन तप के प्रभाव से ही होती है। तपस्या के धारणा और पारणा के दिन स ध्यान र ना चाहिये। उपवास में ' उत्थ भक्त' अर्थात् चार भक्त (खुराक) ाग किया जाता है। जिसका मतलब यह होता है कि उपवा के पहले दिन भी एक समय भोजन करना और उपवास के दूसरे दिन भी एक वार भोजन करना। यह न होना

चाहिये कि कल उपवास है। अतः आज खूब डट के खालें अथवा पिछली रात को उठकर दूध पी लें। और फिर उपवास ग्रहण कर ले।

कई लोग उपवास क्या करते हैं, उपवास का परिहास करते हैं। उपवास के दिन सदा की अपेक्षा और अधिक खा लेते हैं। कहा है—

गिरी और छुहारे खात किशमिस और बदाम चाय
सांटे और सिघाड़े से होत दिल राजी है।
गूंद गिरी कलाकंद अरवी और सकरकंद
कुंदे के पेड़े खात, लोटें बड़ी गादी है॥
खरबूजा तरबूजा और आम जामू झकोर
सिघाड़े के सीरे से भूख को भगा दी है।
कहत नारायण करत दूनी हानि,
कहने को एकादशी पर द्वादशी की दादी है॥

तप का बहुत महत्त्व है। मगर आज इतना ही कहता हूं —

तप बडो संसार में जीव उज्जवल थावे रे
कर्म रूपी इन्धन जले शिवपुर नर सिधावे रे ॥तप.॥

जब तक संसार में तप की प्रतिष्ठा है तब तक संसार की लाज है। जब तप न रह जायगा तब संसार की लाज भी

न रह जायगी। तप के प्रभाव से सूर्य और चन्द्रमा ा ा फैला रहे हैं। जब तप न होगा सूर्य सारी थ्वी को अपने तेज से तपा देगा। न्द्र अत्यन्त शीतलता प्रदान र लोगों ो ठंडा कर देगा और पृथ्वी ार देना छोड़ देगी। मनुष्यों के तप के कारण प्रकृति शांत है। वेद रान और कुरान आदि सब धर्म ा ों ने तप की महिमा गाई है। यह व दूसरी है कि किसी सम्प्रदाय की तपो विधि दूसरी म्प्र-दाय को मान्य या पसंद न हो। किन्तु तप की प्रशंसा सब कोई रते हैं। सब ने तप के आगे सिर झुकाया है।

चौथा भाव धर्म है। यह धर्म प्रथम वर्णित नीनों–दान शील और तप को प्र रने वाला है। भाव पूर्वक दान हो, भ पूर्वक शील हो और भाव पूर्वक ही तप हो तब इनकी ार्थकता है वैसे अकेला भाव भी तंत्र रूप से लाभ दायक है। ष्ण और श्रेणिक किसी प्रकार का त्याग प्र ाख्यान न र सके थे। किन्तु भ वना के कारण वे तीर्थं र गोत्र बांध के थे।

आज हम लोगों के भाव कैसे हैं, इस पर ध्यान लगावें कृष्ण को कोई किसी भी रूप में मानते हों मगर महा-पुरुषता में किसी को न्देह नहीं है। कृष्ण ो सम र हस्थ में रहते ए भी आत्म ल्याण जा ा है।

गज कु र मुनि को मो प्राप्त हो ा है, य त कृष्ण को अभी मालूम नहीं हुई थी अतः दू रे दिन परि-

वार और ससैन्य उनके द र्नार्थ निकले। वे हाथी के हौदे पर विराजमान थे। उन पर छत्र चंवर हो रहे थे। वे द्वारिका के आम रास्ते पर होकर जा रहे थे। बड़े बड़े लोग उनसे जरा कर रहे थे। ऐसे ठ से जाते हुए भी उनकी दृष्टि कि तर रहती थी यह सम ने बात है। उनकी दृष्टि ए रुप पर पड़ी। वह बहुत वृद्ध था। जरा से उ का शरीर जर्जरित हो रहा था। हाथ पैर धूज रहे थे। हड्डी हड्डी नि ल चुकी थी। मांस सूख का था।

मुख से टपके लार कान दोऊ बहरा पाड़िया,
नहीं साता को तार हाड़ सब ही खड़ खड़िया।
घर में सके न बोल पुत्र को खारो लागें,
कहे जैनी जिनदास जरा में ये दुःख जागे ॥
घटी आंख की जोत छूत सब घर का करता,
देखत आवे सूग डोकरा क्यों नहीं मरता।
जीह्वा करे फजीत रीत लोकां में खोवे,
कहे जैनी जिनदास जरा में ये दुख जागे ॥

बूढ़ापे में यह सब बात होती है। ऐसा ही एक बूढ़ा व्यक्ति हाथी पर बैठे हुए कृष्ण की नजर मे आया क्या वहां द्वारिका में नौजवान और सम्पतिशाली व्यक्ति न थे जिससे कृष्ण की नजर इस बूढ़ पर पड़ी है? ऐसी बात नहीं है। द्वारिका में सब प्रकार के मनुष्य थे। किन्तु जैसे डाक्टरों की

नजर बीमारों तर रहती है र नाई र दाढ़ी
तरफ रहती है उसी र कृष्ण र दीन : यों
तरफ र करती थी।

वह वृद्ध पुरुष लकड़ी के हारे ते हुए
रखी हुई ईंटों से ए ए ईंट अंदर
र था। ष्ण ो उ दशा देख दया ागई।
। दिल बूढ़े करुणार्द्र हो ग । 'मेरे र ऐसे
दुरि लोग भी रहते हैं' र दुःखी होने लगे।

दू रे के दर्द ो देख र अपने वे दुः होने
लगना अनु है। ने समान दूसरे के दुः ो देखना
न् गुण है।

आत्मवत् सर्व भूतेषु यः पश्यति स पाण्डितः।

जो दूसरे ो पनी ात्मा के देखता है
पण्डित है।

कृष्ण ने ो कि तो इ बूढ़े के घर के लोग इ
से घृणा रते हैं या यं ाराम में पड़े होंगे और बूढ़े
से ाम ले रहे हैं। कृष्ण ने महा से
हाथी ो ईंटों के पा ले चल। महावत थी ो
ईंटों के पास ले ाया। हाथी पर बैठे बैठे ही कृष्ण
ने ए ईंट उठाली और नीचे उतर कर उ के घर में ईंट पहु-
ादी। जब कृष्ण स्वयं ईंट उठाने लगे तब दू रे ोग से

सकते थे ? व का यही किचार था कि बड़ा आदमी जो क करे, हमें भी करना चाहिये ।

महाजनो येन गतः स पन्थाः ।

बड़ा ादमी जिस मार्ग से गमन करे वही सच्चा मार्ग है । तर्क वि र्क में न पड़ कर श्रेष्ठ जनाचरित मार्ग पर गमन करना अच्छा है ।

कृष्ण सेना के सब सैनिकों ने भी एक एक ईंट उठाकर बूढे के घर में र दी । इस प्रकार थोडी सी देर में सारी ईंटे घर में रखदी गई । बूढा प्रसन्न होकर एक तरफ बैठ गया । कृष्ण भी प्रसन्न होकर हाथी पर वार हो गये । एक प्रश्न उपस्थित होता है कि कृष्ण ने स्वयं ईंट क्यों उठाई ? हुक्म देकर क्यों नहीं उसकी ईंटे उठवा दी ? अथवा उसके घर के लोगों को बुला कर डांटा क्यों नहीं कि तुम लोग इतने वृद्ध से क लेते हो ? मगर मित्रों ! सेवा का कार्य हुक्म से नहीं हुआ करता । हुक्म में उतना प्रेम मिश्रित नहीं होता । जहां सच्चा भाव होता है वहां हुक्म काम नहीं आता । जो कार्य अच्छा सम लिया जाता है उसे स्वयं ही किया जाता है । हुक्म देने जितनी प्रतिक्षा करने का उसमें धीरज नहीं होता ।

आप लोग पने ही पे राम में मस्त हैं। गरीबों ओर ध्यान नहीं लगाते। ाप ोचते हैं कि हमारे प पूंजी है, हमें क्या रना है। ाप पा पूंजी है इ ापकी जवाबदारी बढ़ जाती है। आप पनी जवाबदारी नहीं म रहे हैं। जब जब देना पड़ेगा तब ि ो ायगा। हा है—

करत प्रपंच इन पंचन के बस पर्यो
परदार रत भयो अंत है बुराई को।
पर धन हरे पर जीवन की करे घात
मद मांस भखे लवलेश न भलाई को।
होयगो हिसाब तब मुख से न आवे ज्वाब
सुन्दर कहत लेखो लेगो राई राई को।
यहां तो किया विलास जमकीन तौहू भास
वहां तो नहीं है कछू राज पोपा बाई को।

कृष्ण ईंट ाने की ोगों पर अच्छा प्रभाव . था? आ दिन त उ बात ा तना है? यहां ठाकुर ाहिब यदि के बूढे वाप ईंट उठालें तो - कितने मिंन्दे होंगे? इसी प्रकार उ बूढे के घर वालों पर भी र पड़ा होगा। इसी प्र ार यदि कृष्ण हुक्म

के द्वारा ईंटें वा देते तो शास्त्र में इस बात का कौन जिक्र करता ! और आज दिन तक यह अच्छा उदाहरण हम लोगों तक कैसे पहूंच पाता ? इस पुण्य कथा से आज तक न मालूम कितने लोगों का भला हुआ होगा और भविष्य में होगा ?

आज न कृष्ण है और न वह बूढ़ा है जिसकी ईंट उठाई गई थी। किन्तु उनकी याद अवशिष्ट है। अच्छे कार्यो का असर बहुत स्थायी होता है। इसीलिए हम उनके इस प्रकार गुण गाते हैं:—

याद हम करते हैं जी उन सत्पुरुषों की बात
श्रीकृष्ण ने ईंट उठाई द्वारका दरम्यान ।
वृद्ध पुरुष की दया जो कीनी शास्त्र के दरम्यान। याद० ।

वर्तमान जमाने को देखकर यह बात याद करके हृदय प्रसन्न होता है कि हे प्रभो ! तुम्हारे शासन में कैसे कैसे दयालु पुरुष हो गये हैं। अंधेरे को देखकर ही प्रकाश की याद आती है। इसी तरह वर्तमान दूषित वातावरण को देखकर उस ज ने की याद आती है। भारत की दशा फिर भी कुछ अच्छी कही जा सकती है। यहां कम से कम लोग अपने बाप को कुछ मानते हैं। किन्तु विलायत की दशा बहुत बदतर है। वहां यदि बाप आ जाता है तो भी घर में न ठहरा कर होटल ठहराया जाता है और बिल चुका दिया जाता है।

खेद कहना पड़ता है कि आज भारत देश के लोगों के दिलों में वह प्रेम भाव और दयाभाव नहीं रह गया है जो

पहले के जमाने में था। दया की भिक्षा मांगने पर भी लोग दया नहीं करते दिखाई देते हैं। जिस प्रकार श्रीकृष्ण ने हाथी पर से उतर कर बूढ़े की दया की थी उसी प्रकार ाप लोग भी मान रूपी हाथी से उतर कर गरीब और दुःखियों की सेवा शुद्ध भावना पूर्वक रिये। सेवा या दया आदि करना अच्छा है। मगर भावना की शुद्धि के साथ की हुई सेवा का विशेष महत्व है। निष्काम भावना से सहायता करिये। यह व धर्म की बात हुई। दान, शील, तप और भाव ये ारों धर्म के पाये हैं। इन चारों में से किसी एक पाये को गिराना धर्म के पाये को गिराना धर्म को गिराना है। जो धर्म के इन ारों पायों की रक्षा रता है वह सदा पना कल्या साध है।

१६-८-३६

राजकोट

१६

सतोगुण का चमत्कार

जय जय जगत शिरोमणि, हूं सेवक ने तू धनी,
अब तौ सूं गाढ वनी, प्रभु आशा पूरो हम तणी ।
मुझ म्हेर करो चन्द्र प्रभु, जग जीवन अंतर यामी;
भव दुःख हरो, सुनिये अरज हमारी त्रिभुवन स्वामी ॥

प्रार्थना—

यह भगवान् चन्द्रप्रभु स्वामी की प्रार्थना है। हमें यह विचारना चाहिये कि भक्त किस रूप में भगवान् को दे ता है। भक्त भगवान् को जगत् शिरोमणि के रूप में देखता है। वह भगवान् को इस अखिल विश्व का शिरोमणि मानकर उन की जय जय कार पुकारता है। हे जगत् के शिरोमणि! तेरा जय जय कार हो।

यह बात कहने में जितनी सरल है उतनी ही उ के पीछे जवाब दारी रही हुई है। विचार करने पर ज्ञात होता है कि भगवान् को जगत् का नेता मानकर उनकी जयकार बोलने में बड़ा तत्व समाया हुआ है। भगवान् को जगत् सिरोमणि मानकर उनकी प्रार्थना करने वाले कम लोग निकलेंगे । महंगा सौदा लोग खरीदते हैं। मैं आपके समक्ष इस विषय पर कुछ विचार उपस्थित करता हूं। आशा है उन पर मनन करके आप पना आत्म हित साधेंगे।

व्यवहार में देखा जाता कि राजा की जय बोली ाती है। यदि राजा धर्म निष्ठ है तो उसकी जय में सारी प्रजा जय समाविष्ट हो जाती है। किन्तु राजा की जय बोलने वाले का प्रजा के प्रति क्या क व्य है यह दे ना ाहिये। राजभ कर्म ारी मासिक दस रूपये वेतन के पीछे अपना सर तक वा डालता है। यदि कोई सैनिक वेतन लेता रहे और समय आने पर घर में घुस जाय तो उसे कायर हा जायगा या वीर? ऐसा क य च्युत व्यि यदि राजा की जय बोलता रहता है तो वह जगत् में निन्दा का पात्र गिना जा है। सच्ची जय क व्य पालन में रही हुई है।

भगवान् ो सारे जगत् का मुखि या मान र उन प्रार्थना करने वाले भक्त का सार में रहे हुए प्राणि ों के ाथ मैत्री का बर्ताव होना चाहिये। भगवान् राजा से हैं। राजा की जय बोलने में भी उस प्रति पनी कठिन से समर्पित करनी पड़ती हैं। तब जगत् शिरोमणि परमात्मा की

जय कार बोलने पर तो अधिक कर्त्तव्य निष्ठाकी जरूरत होती है। आप उसकी जय के लिए क्या त्याग करने को तय्यार हैं। किस वस्तु की कुर्बानी करने की आपकी तय्यारी है। यदि आप केवल जबानी जमा खर्च करना चाहते हैं और उसके लिए किसी प्रकार का त्याग करने के लिए तय्यार नहीं हैं तो यह दि ावटी भक्ति है। इस प्रकार की जयकार का आध्यात्मिक अर्थ में कोई मूल्य नहीं है।

परमात्मा की जय बोलने के लिए अपना सर्वस्व तक छोड़ देना पड़ता है।

हरि नो मारग छे शूरा नो, कायर नुं काम जो ने।

प्रभुपंथ शूर व्यक्तियों के लिए है। कायरों की वहां ग नहीं है। सारांश इतना ही है कि प्रभुकी जय बोलने के साथ २ संसार में स्थित प्राणियों के साथ आदर्श व्यवहार होना चाहिये। किसी भी प्राणी कोकष्ट पहुंचाये बिना अपना जीवन व्यवहार चलाने की चेष्टा होनी चाहिये। शुद्ध व्यवहार चलाने के लिए बड़े त्याग की आवश्यकता होती है। जो वीर पुरुष अपने प्रति कठोर और जगत् के प्रति नम्र रह सकता है वह स ा भक्त है। वही सनाथ भी है।

अनाथी मुनि की अनाथता का जो चरित्र आपको सुनाया जाता है वह आप में कायरता लाने के लिए नहीं सुनाया जाता अपितु वीरता सी ने के लिए। जिस प्रकार सैनिक राजा की जय कराने के लिए अपना क तक कटवा

डालता है उसी प्रकार सच्चा भक्त भगवान् की जय के लिए सर्वस्व ाग र स ता है। केवल शरीर मोह ही नहीं छोड़ता किन्तु कीर्ति का मोह भी छोड़ सकता है।

भक्त कहता है—अनादि काल से भ्रमण रते करते यह शुभ अवसर प्राप्त हुआ है जब परमात्मा की जय बोलने योग्य सामग्री प्राप्त हुई। मनुष्य जन्म के बिना भगवान् जय नहीं बोली जा सकती। यह मानव जन्म देव दुर्लभ है। बड़े पुण्य के ाप से यह मानव देह प्त हुई है। उस उपयोग करने में बड़े विवेक की ावश्य ता है। देव और इन्द्र भी मानव देह के लिए लालायित रहते हैं। मानव देह से प्रभु की भेंट हो स ती है। देव और इन्द्र भी देवयोनि रहकर प्रभु का ात्तात्कार नहीं र सकते। प्रभुमय बनने के लिए उनको भी मनुष्य देह धारण रनी पड़ती है। मानव देह बड़ा कीमती है। ऐसा होते हुए भी मानव देह पाकर जो परमात्मा का जय जयकार नहीं बोलता उसने मनुष्य जन्म धारण करके भी क्या लाभ कमाया? उसका जन्म व्यर्थ बीतता है। आध्यात्मिक कवि आनन्दघनजी ने कहा है—

चन्द्र प्रभु मुख चन्द्र सखी मोहे देखन दे।
उपशम रस नो कन्द सखी मोहे देखन दे।
गत कलिमल दुःख द्वन्द सखी० ॥
सूक्ष्म निगोद न देखियो सखि! बादर अति ही विशेष।
पुढवी आउ न लेखियो सखि! तेऊ वाउ न लेष ॥ सखी०
वनस्पति अतिघणा दीठा सखी दीठो नहीं दीदार।

बीती चोरेन्द्रिय जल लिहा सखी गत सब हिय धार ॥ सखी०
सुर तिर नरय निवास मां सखी ! मनुष्य अनार्य नी साथ ।
अप्रज्ञता प्रतिपालता सखि ! चतुरन चढियो हाथ ॥ सखी०

इस पद्य का विस्तार करने के लिए समय अपेक्षित है। संक्षेप में इतना कहना चाहता हूं कि चाहे किसी का विश्वास जैन शा ों पर हो चाहे विकासवाद पर, देखना यह है कि यह जीव आत्मा कहां कहां से किस किस प्रकार विकास करता हुआ इस अवस्था तक पहुंचा है। निगोद अवस्था से विकास करता हुआ जीव मनुष्योनि तक पहुंच गया है, इस बात पर गौर करिये। इस प्रकार एकाग्र होकर विचार करने से जीव को यह प्रतीति होने लगती है कि मै अनादि काल से हूं और साथ ाथ अनन्त भी। मैंने अनेक योनियां धारण मगर चन्द्र प्रभु के दर्शन न हुए। सूक्ष्म एकेन्द्रिय के भव में जहां चन्द्रप्रभु के आत्म प्रदेश रहे हुए हैं वहां भी रह आया हू किन्तु अज्ञ के कारण उनसे भेंट न कर सका उनसे साक्षात्कार न हो सका। बादर योनियों में भी प्रभो ! तेरे दर्शन न कर सका।

कहने का मतलब यह है कि मनुष्य योनि के सिवा किसी भी योनि में परमात्मा से साक्षात्कार नहीं हो सकता। आप लोगों को मानव देह प्राप्त हुआ है। उसके साथ आर्य-देश, उच्चकुल, सुन्दर संस्कार और पुष्ट स्वास्थ्य मिला हुआ है। यह जो समृद्धि मिली हुई है वह भी मनुष्य जन्म के साथ शोभा पाती है। मनुष्य जन्म के बिना ऋद्धि अच्छी

नहीं लगती। यदि किसी बंदर के गले में हीरे । एठा ड दिया जाय तो वह उसके महत्व को क्या समझ ता है। वह हीरे के कण्ठे को खेगा और स्वाद न लगने पर उतार कर फें देगा। किन्तु क्या आप लोग हीरे के कण्ठे ो फेंक देंगे? आप मनुष्य हैं और हीरे का मूल्य ज ते हैं तः फेंकने के बजाय सुरक्षित र ने का यत्न करेंगे।

आपको हीरे से बढ़कर यह मानवदे रूप महान् हीरा प्राप्त हुआ है। क्या इस मूल्यवान् हीरे को पत्थर के हीरे की पहचान के पीछे गु देंगे? अथवा आपके भीतर जो हीरा छिपा पड़ा है उ की पहचान का प्रयत्न रेंगे? जो मनुष्य अभ्यन्तर हीरे को पहचानता है वही परमात्मा को जगत् शिरोमणि कह कर उसकी प्रार्थना करने अधिकारी है। ऐसा मनुष्य अपना जीवन स ल बनाता है।

आपके मन में यह जिज्ञासा हो स्वाभाविक है कि अपने भीतर रहे हुए हीरे को कैसे पहचाना जाय। उसके लिए क्या करना चाहिये? क्या आज ही मास मण लेकर बैठ जाय अथवा अन्य कुछ करें? इ का उत्तर यह है कि मैं वैसे तो अनशन तप का समर्थक हूं किन्तु वर्तमान का में उस पर अधिक भार न देकर जिस बात पर भार देना आवश्यक है उस पर भार देना हता हूं यदि आप तपस्या करें तो अवश्य कीजिये। भगवान् महावीर ने भी कठोर तप किया था। अतः उनके शासन में सदा तप होता आ रहा है और वर्तमान में भी हो रहा है। किन्तु केवल तप करके ही

महावीर न बनना चाहो। अन्य आवश्यक बातों पर भी ध्यान दो। जिस प्रकार वस्त्र की मील में छोटीसी कील की भी जरुरत रहती है। और बड़े बायलर की भी। उसी प्रकार महावीर के ासन काल में तप भी आवश्यक है और साथ साथ अन्य काम भी। यदि आप केवल तप को लेकर ही बैठ जायेंगे तो अन्य काम कौन करेगा! अन्य काम भी महावीर के शासन में रहने वाले व्यक्तियों को ही करने हैं। वे अन्य काम दान शील और भावना है। इन से तप तेजस्वी और आभ्यन्तर बन जाता है। चाहे तप से, चाहे दान शील और भाव से किन्तु चन्द्र प्रभु की भेंट अवश्य कीजिये। यदि इस मानव देह में भेंट न करेंगे? आपने महान् समुद्र पार कर लिया है। अब तीर पर आकर क्या रुक गये हैं। पार उतरने के लिए शीघ्रता जिये।

जोधपुर में वच्छराजजी सिंघी रहते थे। उनका जमाना बड़ा अच्छा था। वे एक बार रघुनाथजी महाराज के दर्शनार्थ गये। रघुनाथजी महाराज ने उनसे पूछा कि कभी कुछ धर्म ध्यान भी करते हो? सिंघीजी ने उत्तर दिया कि परभव में बहुत कुछ करके आये हैं, उसका मीठा फल अभी भोग रहे हैं। अब और कुछ करने की क्या जरुरत है। उच्च सिंघी ानदान में जन्म हुआ है, बड़ी जागीरी मिली हुई है, हुकुमत हाथ में है, पाव में पहनने को सोना मिला हुआ है और रहने को हवेली। विशाल कुटुम्ब और नौकर चाकर प्राप्त हैं। अब धर्म ध्यान करके क्या लेना है। रघुनाथजी महाराजने कहा— सिंघीजी यह तो ठीक है कि आप को परभव की करणी से

यह सुन्दर सामग्री मिली हुई है। किन्तु ागे के भव में यदि श्वानयोनि मिल गई तो क्या ये कुटम्बी जन ापको आपकी हवेली में रहने देंगे ? आप भविष्य की र्चीं के लिए कुछ प्रय करते नहीं हैं अतः कुत्ते की योनि अथवा अन्य कोई नि ष्ट योनि मिली तो वैसी दशा में आपके ये कुटुम्बी जन लकड़ी मार कर आपको हवेली से बाहर निकाल देंगे। सिंघी-जी ने मुनि महाराज की कटुक सत्यवाणी को सविनय स्वीकार करके सिरपर ढ़ाई और भविष्य के लिए र्चीं जुटाने का संकल्प कर लिया।

इसी प्र ार मित्रो ! मैं भी आप लोगों से कहता हूं कि ाप ो यह सम्प मिली है, त्रिलोक के राज्य से भी बढ़-र मूल्यवान् यह मानव शरीर प्राप्त हुआ है। इसके द्वारा परमात्मा । जय जय कार करिये। ज्ञानी इस बात को जानते हैं तः कहते हैं कि हे स ! झे चन्द्र प्रभु के दर्शन कर लेने दे।

आत्मा में मति और म ऐसी दो प्रकार प्रकृति है। कुमति सदा लड़ाई झगड़ा करने के लिए तत्पर रहती है किन्तु सुमति लड़ना नहीं जानती। अतः वह कुमति से कहती है कि सखी ! अब तो झे चन्द्र प्रभु के दर्शन कर लेने दे। मेरे पति को भटकते भटकते बहुत काल व्यतीत हो गया है। तू उसको और अधिक बेभान बनाकर नाच नचाती है। अतः हे सखि ! मैं नम्रता पूर्वक तेरेसे कहती हूं कि ब झे उसके दर्शन कर लेने दे।

आप पूछेंगे कि क्या भगवान् चंद्र प्रभु के दर्शन इन चमड़े की आंखों से करें! किन्तु यह बात उचित नहीं है। आंखें तो चतुरिन्द्रिय जीवों को भी होती हैं। मगर वे प्रभु के दर्शन नहीं कर सकते। पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च भी आंखों के रहते विवेकरूपी चक्षु के अभाव में ईश्वरदर्शन नहीं कर पाते। ईश्वरदर्शन का वास्तविक साधन विवेक है। और वह मनुष्य में अधिक मात्रा में पाया जाता है। अतः वही विवेकसम्पन्न होकर प्रभुदर्शन कर सकता है।

अर्जुनमाली की कथा कह कर यह बताने की चेष्टा की जाती है कि सुदर्शन सेठ ने किस प्रकार भगवान् के दर्शन किये हैं। यह शंका होना वाजिब है कि महावीर और चन्द्र प्रभु जुदा जुदा हैं। यहां चन्द्र प्रभु के दर्शन की बात चल रही है। अर्जुन माली और सुदर्शन सेठ ने तो महावीर के दर्शन किये थे। दोनों में एकता कैसी? इस का समाधान इतना ही है कि दोनों का भौतिक शरीर भिन्न भिन्न था किन्तु आत्मिक गुण समान हैं। आप गुणों की तरफ नजर दौड़ाइये फिर आपको भेद नजर न आयेगा। गुणों से दोनों समान हैं—एक हैं। कहा है—

बुद्धस्त्वमेव विबुधार्चित बुद्धि बोधात् ।
त्वं शंकरोऽसि भुवनत्रय शंकरत्वात् ॥
धातासि धीर ! शिवमार्गविधेर्विधानात् ।
व्यक्त त्वमेव भगवन् ! पुरुषोत्तमोऽसि ॥

र्थ—हे भगवान् ऋषभदेव ! पण्डितों द्वारा पूजित बुद्धि का बोध देने वाले होने से आप ही बुद्ध हैं। तीनों गत् में आनन्द और कल्याण करने के कारण - ाप ही ङ्कर (महादेव) हैं। मोक्षमार्ग की विधि का विधान रने से आप ही धाता-विधाता (ब्रह्म) हैं और आप ही प्रकट रूप में पुरुषो (विष्णु) है। श्लोक । लितार्थ इतना ही है कि नाम भिन्न भि हैं किन्तु परमात्मा ए ही है। हमें गुणों से प्रयोजन है न कि नाम से। गुण हों तो नाम चाहे ोई भी क्यों न हो। परमात्मा ने अनन्त नाम हैं। अभिनन्दन भगवान् की प्रार्थना प्र ंग में मैंने भक्त तुलसीदास का भजन गाकर यही बात स्पष्ट करने की कोशिश थी कि नाम ोई भी क्यों न हो यदि परमात्मा के गुण उ में वि मान हैं तो हमें कोई ापि न होनी चाहिए। तुलसीदासजी का बनाया हु । भजन होने से कोई यह न समझ बैठे कि मैं ींचातान करके बात ो ंगत बैठा देता हूं। मेरा उद्देश्य परमात्मा का स्वरूप मझाने का है। विषय को सरल और स्फुट बनाने के लिए जहां कहीं से तत्त्व मिलता है मैं ग्रहण कर लेता हूं। मेरे उद्देश्य की तरफ आप लक्ष्य र ंगे।

सुदर्शन सेठ ने भगवान् महावीर के दर्शन कब और किस परिस्थिति में किये थे यह बात सं ेप मे बताता हूं।

राजगृही नगरी में श्रेणिक राजा राज्य करता था। वह साम दाम दण्ड और भेद नीति में प्रवीण था। राजनीति और धर्म नीति में बड़ा अन्तर है। राजनीति ूर्ण है जब

कि धर्मनीति पूर्ण और विशुद्ध है। लौकिक धर्म परिस्थितियों पर अवलम्बित है किन्तु पार लौकिक धर्म परिस्थितियों को पार कर जाता है। पारलौकिक धर्म किस प्रकार मनुष्य को ऊंचा उठाता है यह सुदर्शन के जीवन में देखिये।

राजगृही में साहूकारों के छः पुत्र रहते थे। वे धनवान् भी थे और युवक भी। राजा का कोई कठिन कार्य पूरा करके उन्होंने राजा को प्रसन्न कर लिया था। राजा ने उनको कहा कि तुम लोग इच्छित वस्तु मांग सकते हो, मैं देने के लिए तय्यार हूं। राजा की कृपा होने से मनुष्य भलाई भी कर सकता है और यदि राज्य कृपा का दुरुपयोग करे तो बुराई भी। विषयेच्छा के वशीभूत बने हुए उन युवकों ने अपनी कमीनी इच्छाओं को पूरा करने और उनमें विघ्न करने वाली बाधाओं को दूर करने की दृष्टि से राजा से यह वरदान मांग लिया कि हमारी किसी भी हरकत की शिकायत न सुनी जाय। हमारे सब अपराध क्षम्य गिने जायें। हमारी शिकायत न सुनी जाय। वचन में बंधा हुआ राजा उनकी मांग को अस्वीकार न कर सका।

मनुष्य प्राण देने के वक्त चाहे विचार करे या न करे किन्तु वचन देने के पूर्व अवश्य विचार करना चाहिए। मैं जो वचन दे रहा हूं उसका नतीजा आगे जाकर क्या होने वाला है यह अवश्य विचारना चाहिये। विना विचारे वचन दे देने से बड़े बड़े अनर्थ होने की संभावना रहती है। राजा दशरथ ने कैकयी को बिना विचारे वचन दे दिया था जिसका

कितना भयंकर परिणाम आया था यह वै विदित बात है। `णिक राजा के वचन का कितना दुष्परिणाम हुवा है यह ध्यान से सुनिये।

राजा ने उन उद्धत युव ों की बात स्वी ार र ली। जवानी का नशा चढ़ा हुआ था। धन म्पत्ति प्राप्त थी ही। राजदण्ड । भय मिट चुका । ब केवल `वेक ही जो बुराई से रोक ता था। किन्तु दुर्भाग्य से उन छहों युवकों में विवेक का भी पूरा अभाव था। वे विवे वि ल थे। धन हो यौवन हो और राज्यस ा भी हो किन्तु यदि मनुष्य में विवे बुद्धि-हिताहित सोचने की ि विद्यमान है तो वह बुराई की ओर ाकर्षित नहीं हो ता। बलि इन सब साधनों भलाई के लिए उपयोग र ता है। विवेक प्रधान गुण है जिससे मनुष्य उन्न` के शि र पर पहुंच सकता है। उन युवकों में विवेक न था अतः वे दुर्व्य-सनों में फंसकर विनष्ट हुए। नीति । में हा है—

यौवनं धन सम्पत्तिः प्रभुत्वमाविवेकिता ।
एकैकमप्यनर्थाय किमु यत्र चतुष्टयम् ॥

यौवन, धन सम्प ि , राज ा और अविवेक इन चारों में से एक एक बात भी अनर्थ का कारण है तो यदि हीं इन चारों का एक साथ संयोग हो जाय तब नर्थ ा क्या पूछना है। यौवन की शक्ति को १ मान लेते हैं। यौवन के साथ धन म्प ि का योग हो जाय तो ११ जितनी क्ति

हो जाती है। राज्यसत्ता भी यदि युवा धनवान् को प्राप्त हो जाय तो उसकी शक्ति १११ हो जाती है। युवक धनवान् राज्य-सत्ता पाकर अपनी १११ शक्ति का सदुपयोग कर सकता है यदि उसमें विवेक शा जागृत हो। यदि विवेक न रहा तो १११ जितनी शक्ति १.११. जितनी बनकर महान् अनर्थ का कारण बन जाति है। इन छः दोस्तों की विवेक हीनता के कारण कैसी दुर्दशा होती है यह ध्यान से सुनिये।

राजा से निर्भयता का वचन पाकर वे छओं मित्र स्वैर विहार करने लगे। स्वच्छन्दता पूर्वक मन माना आचरण करने लगे। किसी की पुत्र वधू को किसी की कन्या को और किसी की मां वहिन को पकड़ने लगे और उनका सतीत्व नष्ट करने लगे। दिन रात इसी ताक में रहते कि किसकी वहू वेटी सुन्दर है उससे अपनी दुष्टवासना को वुझावें।

इस प्रकार राजगृही नगरी की जनता इन दुष्ट स्वेच्छा चारी युवकों की हरकतों से तंग आगई। प्रजा की इज्जत जाने लग गई। प्रजा बहुत दु.खी हो गई। ऐसे वक्त प्रजा का कर्त्तव्य स्पष्ट था। किन्तु प्रजा में कायरता आगई थी अतः वह कर्त्तव्य पालन नहीं कर सकी। प्रजा का कर्त्तव्य था कि वह राजा के पास पहुंचती आर उन उद्दण्ड युवकों की शिक्षा-यत्त करती। अथवा राजा से ही कहती कि आप को इस प्रकार विना विचारे वचन देने का क्या अधिकार था जिसका फल प्रजा इज्जत में हतक होना था। स हकीकत से राजा को अवगत कराकर ि । विचारे दी हुई राजाज्ञा वापस खिच-

चाती। किन्तु प्रजा में इतनी हि त व जागृति न थी। प्रजा का मन मरा हु । था अतः इस प्रकार वि ारने लगी कि किसके पास जावें और किसको अपनी शिकायत सुनावें। राजा ने प्रसन्न होकर इनको छूट दे रखी है। अतः इनकी शिकायत राजा के पास कैसे करें। हम लोग वनिये हैं। हमारी मूंछ ऊंची नहीं किन्तु नीची ही सही। इस प्रकार के कायरता पूर्ण विचार प्रजा के दिलों में घर किये हुए थे।

आज कल भी ऐसे कायर लोगों की कमी नहीं है जो न्याय या अत्याचार का विरोध करने में हिचकते हैं। 'हमारी कौन सुनता है यदि कुछ मुंह ोल कर शिकायत रेंगे या ावाज उठायेंगे तो राज विरोधी समझे जायंगे'। ऐसी पस्त-हिम्मत की बातें कई लोग किया करते हैं। मगर मित्रों! धर्म ायरों के लिए नहीं है वीरों का है। वीर पुरुष ही धर्म सिद्धान्तों का पालन र सकते हैं। जिन को अपने रीर का मोह है, जो कुटुम्ब के पीछे अपमान और अनादर भी सहन र लेते हैं, ऐसे भीरु ोग धर्म का पालन नहीं कर स ते।

यदि राज ही प्रजा बलवान् ार जागृत होती तो वे छः साथी मित्र प्रजा की बहू बे यों के शील पर हाथ डालने की कभी हिमाकत नहीं कर सकते। अन्याय या ाचार हन करना उसको ब वा देना है। यदि कोई ाधारी या क्ति ाली व्यक्ति पनी स । और क्ति के मद आकर किसी व्यक्ति विशेष या समूह विशेष पर अ ाचार रता है और वह व्यक्ति समूह बिना किसी प्र ार ।

प्रतिकार किये उस अत्याचार को सहन कर लेता है तो वह अत्याचार की वृद्धि में प्रोत्साहन देने वाला है। जिस आचरण को मनुष्य अन्याय या अत्याचार रूप समझता है, मन में वह त्रस लगता फिर भी यदि कायरता या सामने वाले को शक्त समझ कर उसका किसी प्रकार का विरोध नहीं करता वह उस अत्याचारी के अत्याचार में एक प्रकार से सहयोग प्रदान करता है। मान लीजिये कि एक स्त्री पर एक गुण्डा बलात्कार करता है। यदि स्त्री गुण्डे की शक्ति के सामने अपने को कमजोर पाकर किसी प्रकार का विरोध या प्रतिकार नहीं करती है और अपना शरीर गुण्डे को सौंप देती है तो वह अत्याचार में सहायता करती है ऐसा कहने में बाधा नहीं लूम देती। माना कि वह गुण्डे की शारीरिक शक्ति से लोहा नहीं ले सकती। किन्तु शब्दों से इन्कार कर सकती है। अपनी शारीरिक चेष्टा से विरोध प्रदर्शित कर सकती है। ऐसा कुछ भी न करके मन में इच्छा न होते हुए भी अपने को अत्याचारी के सुपुर्द कर देना कायरता है और अत्याचार में सहायक होना है।

राजगृही की प्रजा में इस प्रकार की भीरुमनोवृत्ति घर किये हुई थी। अतः वे छःओ गोठीले मनमाना अत्याचार करने लगे और मदम होकर घूमने लगे। किन्तु यह प्रकृति का अटल नियम है कि चाहे कोई किसी भी पशुबल से मस्त होकर अपने को भूला हुआ हो और धर्म की अवहेलना करता हो, उसे उसका प्रतिफल भोगे बिना छूटकारा नहीं हो सकता। हां, यह हो सकता है कि किसी को किसी बात का बदला

देरी से भुग   पड़ता है और किसी को तत्काल। मगर किये
प में   ल भुगते बिना छुटकारा नहीं है। प्रकृति के
राज्य में अंधेर नहीं है, देर चाहे हो सकती है।

इसी राजगृही में अर्जुन नाम का एक माली रहता था। उसके बन्धुमती नामकी एक सुन्दर रूपवती भार्या थी। पति पत्नि में बड़ा प्रेम था। जिस प्रकार आज की पत्नी पुरुष के प   ाररूप है उस प्रकार वह न थी। वह अपने पति के ार्य में हाथ बटाती थी और पूरी सहायिका थी। इसी प्रकार अर्जुन माली भी स्त्री का ुलाम न था। किन्तु वास्तविक मित्र । ौर उचित सत्कार कर   था।

आज   ई पुरुष   ी के   लाम बने हुए हैं। वासना-वृत्ति में आस   होकर   पना स्वत्व   ो बैठते हैं। स्त्री और पुरुष ए   दूसरे के पूरक हैं। कोई किसी का गुलाम नहीं है। दोनों   ा पारस्परिक मैत्री स   न्ध है। विवाह   रने के प   ात् यदि पुरुष यह   नुभव करने लगे कि उसका कुछ भार हल्का   है, उसे जीवन में सच्चा साथी मिल गया है, उसके धार्मिक और लौकिक कार्य में वृद्धि हुई है तथा उसका दिमागी बो   ा हल्का हुआ है तब तो समझना   हिए कि विवाह करके वह चर्तुभुज बना है। नहीं तो   तुष्पद बन जाता है और चतुष्पद में भी गदहा बन जाता है जो जीवन भर गृहस्थी   ा   र ढो   रहता है। न दे   सेवा, न जाति सेवा और न   र्म सेवा ही उ   से बन पड़ती है।   ारी उ   स्त्री और कुटुम्ब

की लामी में बीत जाती है। इसका कारण स्त्री का उसके कार्यों में सहयोग न देना है।

जिन कार्यों में स्त्री सहयोग दे सकती है उसमें सहयोग देना उसका कर्त्तव्य है। पुरुष के लिए एकान्त बोझारूप बनकर गृहस्थ जीवन को कठिन नहीं बनाना चाहिए। जो स्त्री अपने शृङ्गार और सजावट के कार्य में ही तल्लीन रहती है, फैशन में फंसी रहती है, वह भार रूप नहीं तो और क्या है! फैशन इस वक्त इतनी बढ़ी हुई है कि ि यां अर्द्धनग्न रहने में अपना सौभाग्य सम ती हैं। रेशमी और बारीक वस्त्र पहन कर लज्जा को विदाई दे दी गई है। ल । शील होना स्त्रियों का भूषण है किन्तु फैशन ने ल । को विदा कर दिया है। इतने महीन व पहने जाते हैं कि शरीर के अंग प्रत्यंग दि ाई देते हैं। ऐसा भी सुनने में आया है कि शरीर के वर्ण के समान वर्ण वाले वस्त्र निकले हैं। जिनको धारण करने से दर्शक को यह नहीं मालूम हो सकता कि वस्त्र पहने हुए हैं या नहीं। ऐसी दशा में वस्त्र से क्या प्रयोजन सिद्ध हुआ! ल । ढांकने रूप प्रयोजन सफल नहीं होता।

मैं यह कह रहा था कि ी पति की सहायिका है। औरों की मैं क्या बात करूं आप महाजन लोगों ि ं आपके लिए क्या हैं? भार रूप हैं या भार हल्का करने वाली? मेरा अनु कहता है कि वे भार रूप बनी हुई हैं। सब ि यों को मैं यह प्रमाणपत्र नहीं दे रहा हूं कि वे भार-

रूप हैं किन्तु देखा जाता है कि अने स्त्रियां अपने पति के लिए भाररूप हैं। यदि हीं मुसाफिरी में चले गये तो जिस प्रकार दागिनों या जोखमी वस्तुओ का ध्यान र । जाता है उस ार रि यों का भी ध्यान र ना पड़ता है। यह स्थिति ी और पुरुष दोनों के लिए अच्छी नहीं कही जा सकती।

अर्जुन और बन्धुमति दोनों मिल र गृहस्थी का भार वहन रते थे। दोनों मिल कर उद्यान में पुष्प इकट्ठा करते थे दोनों मिल कर माला बनाते और बाजार में बें कर पना निर्वाह करते थे।

एकदा एक उत्सव का प्रसंग आया। इस प्र ंग पर पुष्पों की और मालाओं की विक्री अधिक होगी ऐसी । । से दोनों बाग में फूल चुनने के लिए गये। फूल चुनकर मालायें ादि बनाकर उस बाग में स्थित यक्ष मन्दिर में यक्ष के दर्शनार्थ आये। उन दोनों का यह नियम था कि वे यक्ष की पूजा और दर्शन किये विना व्यापार में न लगते थे।

ंयोग से वे छओं साहूकार के पुत्र भी घूमते घामते उसी बगीचे में आ पहुंचे और उनकी दृष्टि बन्धुमति पर जा पड़ी। उसे देखकर एक युवक कहने लगा—अहो! यह ी कितनी सुन्दरी है! इसे गौरी कहा जाय लक्ष्मी? इस । मोहकरूप चित्त को हठात् पनी ओर आकर्षित रता है। तब दूसरा युवक बोला—यार! ाली रूप की प्र ंसा रके ही रह जाओगे या कुछ अन्य प्रय भी करोगे। यह तो हमारी खुशकिस्मती से ही इधर आई मालूम देती है।

मित्रो ! मैं आपसे पूछता हूं कि यह बन्धुमति स्त्री इन युवकों की है या अर्जुन की ? यदि युवकों की नहीं है तो ये कैसे कह रहे हैं कि हमारे सद्भाग्य से ही यह इधर आ रही है। इष्ट रूप, इष्ट शब्द, इष्ट गन्ध और इष्ट स्पर्शादि की प्राप्ति पुण्यकर्म का फल माना जाता है। क्या बन्धुमति का उद्यान में आना इन छहों दोस्तों के लिए ण्यकर्म का फल है ? इन लोगों ने यह बात मान ली कि हमारे शुभ कर्म के उदय से यह सुन्दरी नारी इधर आई है और हमको आनन्दित करने में कारण बनेगी। क्या इस प्रकार पाप वासना को मन में स्थान देने वालों के लिए किसी वस्तु का संयोग हो जाना अथवा बलात् उनके द्वारा संयोग कर लिया जाना पुण्योदय गिना जायगा ? कदापि नहीं। यदि इस तरह पुण्य का अर्थ लगाया जायगा तो फिर पाप किसको कहेंगे। परस्त्री का संयोग होना अथवा अपनी शक्ति से संयोग जुड़ा लेना पुण्य-कर्म का फल नहीं माना जा सकता। इस तरह तो चोरी करके धन जुटाना भी पुण्यफल गिना जाना चाहिये। किन्तु पुण्य शब्द का यह अर्थ ठीक नहीं हो सकता। फिर पाप शब्द का क्या अर्थ किया जायगा और किस काम को पाप माना जायगा।

तीसरा युवक बोला—हमारी मनोकामना पूरी होने में इस स्त्री के साथ वाला पुरुष बाधक है। यह बाधा हटने पर ही इस सुन्दरी के साथ आनन्दक्रीड़ा की जा सकती है। चौथा बोला—क्या हम लोग कायर हैं जो एक पुरुष को भी दूर नहीं ह सकते। पांचवां बोला—कायर कैसे हैं, हम लोग

वीर हैं। इस को दूर हटाकर अपनी इच्छा पूरी करें। छठे युव ने कहा—भाइयो! कोई भी काम सो समझ र तरकीव से रना चाहिये। विना विचारे एकदम कर डालना ठीक नहीं है। एक व्य भी यदि बिगड़ जाय तो हमारा निष्ट र सकता है। अतः शांति र कर युक्तिपूर्वक ाम करना चाहिये।

ापस में सव मिलकर सो ने लगे कि किस तरह इस रूप सुन्दरी को काबू में किया जाय और मनोवांछा पूरी की जाय। सोचने के बाद सव इस निर्णय पर पहुंचे कि हम सव लोग मंदिर में जाकर किंवाड़ों के पीछे छिप जायं और जब यह पुरुष यक्ष को नमस्कार करने के लि नीचे झुके तब इसे पकड़ कर बांध दिया जाय। तदनुसार सब यथा स्थ छिपकर ड़े हो गये।

र्जुन माली निर्भय था। उसे इस आकस्मिक खतरे कतई ाशं । न थी। परम्परा और दैनिक नियम के अनु ार वह य -मंदिर में गया। पुष्प चढ़ाये और नमस र करने के लिए नीचे झुका। ज्योंही वह नीचे झुका कि छओं ाथी ए दम उस पर टूट पड़े और उसको पकड़ कर बांध दिया। ाथ ाथ बन्धु मति को भी पकड़ लिया और अर्जुन के ने ही उ के साथ ंभोग करने लगे। यदि बन्धुमति ती स्त्री होती तब तो अपने प्राण दे देती पर उन गुण्डों की प ड़ में न ती। किन्तु र्जुन से सच्चा प्रेम न र ती थी। दि ावटी प्रे र ती थी। तः उन युवकों के ाथ यं रम गई।

हमारे सामने ऐसे कई दृष्टान्त हैं कि स्त्री की इच्छा के विरुद्ध किसी भी गुण्डे यह हिम्मत नहीं है कि वह उससे संभोग कर सके। यदि स्त्री नहीं चाहती है तो वह कई तरीकों से अपना बचाव कर सकती है। और कुछ न बने तो अपनी जबान क कर भी प्राण दे सकती है। जबान काट कर प्राण देने का महारानी धारणी का दा ला प्रसिद्ध है। किन्तु यह कार्य सरल नहीं है। धर्म का पालन करना भी तो बड़ा क न है।

गोड़ा लकड़ी एवं उल्टी मुस्की से बंधा हुआ अर्जुन यह लीला अपनी आं ों से दे रहा था। उसके क्रोध की सीमा नहीं। कौन पुरुष ऐसा होगा जो अपने सामने अपनी स्त्री को पर पुरुष से संयोग करते दे कर क्रोधित, दुःखित और अपमानित न होगा? ऐसे प्र ग पर पशु भी आपस में लड़ पड़ते हैं तो पुरुष इस अपमान को कैसे सहन कर हैं।

पड़ा पड़ा अर्जुन विचारने लगा कि अहो! इस यक्ष की मैं जन्म भर से सेवा कर रहा हूं फिर भी यह मेरा सहायक नहीं रहा है। मेरी ां ों के सामने यह कांड गुजर रहा है। यक्ष की मूर्ति के सम यह जघन्य कृत्य किया जा रहा ह फिर भी यह यक्ष प्रकट होकर अपनी शक्ति प्रदर्शित नहीं करता। यह निरा का पुतला ही है। सच्चा यक्ष नहीं है।

इस प्रकार विचार करते हुए अर्जुन का मन एकाग्र हो गया। उसमें जो एकाग्रता थी वह रजोगुणी थी। सतो णी एकाग्रता में दूसरों की भलाई संनिहित होती है। उसमें ोध

या वद ा लेने भावना नहीं होती। उस प ा ता की क्ति से य उ के रीर में प्रवे हो गया और उ के बंधन टूट गये। य मूर्ति पा पड़ा हुआ मुद्गर ले र व उन छः ओं ाथियों पर टूट पड़ा। उनके सिर ोड़ दिये। फिर सोचा कि मेरी स्त्री भी दुरा रिणी है कारण कि विना ा ानी किये इ ने अपने ो इन दुष्टों की हरकत शामि र दिया। तः इ ो भी दंड देना चाहिये। छः ओं तरह स्त्री ो भी मार डा ा। फिर विचार किया कि इस हर के ोग भी दुष्ट हैं। यदि ये दुष्ट या ायर न होते तो ये छः लड़के इस ार उद्दण्ड और मस्त होकर भी घूम नहीं पाते। इनकी मस्ती बढ़ाने में हरी लोग ही कारण हैं। अतः हर के ोगों ो भी मार डालूंगा।

बेदरकारी या पड़ौसी ा याल न करने ा कित भयं र परिणाम हो ता है यह बात हम इस कथा से म ते हैं। ई लोग इस प्रकार सो ते हैं कि हमारे पड़ौसी ाम नगर या दे की हानि होती है तो इ से हमारा ा बिगड़ता है। हमारा घर सुर ि त रहना चाहिये। किन्तु उन ा यह विचार बड़ा संकु ि त और दीर्घ दृष्टि रहित है। जब पड़ौसी के घर में ाग लगी है तो वह तुम्हारे घर त भी पहुँच कती है क्यों न उ आग ो वहीं रो दिया जाय ताकि पड़ौसी ा भी भला हो और तुम्हारा भी। परहित हित माया हुआ है, यह मझना बुद्धिम है।

अर्जुन ने अपने मन में यह निश्चय कर लिया कि इस नगरी के राजा और प्रजा दोनों दुष्ट हैं। इनकी दुष्टता का इनको फल चखाये विना मैं न रहूंगा। मगर उसकी हिम्मत नगर में प्रवेश करने की न हुई। नगर के बाहर ही प्रतिदिन छः पुरुष और एक स्त्री को मार डालने का धंधा अख्तियार कर लिया। उसको यही धून बंध गई। इस बात की सारे शहर में शोहरत हो गई कि अर्जुन हत्याकांड पर उतारु है। लोग घबड़ाने लगे। राजा को भी इसका पता लगा। मगर वह यक्षाधिष्ठित अर्जुन को काबू में न कर सका और शहर में ढिंढोरा पिटवा दिया कि कोई भी व्यक्ति नगर के बाहर न जाय। अर्जुन माली कोपा हुआ है।

राजा का यह काम कायरता पूर्ण ही गिना जायगा। उस का कर्त्तव्य प्रजा की रक्षा करने का था। किन्तु उसने यह कर्त्तव्य पूरा नहीं किया। यह शंका हो सकती है कि अर्जुन में दैवशक्ति प्रविष्ट हो गई थी अतः राजा उसे पकड़ने में असमर्थ रहा। और इसीलिए वह प्रजा रक्षण के कर्त्तव्य से च्युत रहा। किन्तु राजा का फर्ज इतने मात्र से अदा नहीं हो जाता कि वह सारी प्रजा को सूचना मात्र करवा दे कि कोई नगर के बाहर न निकले और निश्चिंत होकर बैठ जाय। नगर के बाहर मारे गये ११४१ स्त्री पुरुषों की मौत की जिम्मेवारी या रक्षण का कर्त्तव्य राजा की तरफ ही आता है। पांच मास और तेरह दिन यह हत्याकांड होता रहा और राजा देखता रहा। इसे कायरता पूर्ण व्यवहार न कहा जायगा तो क्या कहा जायगा!

नगर　त्राहि त्राहि मची हुई थी। यें कारण ठी ठी　ना तो　ानीजन ही जान सकते हैं। किन्तु व्यवहार में यही　हा जायगा कि किसका पाप किसको भुगतना पड़ रहा है। पाप किया उन छः मित्रों ने और उसका　ल नगर निवासियों को भी भुगतना पड़ रहा है।　थवा राजा के बिना वि　ारे व　न प्रदान　रने से या राजा की असावधानी से प्रजा को कष्ट उ　ना पड़ रहा है। जहां के लोग स्वयं कायर हो जाते हैं वहां उन पर अ　मान आपत्ति आ पड़ना साधारण बात है।

नगरवासी घबड़ा गये। किसी नगर का द्वार एक दिन　प भी बंद रहे तो हाहाकार म　ज　है। नगर के बाहर आये बिना　ाम नहीं　ल सकता।　म से कम प　ओं को चरने के लिए बाहर निकाले बिना छुटका न　था। मनुष्यों के भी　ने प्रयोजन ऐसे थे जो नगर बाहर जाने पर ही पूरे हो स　ते थे। फिर राजगृह का　र पांच मा　और तेरह दिन बंद रहा तो वहां के लोगों की परे　ानी　अनुमान　गा लीजिये, कि वे ि　ने दुः　त और हैरान हुए होंगे। लोग पश्चा　ाप　रने लगे कि हम समय पर न चेते। पश्चा-　ाप करने से भी पाप हल्का हो जाता है　थवा गल भी जाता है। उसी　वसर पर भग　न् महावीर　ामानुग्राम वि　रते हुए राजगृह नगर के बाहर पधारे।

किसी भाई　हृदय　यह तर्क उपस्थित हो स　ती है कि　गवान् म　वीर दया　थे वे इससे पहले ही क्यों न

पधार गये। और लोगों के दुः को दूर करने में निमि क्यों न बने? जब ११४१ व्यि यों की ह । हो चुकी तब पधारे। इसका क्या कारण है? व यह है कि भगवान् अपने ज्ञान के द्वारा सब बात समझते थे। जो काम जिस तरह होने का होता है वह उसी तरह होकर ही रह है। और जिस काम को करने का जो समय होता है वह उसी व किया जा सकता है। उससे पूर्व नहीं हो सकता। काल पके बिना कार्य की सिद्धि नहीं हो सकती।

भगवान् महावीर नगर के बाहर बगीचे में ही ठहरे। सारे नगर में भगवान् के पधारने और उद्यान में विराजने की बात बिजली की तरह प्रसिद्ध हो गई। राजगृह में भगवान् महावीर के अनेक भक्त भी थे। वे दर्शनार्थ नगर के बाहर जाना चाहते भी थे मगर अर्जुन के डर के मारे बाहर जाने का किसी का साहस न होता था। सब यह कहते रहे होंगे कि भगवान केवल ज्ञानी हैं, वे घट घट के भाव जानते हैं, यहीं बैठे २ ही भाव वंदन कर लेते हैं, हमारी वंदना मंजूर हो जायगी।

आजकल भी कई लोग यही बात कहते हैं कि हमारे भाव अच्छे होने चाहिये बाहरी क्रिया करने में क्या र । है। यदि मन में आध्यात्मिकता है तो बाहरी क्रिया कांड किया तो क्या और न किया तो क्या। मगर ऐसा कहने वाले एकान्तवादी हैं। वे निश्चय दृष्टि को आगे र कर ऐसा कहते हैं। किन्तु निश्चय के साथ व्यवहार हो तभी वह क साधक

होता है। विचारों । ।त्मि ता हो बड़ी अच्छी बात है किन्तु यदि कृत्य में । ।त्मिकता न हो तो वे च्चे विचार ह की तरह उड़ ।ते हैं और मनुष्य पथ ष्ट हो ता है। ।र से वि ।र को पुष्टि मिलती है और विचार से आचार ो। दोनों । गहरा सम्बन्ध है।

सुदर्शन सेठ ोरा अध्यात्मवादी ही न ।। वह क्रिया के ।थ होने वाले ध्यात्मवाद में वि स र ने वाला व्यक्ति ।। ो । आध्यात्मिक होगा वह बाहरी वि ों के भय से तदनुकूल क्रि रने में कभी नहीं हि केगा। सुद न ने ान् के ।गमन की बर नी। वह तत्काल दर्शन करने के लिए ।ने वास्ते तय्यार हो गया। उ ने मन में सो । कि जो सिपाही प्रति स वेतन लेता रहे और जब युद्ध में जाने । अवसर ।ये तब हीं जा कर छिप जाय तो वह बहादुर नहीं गिना । सकता, लोग उसे कायर ही हेंगे। मैं महावीर श्राव । वे मेरी नगरी के बाहर पधारे हैं। मैं डर के मारे यह सो कर कि भगवान् ज्ञानी है मेरे भावों पर याल रके मेरी व वंदना स्वीकार र लेंगे, शरीर वंदना करने क्यों जा , निरी ।यर है। इस ना वान् रीर । एक न एक दिन विना हो ही है। फिर क्यों न इस भ मारंभ से अपने ।पको होम दूं। यह वि ।र कर वह ।ने के लिये तत्पर हो गया। जो सच्चा ।ध्यात्मि होता है वह कोरी अध्यात्म द की बातें ही रके निष्क्रिय हो र बैठा नहीं रहता किन्‍ क्रिया तत्पर हो है।

सुदर्शन अपने मन में किये हुए संकल्प की गुरुता को जानता था वह समझता था। वह समझता था कि मैं जो कदम बढ़ा रहा हूं वह खतरे से खाली नहीं है। संभव है इस कदम से भौतिक शरीर का त्याग तक करना पड़े उसने अपने माता पिता की आज्ञा लेकर जाना उचित समझा। मातापिता से पूछने पर वही उत्तर दिया जो साधारण माता पिता दिया करते हैं। पुत्र ! यहीं पर बैठे २ वंदन कर लो, सर्वज्ञ सर्व दर्शी भगवान् तुम्हारे भावों को जान कर तुम्हारी हुएडी सिकार देंगे। किन्तु पुत्र कहां मानने वाला है। उसने अपने बुद्धि चातुर्य्य से माता पिता को मना लिया। यह शरीर आपका दिया हुआ अवश्य है किन्तु इसे मैं प्रभु के समर्पण कर चुका हूं अतः वीरोचित मार्ग पर चलना पसन्द करता हूं' इत्यादि दलीलें देकर माता पिता को राजी कर लिया। सुदर्शन दर्शन करने के लिए चल दिया।

कई लोग अच्छे कार्य जैसे देश सेवा धर्म सेवा या इसी प्रकार के अन्य २ कार्य करने के लिए माता पिता की आज्ञा प्राप्त करना आवश्यक नहीं समझते। कई लोग केवल पूछ लेते हैं। आज्ञा न मिलने पर या मना करने पर भी कार्य मे ट जाते हैं। किन्तु यह शिष्ट सम्मत तरीका नहीं है। शिष्ट तरीका तो यही है कि अच्छे कार्यों के लिए भी माता-पिता की आज्ञा प्राप्त की जाय। माता पिता को अपने कार्य की विशेपता, उपयोगिता और गुण दोष बता कर उनके मन का समाधान करके, आज्ञा प्राप्त कर कार्य में जुटना सज्जनोचित मार्ग है। ऐसा नहीं हो सकता कि माता पिता सच्ची

दलील को न ँ और न मानें। तत्काल न मानें तो धीरे २ मनवाने का य रते रहना ाहिये मगर पीछे दम न हटाना चाहिये और न इस बहाने पनी उन्नति को रोकना ही ाहिये।

सुदर्शन च्चा स ाग्रही था। उसने पने माता पिता को आ ा देने के लिए प्रसन्न र लिया और ल दिया। उ दिन वह केला ही था। कोई साथ न था। पहले ब भी दर्शनार्थ जाता था, अनेक लोग उसके ाथ होते थे किन्तु ाज तो परीक्षा का वसर था। आज रीर ंकट ा प्र ंग था। ऐसे वसर पर साथ देने ले व्यक्ति विरले ही होते हैं।

सुद ंन के दर्शनार्थ जाने की बात नगर में ै गई। लोग चर्चा करने लगे कि सुद ंन हमारी नगरी ा ना है। यदि वह अर्जुन माली के हाथ से मारा गया तो हमारे नगर की नाक चली जायगी। कई लोग आकर सुद ंन को मना रने भी लगे कि क्या रीर को त्यागना है जो दे ती आं ों अपने को जलती भट्ठी में ोंकने जा रहे हो। यहीं से वंदन र लो।

लोग ऐसी बात कह रहे हैं जो पर से सुदर्शन लिए भलाई वात मालूम देती है। ाप लोग रा ध्यान दीजिये कि दर्शन लोगों की बात माने या पने हृदय । आधुनि ोग आत्मा की अपेक्षा दूसरे ोगों ब पर अधिक ध्यान देते हैं। ात्मा जि त्य को स्वीकार र

रही है उसे केवल लोगों के कहने मात्र से छोड़ देना, सत्य से दूर हटना है। लोगों का क्या है, वे उलट भी बोल देते हैं और लट भी! साधारण लोगों के मु पर लगाम नहीं होती अतः किसी बात का निर्णय करते वक्त शुद्ध आत्म साक्षी को प्रमाणभूत मानना चाहिये। यदि आत्मा निर्णय न कर सके तो रित्रवान् ज्ञानी रुष से निर्णय लेकर कार्य में लगना उ मार्ग है।

सुदर्शन लोगों के साथ तर्कवाद में न उल र आगे बढ़ता ही गया। जो आगे कदम र ता जाता है, उसकी टीका टिप्पणी भी होती है और स्तुति भी। समझदार लोग सुद-न के इस प्रयत्न की प्रशंसा करने लगे और धन्यवाद देने लगे। किन्तु जो ईर्षा थे वे दुर्गुण ढूंढने लगे। कहने लगे कि यह बड़ा हठी है, बड़ा अभिमानी है, जो सब बात न मान कर मैं के में जा रहा है। जाने दो। इसने अनेकों को लूटा है, उसका प्रतिफल भोगने दो। मरने दो। आदि।

निन्दा और स्तुति की परवाह किये बिना सुदर्शन आगे बढ़ता गया। उन्नति में निन्दा भी बाधक हो कती है और स्तूति भी। कभी कभी निन्दा की अपे । स्तूति में फूल जाने वाले का न शीघ्र होते दे । गया है। जिसे आगे बढ़ना है उसे निन्दा और स्तूति दोनों से मुख मोड़ लेना होगा। जो निन्दा से घबड़ाता है और स्तूति से फूल जाता है वह उन्नति शब्द का अर्थ भी नहीं समझता। उन्नति करना तो उसके लिए बहुत दूर है।

विचार करता हुआ जा रहा है कि यह रीर एक न एक दिन अवश्य छूटने वाला है फिर भगवद् भक्ति के लिए यदि इसे छोड़ना पड़े तो इस में आनाकानी क्यों होनी चाहिये।

यह वीरों का मार्ग है। वीर वह होते हैं जो आपत्तियों से नहीं डरते। बल्कि आपत्तियों को निमंत्रण देते हैं और बड़ी बहादुरी से उनका सामना करते हैं। जो लोग सु सुविधा या निरापद् परिस्थिति की ताक में बैठे रहते हैं उनसे कोई ास काम नहीं बन सकता। वे अपने शरीर को पंपोला करते हैं। और जरासी कठिनाई आने पर विचलित हो जाते हैं। ऐसे लोग यर कहे जाते हैं।

मानलीजिये कि आपके पास एक बहुमूल्य र है। आपको उसके कारण चोरों से भय भी है। एक विश्वस्त व्यक्ति आपसे उस वक्त यह कहता है कि यह र मुझे दे दो। मैं इसे रक्षित रखूंगा और द्विगुणित करके वापस लौटा दूंगा। क्या आप ऐसे सुन्दर अवसर को हाथ से जाने देंगे? कदापि नहीं। इसी वात को जरा अपने शरीर पर लागू कीजिये। यह शरीर रूपी र , आधि व्याधि और उपाधि रूपी चोरों से घिरा हुआ है। यदि इसको परमात्मा की सेवा में समर्पण कर दिया जाय तो कितना भला हो सकता है। हाड मांस के शरीर के वदले दैवी शरीर के बदले दैवी शरीर भी प्राप्त हो सकता है।

सुदर्शन को आते दे कर अर्जुन विचारने लगा कि यह कौन वीर पुरुष है जो बेधड़क इधर चला आरहा है। मैंने

इतने रुषों । बध या मगर इतनी निर्भयता से आते किसी को न दे । । जो ये वे सब हाथ जोड़ते और क्षमा मांगते ही आये । मैंने उन कायरों को मार ही डाला किसी को नहीं छोड़ा । यह निर्भय होकर रहा है किन्तु मेरे हाथों में से यह कैसे ब सकता है अभी इसका सफाया किये देता हूं ।

इस ार वि ार रता हुआ र्जुन हाथ में के मुद्गर को घु ता हुआ सुदर्शन की तरफ चला । सुदर्शन और अर्जुन की मूठ भेड़ को कई लोग दूर दूर खड़े ोकर देख रहे थे । कई मन में सुदर्शन की रक्षा की कामना कर रहे थे और कई मरने की । किन्तु शा कहता है कि सुदर्शन अर्जुन को निकट ाते दे कर भी निर्भय ही बना रहा । उसका एक रोम भी लित नहीं हुआ । सुदर्शन के मन में यही भावना काम कर रही थी कि यह मेरा परिक्षक है । आज तक मैंने शरीर और कुटुम्ब को अपनी आत्मा से भिन्न मानने का पाठ याद किया था उसकी आज यह परिक्षा ले रहा है । मैं वस्तुतः भगवान् का भक्त हूं या इ शरीर और कनक कामिनी का । इस बात की परी । है । मुझे धर्म कीही रण लेनी चाहिये । इस पर तनिक भी क्रोध न आना चाहिये ।

इस प्रकार नि य करके पृथ्वी को उत्तरासन से सा करके सुदर्शन पालथी मार कर स्थिरासन से बैठ गया । उसने अर्हन्तों की साक्षी से कहा कि हे भगवन् ! अर्जुन के प्रति मेरे रोम में भी क्रोध न आने ये, मैं इसे पना हितैषी मित्र मानूं यह भावना बनी रहे । इसके उपरान्त उसने अठारह पापों ।

सर्वथा त्याग भी किया। यदि शरीर छूट गया तो सर्व पाप का त्याग है।

सुदर्शन की यह निश्चलता दे कर अर्जुन का क्रोध और अधिक बढ़गया। निकट आकर बड़े जोश से उसने मुद्-गर ऊंचा उठाया। किन्तु सुदर्शन की आध्यात्मिक शक्ति के सामने बेचारा काष्ठ का बना मुद्गर पर ऊठा ही रह गया, नीचे न गिर सका। आप श्रोताजनों को आश्चर्य होगा कि ऐसा कैसे हो सकता है। आप सच्ची आध्यात्मिकता से दूर पड़ गये हैं और इतर वाचन मनन में लग गये हैं। शास्त्र कथित इस कथा पर विश्वास लाना इसी कारण कठिन मालूम देता है। किन्तु इस घटना को सिद्ध करने के लिए अनेक प्रमाण हैं।

मैंने आप लोगों को मद्रास से चली ट्रेन को आंखों के तेज से रोक लेने वाले योगी की बात सुनाई थी। इसी प्रकार मेस्मेरिजम के प्रभाव से मनुष्य इतना कड़ा शरीर बना सकता है कि दस पांच आदमी उस पर कूदा करें तब भी उसका कुछ नहीं बीगड़ता। जब भौतिक बल से इतनी बातें हो सकती है तो आध्यात्मिक बल से मुद्गर ऊपर ही उठा रह जाय इस में क्या आश्चर्य जैसी बात है और क्यों इसे असंमभव माना जाय।

अर्जुन लाल लाल आंखे करके सुदर्शन के समक्ष ड़ा है। जिसमे रजो गुण की अधिकता होती है उसकी आं लाल रहती है और जिसमे सतोगुण का आधिक्य होता है

उ की आंखें शीतल और प्रेम भरी होती है। सेठ की त्मा में से शांति कि शक्ति नि ल रही थी और अर्जुन के शरीर में प्रविष्ट यक्ष की त्मा में से क्रोध की शक्ति निकल रही थी। किन्तु सेठ की क्ति ने यक्ष की क्ति को परास्त कर दिया जो क्ति प्रबल होती है वह अपने से कमजोर को हरा देती है।

यक्ष शांत होकर विचारने लगा कि यहां मेरी दाल गलने वाली नहीं है। यह सेठ तो भगवान् बन रहा है, भगवान् की शक्ति को अपना रहा है। वहां मेरी आधिदैविक शक्ति क्या काम कर सकती है। वह घबराया और अर्जुन के शरीर से नि ल कर भाग गया। यक्ष के निकल भागते ही अर्जुन धड़ाम से नीचे गिर पड़ा। अर्जुन कई दिनों से भूखा है। वह बहुत कृष है गया है। जो कुछ उत्पात हुआ था वह तो यक्ष के बल से था। यक्ष के चले जाने से अर्जुन नीचे गिर पड़ा।

अर्जुन को इस प्रकार गिरते दे कर सुदर्शन ने ध्यान खोला और उस पर दया लाकर उसे ऊंचा उठाया। यदि कोई साधारण व्यक्ति होता तो गिरने पर एक लात और लगाता। अक्सर दे ा जाता है कि गिरे हुए पर लात लगा कर लोग बड़े प्रसन्न होते हैं। किन्तु हीन मनोवृत्ति वाले लोगों का ऐसा काम होता है। क ने लोगों में और उ मानस के व्यक्तियों में यही तो अंतर है कि बड़े आदमी गिरे हुए को सहारा देते हैं और तुच्छ प्रकृति वाले एक लात और मार

देते हैं। सुदर्शन उच्च प्रकृति वाला महापुरुष था उसने अपने स्वभाव के अनुकूल काम किया।

अर्जुन ने सुदर्शन की ओर दे कर पूछा कि आप कौन हो और कहां जा रहे हो? सुदर्शन ने अपना परिचय देकर वताया कि मैं श्रमण भगवान् महावीर के दर्शन करने जा रहा हूं। अर्जुन ने कहा, सेठ! आपका देव कैसा है और मेरा देव कैसा है। मैने अपने देव के प्रभाव से ११४१ व्यक्तियों का खून किया जिससे सारा नगर मेरा दुश्मन बन गया है। और आपका देव कैसा है कि जिसके प्रभाव से आपने मुझ शत्रु को भी मित्र बना लिया है। मैने रजोगुण की सेवा की इसलिये रजोगुण प्राप्त हुआ और आपने सतोगुण की सेवा की इसलिए सतोगुण प्राप्त हुआ। मै भी अब आपके साथ महावीर भगवान् के दर्शन करने चलूंगा। अब रजोगुण का त्याग करके सतोगुण को अपनाऊंगा। सुदर्शन ने कहा—चलो। मुझे इसमें क्या आपत्ति है। दोनों की इस जोड़ी को देख कर दूर वाले दर्शक आश्चर्य में पड़ गये। सच्चा कारण ज्ञात होने में किसी को देरी न लगी।

अर्जुन ने भगवान् के दर्शन करके दीक्षा अंगीकार कर ली दीक्षा अंगीकार करके अर्जुन माली बेले बेले पारणा करने लगा बेले के पारणे के दिन भिक्षा लेने के लिए वह राजगृह नगर में जाते। वहा लोग पुराना वैर याद करके कोई उनको गालियां देते और कोई थप्पड़ मार देते। कोई उनके पात्र में पत्थर डाल देता और कोई उनको दूसरी तरह से सताते।

किन्तु सतोगुण का अभ्यास करने वाले अर्जुन तनि भी क्रोधित न होते। यह विचार करते कि यहां के लोग कितने भले हैं जो मनुष्य मारने के बदले में मुझे केवल गालियां आदि देकर ही छोड़ देते हैं। मेरा पराध बहुत बड़ा है, उसके प्रमाण में यह सजा बहुत छोटी है।

इ प्रकार की निर्मल भावना से अर्जुन ने पना ात्म कल्याण साधा और अन्त में सिद्धि बुद्ध और मुक्त हो गये।

यदि ाप लोग भी अर्जुन की तरह अपने स्वभाव पर काबू र ेंगे तो आपका और जगत् का दोनों का कल्याण होगा।

२०-८-३६

राजकोट

१७

संवत्सरी और चार भावनायें

श्री सुविधि जिनेश्वर वंदिये रे ।

प्रार्थना—

इस प्रार्थना में भक्त ने श्रीसुविधि नाथ भगवान् के यथावस्थित रूप का वर्णन किया है। भगवान् सुविधि नाथ नौवें तीर्थंकर हैं। आज पर्वाधिराज पर्यूषण का संवत्सरी दिवस है और आज ही इस पर्व का पूर्णाहुति दिन है। प्रतिदिन के प्रार्थना क्रम में आज नौवें तीर्थंकर की प्रार्थना करने का नम्बर है। यह सुन्दर सुयोग बड़े भाग्य से प्राप्त हुआ है संवत्सरी के परम पवित्र दिन नववे तीर्थंकर के गुणगान का योग विरल ही प्राप्त होता है। नौका अङ्क बहुत महत्त्व पूर्ण माना जाता

है। ख्याशास्त्र के जानकारों का कथन है कि यह अङ्क अभंग है। नौ के अङ्क को किसी भी संख्या से गुणा कि जाय गुणन ल से नौ । अङ्क निकलेगा ही।

जैसे नव दूनी अठारह। अठारह के एक और आठ को जोड़ने से नव संख्या होती है। नव तिया सत्ताईस। ा-ईस के दो और सात को जोड़ने से भी नव संख्या होती है। नव ाक छत्तीस। छत्तीस के तीन और छः को जोड़ने से नौ होते हैं। इसी प्रकार आगे भी चाहे जितनी संख्या से गुणा करते जाइये उसके अंकों की जोड़ से नव का अंक निकल आता है। हमें इस नव के अङ्क को भगवान् सुविधि नाथ की प्रार्थना के साथ जोड़ना है। जिस प्रकार नौ का अंक किसी भी ख्या से गुणा किये जाने पर भी अन्त में परिपूर्ण ही रहता है इसी प्रकार किसी भी तरीके से और किसी भी भाषा में भगवान् सुविधि की प्रार्थना की जाय उनके स्व-रूप का रूप अ एड ही रहता है।

भगवान् सुविधि नाथ से हम लोगों का निकटतम सम्बन्ध है। जैन शास्त्र कहते हैं कि ए प्राणियो! घबड़ाओ मत। जरा धीरज से शान्त चित्त होकर इस बात पर ार करो कि तुम्हारा और भगवान् का निकटतम सम्बन्ध कैसे है। तुम और भगवान् एकरूप कैसे हो इस बात पर मनन करो। तुम ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, ायु, नाम, गोत्र और अन्तराय रूप आठ कर्मों से घिरे हुए हो और सुबुद्धि नाथ ने इस आवरण को चीर र दूर फेंक

दिया है। एक दिन बुद्धि नाथ भी तुम्हारी ही तरह कर्मरूप पिंजड़े में बंद थे किन्तु उन्होंने अपने पुरुषार्थ से उसको तोड़ फेंका है। इससे उनकी आत्मा सर्वतंत्र स्वतंत्र होकर मुक्त विचरण कर रही है। तुम्हारी आत्मा भी यदि पुरुषार्थ करे तो इस बंधन से मु हो सकती है। दोनों के स्वरूप में कोई अन्तर नहीं है। शुद्ध संग्रह नय की दृष्टि से दोनों एक हैं। केवल कर्म- ंस्कार का अन्तर है।

शुद्ध संग्रहनय की अपेक्षा से संसार के सब जीवों की आत्मायें परमात्मा के समान हैं। उनमें भी साधु, साध्वी श्रावक और श्राविकाओं की आत्मायें भगवान् से अत्यधिक समान हैं। क्योंकि इनकी आत्माओं पर लगा हुआ कर्मरूप आवरण हल्का पड़ चुका है। अतः प्रिय श्रावको ! यदि आप लोग कायरता त्याग कर वीरता को अपनाओ और पुरुषार्थ करो तो सुबुद्धि नाथ के और अधिक निकट पहुंच जाओगे। आप अपनी पूर्व स्थि पर विचार करो कि किस स्थिति में से किस स्थिति तक पहुंच गये हो। आप अनेक घाटियां और मंजिल ते करके अर्थात् छोटी मोटी अनेक योनियों में जन्म धारण करते करते वड़े भ योग से मानव देह में आये हो। यदि मानवदेह पाकर के भी भगवान् के समीप न पहुंच सके तो फिर कब पहुंचोगे ? उदाहरणार्थ समझिये कि एक मनुष्य वड़ा गहन वन पार करके नगर के द्वार तक पहुंच गया है। जब नगर का द्वार खुला और उसमें प्रवेश करने का अवसर आया तब वह खुजलाता रह गया और द्वार को छोड़कर नगर के गोल कीले की कोट के पास पहुंच गया। अब वह फिर से

नगर की परिक्रमा रता है और न मालूम कब त द्वार तक पहुंचेगा। पहुंचने पर भी संभव है कोई अन्य वि उपस्थित हो जाय और नगर में प्रवेश न र पाये।

इसी प्रकार आप लोगों को मानव शरीर प्राप्त है, साथ ावक धर्म भी। पूर्वजन्म के सुकृत के फल से और इस जन्म के पुरुषार्थ के कारण आप मोक्ष के द्वार तक पहुंचे हुए हैं। अब यदि विषयवासना रूपी खुजली के कारण आप अवसर चूक जायं और मोक्ष के बदले अनेक जन्म जन्मान्तर रूपी गहन जंगल में पहुंच जायं तो ऐसा अवसर पुनः कब प्राप्त होगा यह कौन बता सकता है। हाथ में आये वसर को ो बैठना बुद्धिमत्ता नहीं है। कई लोग सोचते हैं कि हमारा जन्म विषय सु भोगने के लिए हैं। किन्तु ऐसा सोचना महान् भूल है। इस प्रकार की भूल से विषयों में जीवन हार कर किस गति में चले जाओगे और कितना पतन हो जायगा यह विचार करके ही ज्ञानियों ने मनुष्य जन्म को स ल बनाने का उपाय बताया है और ऐसी व्यवस्था की है कि मनुष्य जन्म व्यर्थ न चला जाय।

ज्ञानियों ने कहा है कि विषय कषायों से दूर रहो। यदि इनसे दूर न रह कर इनमें आस हो गये तो मो के द्वार से दूर भटक जाओगे। फिर न मालूम ब ऐसा अव र ायेगा।

आज संवत्सरी है। आज किसके मन में उत्साह और उमंग न होगी! छोटे छोटे बच्चों में भी उपवा करने ।

उत्साह और हौंस दे । जाता है। छोटी बालिकायें भी अपने माता पिता के सामने उपवास करने की हठ करती हैं। वे कहती हैं कि माता ? आज तो मैं अवश्य उपवास करूगी। किन्तु माता प्रेमवश यह कहती है कि बेटी तू भोजन करले तेरे से उपवास न होगा। मगर बेटी नहीं मानती है और उपवास कर दि ाती है।

मैं जब छोटा बच्चा था तभी मेरे माता पिता काल प्राप्त हो गये थे। मैं अपने मामा के यहां रहता था। संवत्सरी के अवसर पर मैं उपवास करने की जिद किया करता था। एक बार का प्रसंग मुझे याद है। संवत्सरी के दिन मैंने अपने मामीजी से कहा कि मैं उपवास करूगा। मामी ने कहा, भैया तुम से उपवास न होगा। भोजन करलो। मैं कब मानने वाला था जब तक कि पेट में चूहे न कूदने लगें। मामी चुप हो गई। जब कुछ दिन चढ़ गया और मुझे भूख लग आई तब फिर मामी ने कहा आओ तुम्हारा उपवास पला देऊं तुम्हारा उपवास हो चुका है। इस प्रकार कह कर मामी ने उपवास पला दिया। जब मैं कुछ बड़ा हो गया और समझ पकड़ ली तब इस प्रकार उपवास पालना छोड़ दिया और सच्चा उपवास करने लग गया।

कहने का मतलब यह है कि इस पवित्र पर्व पर छोटे से लेकर बड़े आदमी तक में बड़ा उत्साह होता है। बिना उत्साह के साहस का काम नहीं हो सकता। उपवास करना बड़े साहस का काम है। कायर लोग इस युद्ध में हार ।

ाते हैं। दान, तप और युद्ध ये तीनों काम वीरता के बिना करना शक्य नहीं हैं। वीर पुरुष ही दान दे सकता है, तपस्या कर सकता है और संग्राम में भाग ले सकता है। जो कायर है वह अपने हाथों से अपने धन का दान देकर सदुपयोग नहीं कर सकता। चोर भले उसकी सम्पि चुरा कर ले जा सकते हैं इसे वह सहन कर लेगा किन्तु अपने हाथों से इच्छा पूर्वक दान नहीं कर सकता। तप भी कायर व्यक्ति नहीं कर सकता। वैसे अन्न न मिलने से या पराधीनता में भूखों मरना पड़े तो जबरन सहन करता है किन्तु सामग्री रहते स्वाधिनता से उपवास करना कायर के काबू के बाहर की बात है। उसकी पोची आत्मा इतनी हिम्मत नहीं दिखा सकती।

विषयों को त्याग कर अपनी आत्मा को वश में रखने वाला वीर ही तप कर सकता है। कई लोग तो इतने बहादुर होते हैं कि पर्यूषण के आठों दिनों में पानी के सिवा कुछ नहीं ाते पीते। कोई कह सकता है कि यह पर्व पर्यूषण पर्व है या पिंड्चूसन पर्व है? जो शरीर के रक्त मांस का शोषण कर लेता है। उपवास से शरीर का मांस और लोही सू जाते हैं और मनुष्य कमजोर हो जाता है। किन्तु यह कथन भूल भरा है। यह बात ठीक है कि उपवासों के आधिक्य से शरीर दुर्बल हो जाता है। मगर पारणे में सावधानी र ने से दुर्बलता चली जाती है और नफे में शरीर का विकार धुल जाता है। ीर में जो कूड़ा कर्कट भरा पड़ा रहता है वह उपवास करने से साफ हो जाता है और शरीर शुद्ध तथा स्वस्थ बन जाता है। ारीरिक विकार नाश करने का उपवास ही अचूक

साधन है। बाद में वजन, प्रमाण से बढ़ जाता है। फिर भी कई लोग कहते हैं कि हमें लम्बे उपवास करना पसन्द नहीं है। तुमको पसन्द नहीं है तो न सही। मगर जो उपवास करते हैं उन्हें तो पसन्द है। तुम्हें दूसरों की निन्दा या टीका टिप्पणी करने का क्या अधिकार है दूसरों की निन्दा करना बुद्धिमत्ता नहीं है। खुद उपवास न करना और करे उसकी निन्दा करना कितनी मूर्खता है। उपवास करने से हानि तो होती ही नहीं है। किसी को असावधानी से यदि हानि हो तो इसमें उपवास का क्या दोष है? दोष असावधानी का है। जो काम अधिक लाभ का है वह किया जाना चाहिए। शरीर के क्षीण होने पर भी उपवास से अंत में जय प्राप्त होती है। जिसका अंत भला उसका आरंभ भी भला है। आत्मा को विजय दिलानेवाला यह व्रत आदरणीय है, यह निःसंशय है। कौरवों के पास सेना अधिक थी और पाण्डवों के पास कम। कौरवों की अधिक सेना क्या काम आई जो पराजय का कारण बनी। पाण्डवों की अल्प सेना अच्छी रही जिसने विजय प्राप्त करवाई। स्थूल शरीर क्या काम का जो विषय विकारों को बढ़ाता हो। इससे तो वह दुर्बल शरीर ही कहीं अच्छा है जो विषयों को घटाकर आत्मा को मजबूत बनाता है।

शास्त्र की बात पर विश्वास रखना चाहिये। शास्त्र में तप का बड़ा महत्त्व बताया गया है। तपस्या से किसी प्रकार की हानी नहीं होती बल्कि बड़ा लाभ होता है, यह शास्त्र में कहा गया है। किसी सज्जन के मन में यह शंका उत्पन्न होना स्वाभाविक है कि क्या शास्त्र की बात आंख मींच कर मान

ली जाय या उ ो नुभव की कसौटी पर कर री उतरने पर मानी जाय। ठीक बात है। मैं भी यह नहीं हता कि पने बुद्धि के द्वार को बंद करके अंध श्रद्धा से किसी बात को माना जाय जो कि बुद्धि से तोली जा स ती है। हां, जो बात बुद्धि का विषय न हो सके उस पर बुद्धि न लड़ाना ही ठीक है। किन्तु जो बुद्धिगम्य वस्तु है उसमें अपने तर्क को लगाना उचित ही है। किन्तु किसी बात ो स्वी ार रने में बुद्धि भी मंजूरी देती हो और । भी समर्थन रते हो तब तो और भी अच्छा है।

मैं साधारण ास्त्र की बात नहीं कह रहा हूं वीतराग पुरुषों के द्वारा प्रणीत शा की बात कह रहा हूं। राग द्वेष से रहित पुरुषों ने संसार की हित कामना से प्रेरित होकर जिन शास्त्रों में अपने जीवन का अनुभव और वस्तु ा वा - विक स्वरूप वर्णित किया है उनकी प्रामाणिकता स्वीकार करने की बात पर मैं भार देना चाहता हूं। ंकर भाष्य में आई हुई वेद की एक श्रुति में कहा गया है कि केवल शब्द को ही न देखो किन्तु उस शब्द के कहने वाले की तरफ भी दे ो। आगम प्रमाण को स्वीकार करते वक्त ागम के निर्माता का भी याल करो।

जैनागमों के निर्माता गवान् महावीर के तरफ दे ो वे वीतराग थे। उनके आगमों में भी यदि रागद्वेष हो तब तो उनकी वीतरागता में ंदेह पैदा हो सकता है। किन्तु भगवान् रागद्वेष से रहित थे अतः उनका फरमाया हुआ ागम वैथा

प्रामाणिक है। यह बात दूसरी है कि कोई बात हमारी समझ में आती है और कोई नहीं भी आती। जो समझ में न आये उसके लिए न । पूर्वक यही कहना चाहिए कि हे भगवन्! आपका कथन सर्वथा सत्य है, मान्य है, किन्तु मेरी समझ अभी उतना विकास नहीं कर पायी है कि हर बात को गले उतार सके। शास्त्र बहुत प्राचीन है। करीब ढाई हजार वर्ष पूर्व के रचे हुए है। कौनसी बात किस उद्देश्य को सामने रखकर कही गई है यह बात हमारे छोटे दिमाग में न बैठे तो भी इस श्रद्धा से मानना चाहिये कि जब मेरे ज्ञानावरणीय कर्म का क्षय हो जायगा तब समज में आ जायगी। तप का अभ्यास करने से भी तप की उपयोगिता ज्ञात हो सकती है।

संवत्सरी कब से मनाई जाती है इस का कोई इतिहास उपलब्ध नहीं है। हां, समवायांग सूत्र में यह जिक्र आया है कि भगवान् महावीर ने आषाढ़ी पूर्णिमा का प्रतिक्रमण करके एक मास और बीस दिन बाद पर्यूषण मनाया। शास्त्र के इस वक्तव्य को ध्रुव मान कर तब से अब तक इस दिन को बहुत महत्त्व दिया गया है और इसी दिन ढ़ाई हजार वर्षों से प्रतिवर्ष संवत्सरी पर्व मनाया जाता है। दिगम्बर जैन दश लाक्षणी पर्व के प्रथम दिन को महत्त्व पूर्ण मानते हैं और श्वेताम्बर जैन पर्यूषण के अन्तिम दिन को किन्तु वह दिन प्रायः आषाढ़ी पूर्णिमा से पचासवां दिन ही होता है। दुर्भाग्य से जैन संघ में अनेक भेद प्रभेद हो गये हैं किन्तु भगवान् महावीर को सभी जैन एक दृष्टि से देखते हैं और उनकी भक्ति करते हैं। जैसे कि पाठशाला में जगह की कमी

से एक ही कक्षा के अनेक सेक्शन (विभाग) होते हैं किन्तु मूल उद्देश्य और अभ्यासक्रम ए ही प्र ार ा होता है। वैसे ही भगवान् महावीर के झंडे के नीचे ारे जैनी एक हैं। यदि सम्प्रदाय भेद मिट जाय तब तो अच्छा है किन्तु यदि ऐसा न हो सके तब भी जैन के नाते-महावीर के अनुयायी होने के नाते सब एक हैं। इस दृष्टि से ंवत्सरी पर्व सभी जैनों को मान्य है।

आज के दिन हर ाधु साध्वी और ाव ाविका के मन में यह भावना होनी चाहिये कि ंसार के प्रत्येक प्राणी के साथ मेरा मैत्री भाव है। सब जीव मेरे मित्र हैं। जैन शब्द का अर्थ है रागद्वेष को जीतने वाले का अनुयायी। जो वीतराग का नुयायी है उसकी किसी के प्रति बुरी भावना न होनी ाहिये। सब के प्रति मैत्री भावना र कर सब को इस भावना में लाने ा यत्न करना ाहिये। जैन धर्म व्यापक और उदार है। इस धर्म में इस प्रकार की संकीर्णता नहीं है कि यह अमुक के पालन करने योग्य है और अमुक के लिए नहीं। भंगी, भंगी का धन्धा करता हुआ और ब्राह्मण पूजा पाठ करता हुआ जैन धर्म का पालन कर क है। हां, इस धर्म का पालन करने के लिए जिन कार्यों का त्याग करना आवश्यक है उन्हें अवश्य छोड़ना पड़ता है। जैसे सप्त कुव्यसन छोड़ना, पन्द्रह कर्मादानों में बताये धन्धे ागना आदि। शराब या मांस की दूकान न की जाय तो इस में किसी की हानी नहीं है ये उपकारी धन्धे नहीं हैं बल्कि अपकारी धन्धे हैं। जनता को गुमराह रने वाले धन्धे हैं। जैन धर्म

अपकारी ातों को निकाल कर उपकारी खाते रखना है। और इस कारण राजा से लेकर रंक तक इसका पालन निर्बाध कर सकते हैं। बड़े से बड़ा राजा अपने राज्य का संचालन करता हुआ जैन धर्म का पालन कर सकता है। भगवान् महावीर के जमाने में गणराज्य की प्रथा थी। गणराज्य का यह नियम था कि जो उसमें सम्मिलित होता उसका कर्त्तव्य होता था कि निर्बल की सहायता करना और उसको अन्याय से बचाना।

उस गणराज्य के मुखिया चेटक महाराजा थे। जब उनका दोहित्र वहिल कुमार उनकी शरण में सहायता की अपेक्षा से आया तब चेटक महाराज ने यह उत्तर दिया था कि मैं तुम्हें अपना दोहित्र समझ कर सहायता नहीं करना चाहता। किन्तु अपना धर्म--कर्त्तव्य समझ कर सहायता करना चाहता हूं। किसी सबल द्वारा निर्बल के सताये जाने पर निर्बल की रक्षा करना मैं अपना धर्म समझता हूं। यदि कोणिक दूसरे दस भाइयों की तरह तुमको भी अपने हिस्से का राज्य देता हो अथवा तुम अपनी इच्छा से उसके बदले केवल हार और हाथी से ही राजी हो जब तो ठीक है। किन्तु यदि कोणिक न तो राज्य देता है और न हार हाथी रहने देता है तब तो उसका बड़ा अत्याचार है। अत्याचार सहन करना, जैन धर्म का सिद्धान्त नहीं है। जैन धर्म वीरता सिखाता है कायरता नहीं।

चेटक ने गणराज्य संघ के अठारह सदस्य राजाओं की सभा बुलाकर उनसे सलाह की कि क्या करना चाहिये।

कोणिक अपने भाई बहि कुमार को उसका उचित राज्य ा हिस्सा नहीं देता है और ऊपर से उसके पास रहे हुए हार और हाथी को भी छीनना ाहता है। वहिलकुमार हमारी शरण में आया है। न्याय की भिक्षा लेने के लिए आया है। ाप लोगों की क्या सम्मत्ति है? ाप कहें तो इसे कोणिक के हवाले र दिया जाय और यदि उसके हवाले नहीं करते हैं तो उसके साथ युद्ध करने के लिए तैयार होना पड़ेगा।

सब राजाओं ने मिलकर यह तय किया कि वहिलकुमार का प न्यायोचित है और कोणिक का पक्ष अन्यायपूर्ण है। न्याय को छोड़कर अन्याय का प लेना अनुचित है। न्याय ोने के बदले अपना नाम मिटा देना बेहतर है। इसलिए बहिलकुमार की रक्षा करनी ाहिये और उ का उचित हिस्सा दिलाना ाहिये।

मित्रो! मैं आप से पूछता हूं कि राजाओं का यह विचार ास्तिकता पूर्ण है या नास्तिकता पूर्ण? आज आध्यात्मिकता का नाम लेने में ही आस्तिकता मानी जाती है। किन्तु जो सच्ची आध्यात्मिकता को समझता है वह विशेष क्रिया का आह्वाहन करता है। क्रिया से दूर नहीं भागता। जो क्रिया से दूर भागता है वह जैन धर्मी नहीं है। स्वार्थत्याग कर निराश्रित की सेवा करना और इस प्रकार धर्माराधन रना जैन धर्म का मुख्य सिद्धांत है।

कोणिक के अत्याचार के विरुद्ध अठारह राजाओं ने मिलकर सामना किया। उस युद्ध में एक करोड़ और स्सी

ला मनुष्य काम आये। जैन शास्त्र के अनुसार इस हिंसा-काण्ड का पाप किसकी तरफ जाता है? इस पाप का जवाबदार कोणिक है या चेटक? कोणिक का लोभ और क्रोध इस हिंसा का कारण बना। हार और हाथी के लोभ ने कोणिक को युद्ध में प्रेरित किया। इसलिए शास्त्रानुसार इस हिंसा का जवाबदार कोणिक रहा। चेटक और अन्य राजाओं को अत्याचार हटाने के लिये लड़ना पड़ा। उनकी लड़ने की कोई ख्वाहिश न थी। ऊपर आई हुई बात को निपटाना पड़ा। शास्त्र में कहा है कि कोणिक छठी नरक में गया और अपने कर्त्तव्य का पालन और न्याय की रक्षा करने के कारण चेटक बारहवें स्वर्ग में गया।

कहने का सारांश यह है कि जैन धर्म में संकुचितता को स्थान नहीं है। इस लिए जाति पांति का भेदभाव किये बिना हर इन्सान जैन धर्म का पालन कर सकता है। आज सब के साथ मित्रता का नाता जोड़ कर सारे विश्व को इस पवित्र धर्म में लगाने का प्रय करना चाहिये।

अब हम इस बात को देखे कि किस किस महापुरुष ने इस पर्यूषण पर्व की आराधना की है। भगवान् महावीर की तरह उनके पट्टधर श्री सुधर्मा स्वा और उनके भी पट्टधर श्री जम्बू स्वामी ने इसी दिन इस पर्व की आराधना की है। उनके बाद के आचार्य भी इसी दिन इसी प्रकार आराधना करते आये हैं।

हमारी सम्प्रदाय के नाय , आ ार वि ार ा पूरी तरह पालन करने वाले, साधु जीवन ा उद्धार करने वाले धुरंधर आचार्य पूज्य ी हुक्मी द जी महाराज ने भी इस पर्व इस तरह ाराधना की थी। पूज्य श्री ने इक्कीस वर्ष त बेले बेले पारणा किया। वे सारे वर्ष भर एक ही पछेवड़ी से ाम चलाते थे, चाहे वर्षा हो या शीत। वे तली हुई वस्तु न ाते थे। केवल तेरह वस्तुओं के उपरान्त अन्य ब वस्तुओं के ाने का उनको त्याग था। मिष्टान्न ाने का भी उनको त्याग था। ऐसे उत्कृष्ट चारवान् वे महापुरुष थे। वे पर निन्दा करना न जानते थे। मुझे उन महापुरुष के साक्षात् दर्शन करने का सद् भाग्य प्राप्त नहीं हुआ। मैंने उनके सम्बन्ध में पूज्य श्री चोथमलजी महाराज से सुना है और उन्होंने भी अपने पूर्ववर्ती संतो से सुना था। वे कहते थे कि एक बार पूज्य श्री हुक् चन्दजी महाराज जावद में विराजमान थे। वे शौचनिवृत्ति के लिए बाहर जंगल गये हुए थे। पीछे से ए साधु उनका द न करने आया। पूज्य श्री को वहां न पाकर वह वापस लौट गया। पूज्य श्री के - ाने पर उन के किसी शिष्यने कहा कि महाराज! वह गेल्या (र्ध विक्षिप्त) साधु आपके दर्शनार्थ आया था।

यह सुनकर पूज्य श्री ने कहा कि ऐसा नहीं कहना ाहिये। कौन जानता है कि पहले उसकी मुक्ति होगी या मेरी। किसी व्यक्ति की वर्तमान में हीन अवस्था देखकर उसका भी अपमान नहीं करना चाहिये। किसी को हल्का ब ा या ह अनु त है। माना कि इस वक्त वह गेल्या है,

समझ कुछ कम है। किन्तु कौन कह सकता है कि भविष्य में पुरुपार्थ करके वह हमारे से पहले ही मुक्त हो जाय। किसी के भविष्य का किसी को क्या पता। ज्ञानीजन किसी व्यक्ति का अपमान करना अनुचित मानते हैं, पूज्य श्री ने अपने शिष्य से कहा कि तुमने उसे गेल्या कहा इस का प्रायश्चित लो और अपनी आत्माको शुद्ध करो। कितनी विशालता थी उनमें।

पूज्य श्री पहले कहीं का चातुर्मास नहीं स्वीकार करते थे जहां उनकी इच्छा होती वहां जाकर चातुर्मास के लिए निवास कर देते थे एक वार पूज्य श्री चातुर्मास करने की इच्छा से जोधपुर पधारे। संघकी विनती के बिना स्वेच्छा से पूज्य श्री पधारे थे। जोधपुर में विराजमान इतर संप्रदाय के साधु कहने लगे कि जहां ऐसे घोर तपस्वी और शुद्ध चारित्र सम्पन्न साधु महात्मा का चातुर्मास होने वाला हो वहां हमारी क्या पूछ होगी। अतः हमें कहीं अन्यत्र जाकर चातुर्मास करना चाहिये। पूज्य श्री को इस वात का पता लग गया कि मेरे कारण अन्य संतों को कष्ट होता है, तुरन्त वहां से विहार कर दिया और फलोदी जाकर चातुर्मास किया। यह वात रामनाथजी मुथा से मालूम हुई है।

ऐसे महान् आत्मा का हमारा यह संप्रदाय है। वे तो निःस्पृह थे। उनके मन में चेले या सम्प्रदाय वढ़ाने की तनिक भी इच्छा न थी। उसके पास जो चेले आये उनको उन्होंने अपने गुरु आचार्य श्री की नेश्राय में ही दीक्षित किये। अपना कोई चेला नहीं वनाया। फिर भी सच्चे त्यागी महात्मा की

कीर्ति को कौन रो सकता है। उनके नाम से ंप्रदाय चली और चल रही है। मुझे इस संप्रदाय ा ाधु ह ाने में बड़ा गौरव है।

पूज्य श्री हुक्मीचन्दजी महाराज के बाद पूज्य ी शिवलालजी महाराज हुए। उन्होंने इस म्प्रदाय की बड़ी उन्नति की। मारवाड़ी लोग सारे भरतवर्ष में ैले हुए हैं तः उनके द्वारा सारे भारत में उ दोनों आचार्य प्रसिद्ध हो गये।

पूज्य श्री शिवलालजी महाराज के पश्चात् पूज्य श्री उदयसागरजी महाराज हुए। वे जोधपुर के बीसा ओ थे। उन्होंने दीक्षा दूसरी ंप्रदाय में अंगीकार की थी किन्तु पूज्य श्री हुक् चन्दजी महाराज की कठोर साधना से आ- र्षित होकर इधर चले आये थे। उन्होंने भी इ ंवत्सरी पर्व को पूर्वाचार्यों परिपाटी के अनुसार या था। मैं भगवान् महावीर से लेकर आजतक की आचार्य परम्परा की पाटावली नहीं सुना रहा हूं क्योंकि इसके लिए विशेष समय अपेक्षित है। दोपहर को समय मिला तो अन्य ंत पाटावली सुनायेंगे।

चतुर्थ पाट पर पूज्य श्री चौथमल महारा हुए। मैंने उदयसागरजी महाराज और चौथमलजी महाराज की सेवा की है। पूज्य श्री चौथमलजी महाराज की मुझ पर विशेष कृपा रही है। वे अनेक शा के ज्ञाता थे। उन्हें थोकड़े भी बहुत याद थे। आठ पहर में से छ पहर ागृत रहते थे

ज्यादा न सोते थे। केवल दो पहर नीद लेते थे। स्वाध्याय भी खूब करते थे। वे ऊनोदरी (अल्पाहार) करते थे जिसके न्ह उनके पेट पर थे।

पञ्चम पाट पर पूज्य श्री श्रीलालजी महाराज हुए। उनके गुणों का वर्णन मैं क्या करूं! मेरे द्वारा उनके गुणगान करना छोटे मुख वड़ी वात होगी आप लोगों में अनेक व्यक्ति ऐसे होंगे जिन्होंने उनकी प्रत्यक्ष सेवा की है उनकी व्याख्यान धारा इस राजकोट शहर में भी वहुत प्रवाहित हुई है। यहां के संघ के उद्यान को पूज्य श्री श्रीलाल जी महाराज ने वहुत सींचा है। मैं भी उनके साथ यहां चातुर्मास करना चाहता था किन्तु बहुत इच्छा होने पर भी न कर सका। आप लोग वड़े भाग्यशाली हैं जिन्होंने यहां भी उनकी सेवा की और अन्यत्र जाकर भी। आपने उनकी सेवाएं की हैं, यह उत्तम है, मगर वे जो वस्तु प्रदान कर गये उसे सुरक्षित र ना आपका कर्त्तव्य है। मैं भी उनकी देन को सुरक्षित रक्खुं यह मेरा परम कर्त्तव्य है। यह न समझिये कि पूज्य श्री मौजूद नहीं हैं। वे आज भी-अनेकों के हृदय में विद्यमान हैं। उनके उपदेश ने वहुतों के धर्म की रक्षा की है।

पूज्य श्री श्रीलालजी महाराज के बाद मेरा नम्बर आता है। मेरे अव णों का मैं क्या वर्णन करूं। मुझमें बहुत अवगुण व त्रुटियां हैं। न मालूम मुझमें क्या बात दे कर पूज्यश्री ने यह बोझा मेरे सिर पर र दिया है। मैं पूज्य महाराज की आज्ञा लेकर दक्षिण देश में चला गया था और वहां शिष्यों

ा अध्ययन जारी किया गया। उस मय मैं ान के हिवरे में था और पूज्य श्री उदयपुर में। उदयपुर से ान के हिवरे में पत्र आया जिसमें लि ा था कि जवाहरलालजी महारा ो युवा ार्य बनाया जाता है। अर्थात् पूज्य श्रीलालजी महाराज के बाद मुझे आ ार्य नियुक्त किया जाता है।

मैं इस भार को अपने पर ाता दे बहुत झाया। उस वक्त मुझे नि श्री मोतीलालजी महाराज आर राधेला महाराज ने बहुत समझाया और आश सन भी दिया किन्तु मेरा साहस यह भार उठाने के लिए तैयार न हुआ। फिर सतारा के सेठ बाल कुन्दजी और चन्दनमलजी ाये। उन्होंने कहा कि यह बोझ स्वी र र लो। मैंने हा कि मेरी ऐसी ि नहीं है कि यह भार मैं झे सकूँ। बड़े हा-पोह के बाद मैंने इतना स्वीकार किया कि मैं रूबरू पूज्य ी की सेवा में उपस्थित होकर उनके मक्ष अपनी कठिनाई र ूंगा और तब वे जो कहेंगे मंजूर करूंगा। मुझे दक्षिण से लौटने में देरी हो गई तो नासर के सेठ बहादुरमलजी बांठिया और रतलाम के सेठ वर्धमानजी पितलिया आये और मुझे कहने लगे कि देर क्यों कर रहे हो। जल्दी पधारो।

मैं रतलाम आया। वहां मैंने पूज्य श्री से अर्ज ि मुझसे यह गुरुतर भार न उठाया जायगा। इस पर पूज्यश्री ने रमाया कि इस बात की चिन्ता करने ावश्य ा नहीं है। मैंने सब इन्तजाम कर दिया है। तू मेरा हना मान और मैं कहूं वह कर। इस प्रकार पूज्यश्री श्रील जी म रा ने प्रदाय की जिम्मेवरी का काम मु पर दिया।

मैंने दक्षिण, मालवा, मेवाड़ और मारवाड़ में बहुत मय वीताया है। दिल्ली की ओर भी मैं विचरा हूं। काठियावाड़ बाकी रह गया था सो यहां के लोगों के आकर्षण से इधर भी आना पड़ा। आप लोगों के अति आग्रह के उपरान्त भी बीकानेर की तरफ जाने का विचार अधिक था। किन्तु ंत सूरजमलजी और सिरेमलजी ने मुझे इधर आने के लिए बहुत उत्साहित किया। उन्होंने कहा कि जीवन का क्या भरोसा हैं। श्रावकों की आशा पूर्ण करनी चाहिये। इसके उपरान्त दुर्लभजी भाई ने भी वार वार कई पत्र मेरे पास भेजे जिनमें लि । था कि एक लाख श्रावकों की इज्जत बचानी है तो व काम और सब दे छोड़ कर इधर पधारो। इन सब कारणों से मै इधर आया हूं। यहां के संघ के सेक्रेटरी ने विनती के वक्त यह वात कही थी कि विहार में यहां के आदमी आपके साथ रहेंगे जिससे मार्ग में कठिनाई न रहेगी। इस पर मैंने कह दिया था कि ऐसा करने की आवश्यकता नहीं है, दूसरों के सहारे रहना ठीक नहीं है। हम अपने रुषार्थ के बल पर ही विचरेंगे। मुझे रोटी नहीं चलती हैं। रोटी ाने का त्याग नहीं है। किन्तु रोटी हजम नहीं होती है। कभी कभी अन्य साधन के अभाव में थोड़ी रोटी भी । लेता हूं। इसलिए मेरे शरीर का निभाव होना कठिन कार्य था। फिर भी संतों की परिचर्या और सावधानी से मैं यहां तक आ पहुंचा हूं। मुनि वक्तावरमलजी की सेवा विशेष उल्लेखनीय है। मुनि चांदमलजी भी पालन र से साथ हैं। इनसे भी मुझे बहुत सहायता प्राप्त हुई है।

मोतीलालजी संत बहुत ागी हैं। इन्होंने छती संपी को त्याग कर दीक्षा ग्रहण की है। ये मलकापुर कॉन्फरंस के स्वागताध्यक्ष रहे हैं। इनके ाई दूकान चला रहे हैं। इनको मोक्ष जाने की बड़ी उत्कण्ठा है। इनके रोम रोम में वैराग्य भरा है।

फूलचन्दजी संत को आप दे ही रहे हैं। किस शांति के साथ ये तपस्या कर रहे हैं। आज इनको पंद्रह दिनों की तपस्या है।

श्रीमलजी, चुन्नीलालजी और गोकुलचन्दजी साधू गूगलिया परिवार के हैं और कुड़गांव (दक्षिण) के निवासी हैं। इन लोगों ने बड़े वैराग्य से दीक्षा स्वीकार की है सूरजमलजी संत भी इन्हीं के सम्बन्धी हैं जो बहुत तपस्वी और सेवाभावी हैं।

ये सब सन्त मेरी सहायता करने वाले हैं। सन्त सहायता करते हैं किन्तु सतियों का मामला बड़ा कठिन होता है। मुझे बड़ी प्रसन्नता है कि यहां की सतियों के सम्बन्ध में सिवा ज्ञान ध्यान के और कोई बात सुनने में नहीं आई। मैं इनसे यही कहता हूं कि हर समय इसी प्रकार ज्ञान ध्यान में मस्त रहें और आदर्श व्यवहार करके शांति र ।

अब श्रावकों की बात है। यहां के ावक मुझे हर प्रकार से शांति प्रदान करने में तत्पर रहते हैं। बाल वृद्ध और युवा सब मुझे प्रसन्न र ने की चेष्टा में रहते हैं। किसी ने

झे किसी काम के लिए आग्रह नहीं किया। मैं कहता रहा कि यहां का कोई खास रीति रिवाज या तरीका हो तो मुझे बताते रहना। तथा मैं यह भी पूछता रहा हूं कि मेरी कोई बात ठीक न लगे तो मुझे बताते रहना। किन्तु यहां के संघ के लोगों ने अपनी ही कमी बताई है। मेरी तथा मेरे शिष्यों की कोई कमी नहीं निकाली। यह संघ की गुणग्राहकता का परिचायक गुण है।

मणिभाई वनमाली शाह यहां के सुव्यवस्थित संघ के सेक्रेटरी हैं। इनको भारत सरकार की तरफ से राव साहब की उपाधि भी मिली हुई है तथा पेंशन याफ्ता भी हैं। फिर भी ये तहदिल से संघ की सेवा करते हैं। सेवा के बदले कुछ वेतन नहीं लेते हैं। सेवा की भावना होने पर भी छद्मस्थता के कारण इनसे किसी प्रकार की सेवाकार्य में त्रुटि हो सकती है। आप लोग इनकी त्रुटि पर ध्यान न देकर इनकी नियत की तरफ खयाल कीजियेगा।

राजकोट संघ का बंधारण दे कर मुझे कहना पड़ता है कि यदि ऐसा बंधारण मालवा मेवाड़ और मारवाड़ में भी होता तो समाज कितना सुसंगठित और व्यवस्थित होता। सम्प्रदाय भेद होने पर भी संघ के बंधारण में बंधे रहना और उसके नियमों का भंग न करना साधारण बात नहीं है। यहां के व्यक्तियों की सुसंकारिता का यह ज्वलन्त प्रमाण है।

काठियावाड़ (सौराष्ट्र) देश की पूज्य श्री श्रीलाल जी महाराज भी प्रशंसा करते थे। वे युवा थे और उनकी मगज

शक्ति भी वड़ी तीव्र थी। मैं तो वृद्ध हो गया हूं और पैं न के योग्य हूं। फिर भी मुझे वोलना पड़ता है। उपदेश रने । ाम वड़ा ठिन है। कितनी भी सावधानी रखी जाय तव भी सव प्रकार के श्रोताओं को प्रसन्न र ना और उनकी रुचि के नुसार वातें सुनाना वड़ा विकट ाम है। किसी भाई को मेरे न चाहते हुए भी अनजान में मेरे शब्दों से दुः हो सकता है। मेरी इच्छा नहीं रहती कि मेरे कारण किसी दिल दुः । किन्तु फिर भी किसी को दुः हो सकता है। मैं अन्तः रण से उन भाइयों को तथा सबको माता हूं।

यहां की वहिनें वड़ी विवेक शीला मालूम देती हैं। मालवा, मेवाड़ और मारवाड़ की अपेक्षा यहां की बहिनें अधिक कार्यदक्ष और सावधानी पूर्वक काम करने वाली हैं। अहिंसा धर्म का पालन वहीं होता है जहां सफाई होती है। कूड़ा करकट इकट्ठा कर र । ाक दाल आटा आदि सड़ाना जैन धर्म के सिद्धांत से प्रतिकूल है। ऐसा करने से जैन धर्म का पालन नहीं होता। अहिंसा धर्म सफाई और पवित्र से पलता है। यहां की वहिनें प त्रता और सफाई पर अधिक ध्यान देती हैं अतः इस विपय में उनको कुछ कहने वश्यक नहीं लूम देती। किन्तु फैशन के सम्बन्ध में मुझे बहनों से कुछ कह है।

वहनों को वि र हो स । कि महाराज तो हमारी टीका टिप्पणी करते हैं। किन्तु मैं वहनों की टीका से र

सकता हूं। बहनों का हम पर बड़ा उपकार है। यदि बहनों की सहायता न हो तो हम साधु लोगों का तीन दिन के लिए टिकना भी दुष्कर हो जाय। फिर भी जिन को मैं मा बहिन और पुत्री के समान मानता हूं उनको फैशन में जकड़ी हुई देखकर कुछ कहने से अपने आपको रोक नहीं सकता। मेरी मां बहिनों की फैशन के कारण इज्जत नष्ट होती हो, भला उस वक्त मैं चुप कैसे रह सकता हूं। माताओं और बहिनों ? आप इस फैशन रूपी पिशाच्चिनी के चक्र से सदा दूर रहियेगा। ये बारीक वस्त्र और दूसरा साज आपकी चिरकाल से सुरक्षित कीर्ति में बटा न लगा पाये इस बात की सावधानी रखियेगा। आपको कई बार इस विषय में कुछ कहना पड़ा है। इसके लिए मैं आज इस पर्व पर क्षमा मांगता हूं।

चारों तीर्थों की हकीकत मैंने अपनी जवाबदारी की दृष्टि से रखी है। अब हमारी सम्प्रदाय की परंपरा के संबंध में जो कुछ कहना बाकी रह गया है, वह कहता हूं।

अजमेर साधु सम्मेलन के समय वहां पर एकत्रित सन्तों ने मुझ से व संघ से पूछे बिना महात्मा गणेशीलालजी को मेरा युवाचार्य नियुक्त कर दिया था। तदनुसार जावद (मालवा) में उनको जगजाहिर रीति से युवाचार्य पदवी प्रदान करने पर भी सम्प्रदाय का भार मैं अपने पर रखूं या उनको सौंप दूं यह मेरी इच्छा व अधिकार की बात है। फिर मैंने गतवर्ष यह जाहिर कर दिया है कि संघ व सम्प्रदाय का ज्यादा काम युवाचार्य गणेशीलालजी ही करेंगे।

मेरी सलाह की जरूरत होगी तो मैं देता रहूंगा। युवा र्य गणेशीलालजी वहुत ही योग्य, विनीत और सज्जन हैं। मेरे मुख से उनकी तारीफ नहीं की जा सकती। जमेर में करीब चालीस पचास हजार लोग इकट्ठा हुए थे। भी ने उनको युवाचार्य वनाये जाने में प्रसन्नता प्रकट की थी। इ मय उनका चातुर्मास उदयपुर (मेवाड़) में है।

अब मैं संक्षेप में यह बताना चाहता हूं कि इस पर्यूषण पर्व में क्या करना चाहिये। आज के पवित्र दिन में कि प्रकार की उज्जवल भावना करनी चाहिये, यह बताता हूं। समस्त धर्म कार्यों का मूल भावना में निहित है। मैं ऐसी भावना वताता हूं जिसका मनन करने से आत्मा का परमहित साधन हो सकता है। स्त्री पुरुष, राजा प्रजा, धनवान् और गरीव सब इस भावना का अभ्यास कर सकते हैं। गाय का दूध आवाल वृद्ध सबके लिए उपयोगी होता है। वह किसी के लिए हानिकर्त्ता नहीं होता। अमरिकन लोगों कहना है कि ताजा वढ़िया और निर्दोष खुराक यदि कोई है तो गाय का दूध है।

जिस प्रकार गाय के चार पैर होते हैं और पैरों के बीच उवाड़ा होता है, उस उवाड़े में चार स्तन होते हैं, जिन से दूध निकाला जाता है। उसी प्रकार ज्ञानियों ने धर्म चार भावनायें वताई हैं। जैसे गाय के रों स्तनों के दूध में किसी प्रकार का अन्तर नहीं होता। चारों स्तनों से निकाला हुआ दूध मान रूप से उपयोगी होता है। वैसे ही रों

भ नायें समानरूप से उपयोगी और लाभ दायक हैं। ये चारों भावनायें काम धेनु के स्तनों की तरह अमृत दायिनी हैं। वे भा यें ये हैं:—

सत्वेषु मैत्री, गुणिषु प्रमोद
क्लिष्टेषु जीवेषु कृपा परत्वम्।
माध्यस्थभावं विपरीत वृत्तौ
सदा ममात्मा विदधातु देव! ॥

अर्थ—सब प्राणियों में मित्रता की भावना हो, गुणि जनों पर (प्रमोद) प्रसन्नता की भावना हो, दुःखी जीवों पर दया र ने की भावना हो और हमारे प्रतिकूल चलने वालों पर मध्यस्थता र ने की भावना हो। हे जिनेन्द्र देव! ऊपर लिखे अनुसार सदा मेरी भावना बनी रहे, यह याचना है।

ये चारों भ नायें—मैत्री भावना, प्रमोद भावना, कारुण्य भ ना और माध्यस्थ भावना-पर्यूषण पर्व तथा जीवन को सार्थक करने वाली भावनायें हैं लड्डू ाने या चायपार्टी उड़ाने के लिए आप कई मित्र बनाते होंगे किन्तु पर्यूषण पर्व में जगत् के समस्त प्राणियों के साथ मित्रता की भावना साधना है। यह शंका की जा सकती है कि संसार के सब जीवों को मित्र कैसे बनाया जा सकता है। मित्र बनाना कोई सरल काम नहीं है। जिसको मित्र बनाया जाता है उसका सु दुः अपना दुः मानना पड़ता है।

जीवन निर्वाह के लिये ई प्राणियों को ष्ट देना पड़ता है। यदि सवसे मैत्री रके वैठ जायं तो मु की मक्खि यां उड़ाना भी ठिन हो जाय।

शंका ठीक है। शंका होना स्वाभाविक है। शं । किये विना तत्व सम में नहीं आ सकता। शंका रने से विरोधी रु भी समझ में । सकता है। मैत्रीभाव र ने । अर्थ समझना चाहिये। नदी में अमाप पानी होता है। सब सव पानी पिया नहीं जा सक । किन्तु सारे नी में प्या मिटाने की क्षमता है। जिसको जितनी प्या हो वह ना पानी पिये। इसी प्रकार ।नियों ने सर्वजीवों के साथ मित्रता र ने की वात कही है, वह सामान्य नियम ।या है। जिस जितने जीवों के साथ मैत्री निभ के वह उतनों के । मैत्री भाव र ` । लक्ष्य सर्वजीवों के साथ मित्रता का होना ।हिये। शक्ति, सामर्थ्य और परिस्थिति के ।र क्ष्य तक पहुंचने का प्रयत्न करते रहना चाहिये। यदि दृढ़तम ।वना और प्रय जारी रहा तो एक दिन पूर्ण लक्ष्य त भी पहुंचा जा सक है।

स्वयं भगवान् भी किसी नरकगा ` जीव को उसके दुः खों से छुटकारा नहीं दिला सकते और न एकेंद्रीय जीव को वे इन्द्रिय बना सकते, जब तक कि उनके किये में स्वयं भुगत न लिये जायं। किन्तु उनकी भावना तो यही रहती है कि सर्व जीव सुखी हों।

सर्वे भद्राणि पशन्तु सर्वे सन्तु निरामयाः।

सर्व जीव कल्याणकारी काम करें और निरोग रहें। यह भा । पवित्रता की ओर ले जाती है। भगवान् की भावना पवित्र होती है इसलिए वे त्रिलोकीनाथ कहलाते हैं। आप लोग भी भावना शुद्ध रखो। किसी का अनिष्ट चिंतवन मत करो। आपके अनिष्ट चिंतन करने से सामने वाले का अनिष्ट हो भी सकता है और नहीं भी। इसमें संदेह को पूरा स्थान है। किन्तु अनिष्ट चिंतन से आपका अनिष्ट अवश्य होता है। यह निःसन्देह बात है। किसी की भलाई का विचार करने से क्या कुछ गांठ का र्च करना पड़ता है? यदि नहीं तो फिर इसी क्षण से परहित वांछा करना आरंभ कर दीजिये। आपका जीवन सफल हो जायगा। केवल हृदय की विशालता अपेक्षित है। यदि आपका दिल संकुचित है तो आप बहुत छोटे और गंदे दायरे तक सोचते हैं। और यदि आपका हृदय विशाल है तो उसमें अपनी तरह संसार के सब जीव स्थान पाते हैं और अपने हितचिंतन के समान उनका हितचिंतन भी अनिवार्य हो जाता है।

सव्व भूयप्प भूएसु सम्मं भूयाइं पास ओ।

संसार के सब प्राणियों में अपनी आत्मा को दे ना और अपनी आत्मा में सर्व प्राणियों को देखना यह उदार सिद्धांत दशवैकालिक सूत्र में प्रतिपादित किया हुआ है। यही मैत्री भावना का रहस्य है।

योग्यतानुसार मैत्रीभाव विकास होता है। जिसकी आत्मा जितनी निर्म है वह उतना ही लोगों । मित्र बनता है। मित्रता ारंभ अपने घर से करना चाहिये। माता-पिता का कि पर उपकार नहीं है? सब लोग माता-पिता से पैदा हुए हैं। आसमान से कोई नहीं टपका है। प्रकृति के नियमानुसार सब मावाप से उत्पन्न हुए हैं अतः उनका संतान पर महान् उपकार गिना जाता है। आप कितने ही प्रतिष्ठित और महान् क्यों न बन गये हों, माता पि का उपकार मानना पड़ेगा। उनकी सेवा भरि और धर्म में सहायता करना आ । परम र्त्तव्य है। माता-पिता से यह प्रार्थना करनी हिये कि ाप संसार । झंझट छोड़कर धर्म मार्ग मय गाइये। तथा उनका बोझा अपने पर लेकर उन्हें धर्म रणी रने के लिए अवसर प्रदान करना चाहिए।

इसी प्रकार माता पिता को यह वि ार करना चाहिये कि हमने संतान को जन्म देकर कोई महान् उपकार नहीं किया है। हमारा उपकार तो तब है जब हम संतान को सुसंस्कारी ब कर धर्म के र्ग में लगा सकें। पुत्र धर्म मार्ग में बाध न होकर साधक बनना माता-पिता का कर्त्तव्य है। अपने पर्यूषण के आठों दिनों अतकृद्दशांग सूत्र सुना है। उ में गजसुकुमार और एवन्ता मुनि का वृत्तान्त भी सुना है। क्या इन दोनों के मा-बाप न थे? अवश्य थे। साधारण -बाप नहीं किन्तु राजपरिवार के विशिष्ट व्यक्ति उनके मा-बाप थे। किन्तु उन्होंने अपने पुत्रों परी । करके उन्हें आध्यात्मि मार्ग अपनाने की सहर्ष नुज्ञा दे दी।

मित्रो ! इन आदर्श उदाहरणों की रोशनी में ाप अपने चरित्र पर दृष्टि डालिये । मैंने दे ा है, यदि कोई पुत्र ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करने के लिए शादी नहीं करता है या सादगी से जीवन बीताने के लिए ादी पहनता है और मीर्च मसाले नहीं ाता है तो मा बाप रोते हैं और दुः प्रकट करते हैं। कहने लगते हैं, महाराज ! हमारा पुत्र कुछ ाता पीता पहनता ओढ़ता नहीं है। संसार की मौज नहीं करता। वैरागी सा जीवन बीताता है। मगर यह मोह भावना है, यह मैत्री भावना नहीं है। माता पिता और संतान का कर्त्तव्य है कि एक दूसरे के मार्ग में बाधक न बनकर साधक बनना चाहिये।

इसी प्रकार पति पत्नी का क्या सम्बन्ध और कर्त्तव्य है, समझना चाहिये। यदि पत्नी यह सोचने लगे कि पति ने मेरे से विवाह किया है अतः अच्छा ाना अच्छा वस्त्र और बहुमूल्य दागीने देना उसका फर्ज है और पति सोचने लगे कि मैं शादी करके लाया हूं अतः हर प्रकार की सेवा करना पत्नी का कर्त्तव्य है तो गृहस्थ जीवन सुखमय बनने के बजाय महान् क्लेश का कारण बन जाय। दोनों अपना अपना फर्ज अदा करे यह उचित है किन्तु एक दूसरे पर फर्ज लादना और मजबूरी से फर्ज अदा कराना गृहस्थ जीवन के लिये कांटे बोना है। आज के अधिकांश पति पत्नियों में आपसी क्लेश देखा जाता है। यदि एक दूसरा एक दूसरे का फर्ज न देखकर अपना फर्ज दे ने और अदा करने लगे तो जीवन बड़ा सुखमय बन जाय। त्याग भाव के बिना इतनी उत्कृष्ट भावना आना कठिन है। त्याग मार्ग अपना कर्त्तव्य करना

सी ाता है दूसरा क्या रता है और क्या नहीं करता इस पर ध्यान नहीं देता। यह पर्व ाग मार्ग । अभ्यास करने के लिए है। यदि इसमें ाग भाव सी लिया तो आपका गृहस्थ जीवन स्वर्गीय जीवन बन जायगा। मैत्री भाव और ाग भाव में कु अंतर नहीं।

मयणरेहा और जुगबाहू के दाम्प जीवन पर नजर दौड़ाइये। महणरेहा पर कितनी आपत्ति थी। उसके पति पर उसके जेठ ने तलवार से वार कर दिया था। तलवार की ोट से जुगबा छटपटा रहा था और अपने भाई पर बहुत क्रोधित हो रहा था कि क्यों इस दुष्ट ने मुझे तलवार से घायल किया है। मगर मयणरेहा ने सोचा कि यह समय बड़ा नाजूक है। मेरे पति । अंतकाल सन्निकट है। एक एक ण का इस व बड़ा मूल्य है। यदि इ वक्त पतिदेव के सामने मोह में डालने वाली बातें करूंगी तो इनकी गति च्छी न होगी। उसने पति को गोद में उठा लिया और समझाने लगी कि यह अवसर बड़ा कीमती है। कृपानाथ! मेरी अंतिम सेवा स्वीकार कीजिये और अपना मरण सुधारिये। आप अपने भाई पर क्रोध करना छोड़ दीजिये। आप पर तलवार का वार आपके भाई ने नहीं किया है किन्तु मैंने किया है। यदि मैं ापकी पत्नी न होती और साथ में रूपवती न होती तो यह तलवार ापके कंधों पर क्यों पड़ती। मेरे रूपवान शरीर को दे कर आपके भाई के मन में विकार भाव उत्पन्न हुआ। उसमें आपको बाधक मानकर आपको मिटा देने का विचार जागा और तलवार गिरी। इसके पूर्व आप पर आपके भाई

का कितना स्नेह था जिससे प्रेरित होकर ापको युवराज बनाया था। मेरे रूप से मोहित होकर वह स्नेह भाव लुप्त हो गया। अतः वस्तुतः इस कांड की वास्तविक अपराधिनी तो मैं हूं।

मुझ अने बांधव ऊपरे हो, प्रीतम राग द्वेष परिहार।
सम परिणाम राखजो हो, प्रीतम उतरोगा भवपार।
हिरदे राखीजो हो प्रीतम मांगलिक शरणा चार॥

नाथ!   पर तथा अपने बान्धव पर रागद्वेष न लाकर सम भाव धारण करो जिससे संसार स द्र से र उतर जाओगे।

एक आदर्श पत्नी का अपने पति के लिए कितना सुन्दर उपदेश है। पति पत्नी का ऐसा ही सुन्दर सम्बन्ध होना चाहिये। मयणरेहा ने आखीरी व अपने प के साथ सच्ची मित्रता निभाई है। इनके जीवन से पाठ ग्रहण करके आप लोग भी आपस में ऐसी मित्रता निभाओ। आज का दिन ऐसी मित्रता जोड़ने का है, सबसे सम भाव र ने का है। आप यदि अपने दुश्मन न बनेंगे तो कोई आपका दुश्मन नहीं बन सकता। दुश्मन कोई बन भी जाय तो बिगाड़ कुछ नहीं कर सकता। शत्रु को मित्र बनाने की कला सी ने का आज का दिन बड़ा शुभ है। यह अवसर वार नार नहीं अ । है। ऐसा न हो कि आज तो मत मावणा कर लिए और कल फिर लड़ाई करली। जिससे एक वार मित्रता जोड़ली उससे

वापस त्रुता रना उचित नहीं है। भारतीय विवाह पद्धति के अनुसार एक्क बार लग्न हो जाने पर ीवन पर्यन्त म्बन नहीं टूटता। जिसके साथ ए बार प्रेम र लिया उस । सदा े लिए मैत्री हो चु । दा यह ावना ाते रहोः—

खामेमि सव्वे जीवा सव्वे जीवा खमन्तु मे।
मित्ति मे सव्व भूयेसु वेरं मज्झं न केणई॥

अर्थ—

मैं सब जीवों से मा मांग । ब जीव मे क्षमा प्रदान रें। मेरी ब जीवों के थ मैत्री है। किसी जीव साथ त्रुता नहीं है।

कितनी सुन्दर और उदार ावना है यह! किसी भी कार्य में दूसरे का दोष या पराध न देखकर पना दोष दे ना मित्रता करने का प्रथम चिन्ह है। मैत्री भावना । चिंतन करते करते उत्कृष्ट रसायन आ जाय तो तीर्थंकर गोत्र का बंध हो सक है। यह भावना मोक्ष की कूंजी है।

यदि युगबाहु क्रोधयुक्त भावना में मृत्यु पाता तो न मालूम किस अशुभ गति में जाता। किन्तु जीवन की सच्ची साथिन मयणरेहा के समयोचित उपदेश से वह पां ें देव-लोक में गया। आप लोग पने लिए विचार करो कि पका दाम्पत्य सम्बन्ध स्वर्ग प्राप्त करने के लिए है या नरक। यदि स्वर्ग प्त करने के लिए म्बन्ध है, ऐसा मानते हो तो र्ग

मुफ्त में नहीं मिला करता। उसके लिए बड़ी कीमत चुकानी पड़ती है। उसके रा त्याग करना पड़ता है। जुगबाहू ने क्रोध का ाग किया था जिससे वह स्वर्ग में गया। जब मदनरे । पर आपत्ति आई तब देव बने हुए पति ने भी उसकी सहायता की है। मित्रता निभाना सरल काम नहीं है। ाग भावना होना उसके लिए अ श्यक शर्त है।

मैंने घर से शुभारंभ करने बात कही है। माता पिता और पति पत्नी का संबन्ध कुछ बताया जा चुका है। अब इसी प्रकार स्वामी सेवक का सम्बन्ध भी आदर्श होना चाहिये। अपने सेवकों के साथ मित्रता का नाता होना चाहिये। आप पर मजदूरों का कितना उपकार है क्या कभी इस बात पर विचार किया है? किसने ईंट पत्थर उठाये हैं? किसने चूना पकाया और किसने लोह लक्कड़ का काम किया है? जो सुन्दर वस्त्र आपने धारण कर रखे हैं उसके पीछे किसका श्रम है? कि ने कपास बोया है और किसने उसके लिए भूमि साफ की है? किसने रूई बनाई और किसने धागे निकाले? किसने उसे बुना और किसने उसे रंगा है? तथा किसने सिलाई की है? जो अन्न, दूध दही और घी आप ाते हैं, उन ब के पीछे किन २ का महान् श्रम रहा हुआ है, क्या आपने कभी इन बातों पर ठंडे दिमाग से कुछ सोचा है? यह सब उन मजदूरों का परिश्रम है जिसके कारण आप आनन्दोपभोग करते हैं। क्या उन मजदूरों का आप पर उपकार नहीं है? अवश्य है। अतः उनके साथ सच्ची मित्रता का व्यवहार करो। इसी प्रकार जिन गायों और भैसों का आप घी दूध ाते

हैं उनका भी आप पर उप ार है। उन पर भी मैत्री ाव र ो। ि न र । ाप पर उपकार है कम से म उनके साथ तो मित्रता वश्य र ो। मैत्री भाव र ने के लिए फे न, ाभूषण और न रों का त्याग रना भी ावश्य है।

आपने सूत्र के द्वारा जिन नब्बे महापुरुषों ा जी चरित्र ना है उनमें दस सतियों का चरित्र शि र रूप है। जैन शा ानुसार पुरुषों की तरह स्त्रियां भी मोक्ष प्राप्त करने की धिकारिणी मानी गई हैं, ये दसों सतियां कर्मरज मिटाकर मोक्ष पधारी हैं। इन सतियों का ण वर्णन करने के लिए हृदय उमड़ रहा है किन्तु समय की कमी के ारण आवेग को रो ना पड़ता है। ये सब सतियां राजा श्रेणिक की रानियां थीं। फिर भी जैनदीक्षा अंगीकार करके तपोमय ि वन बीता ि थीं। इन सतियों में एक महासेन कृष्णा नामक सती ने आमिल वर्धमान नामक तप किया था। इस तप में ए आमिल एक उपवास फिर दो आमिल एक उपवास फिर तीन आमिल एक उपवास इस प्रकार चार पांच छः आदि बढ़ते २ सौ आमिल और एक उपवास करना होता है। जिस म से बढ़ना होता है उसी क्रम से घटना भी पड़ता है। अर्थात् ौ आमिल करके एक उपवास फिर निन्यानवे आमिल करके एक उपवास, फिर इठयानवे आमिल करके एक उपवास। इस प्रकार एक आमिल और एक उपवास पर उतर आना पड़ता है।

इन सतियों ने इतना उत्कृष्ट तप क्यों किया था? राजा की रानी बन कर भिक्षुणी बनना इन्होंने क्यों प न्द किया?

इन ब बातों का यदि आप ऐतिहासिक पुरावा ढूंढ़ना चाहो तो मिलना श्किल है। त्याग का वर्णन इतिहास में नहीं मिल स । इतिहास में लड़ाई का वर्णन मिलेगा। दो राजाओं का आप में युद्ध हो तो उसका वर्णन इतिहास में मिल सकता है। किन्तु यदि दोनों आपस में लडे ही नहीं, समझ-दारी पूर्वक बिना युद्ध के मामला तय करलें तब इतिहास में उनका जि क्यों आने लगे। विशेष घटना घटे बिना सामान्य बातों की कौन नोंध लेना पसन्द करेगा और किसीने नोंध ले ली तो याद कौन र गा। इस लिए त्यागियों के वन का इतिहास ढूढ़ने की झञ्झट में न पड़ कर उनका अनुसरण करने में लगना अच्छा है।

बौद्ध ग्रंथों में लि । है कि सम्राट अशोक की वहिन भी भिक्षु बनी थी। वल्कि यह भी कहा जाता है कि उसके हा का लगाया हुआ पीपल का वृक्ष अभी तक सीलोन में मौ द है। जब अशोक की बहिन भिक्षुणी वन सकती है तो राजा श्रेणिक की रानियां भीक्षुणी बनीं, इस में संदेह करने की क्या बात है।

महासेनकृष्णा महारानी साध्वी बनकर ादी के व पहिन कर घर घर भिक्षा मांगती फरती है। उत्तम व्यंजन देने पर कहती है कि ये झे नहीं चाहिये। झे रूक्ष भात हो तो दो। देने वाले को उस समय कैसा उत्साह और हर्ष होता रहा होगा! नीरस भात लाकर पुनः उन्हें पानी से धोकर रहा सहा स्वाद भी मिटा कर कितने संतोष और आनन्द के साथ

उन्हें ाती है ! जिन चांवलों को उनकी दासियां भी ना पसन्द नहीं रती थी उनको कैसे आनन्द के साथ खाती हैं। पूर्व में भोगे हुए पक्वान और विविध व्यंजनों की याद उनके चित्त को वि ल नहीं करती है। स्वेच्छा से इस तपोयज्ञ में अपने ाप को होम दिया है। मानो पूर्व में दास दासियों की जो सेवायें लीं थीं उनका प्रायश्चित्त कर रही हैं। आज आपके लिए भी प्रायश्चित्त का दिन है। कम से कम इतना तो त्याग रो कि जिन गायों का आप दूध पीते हैं। उन गायों की चर्बी जिन वस्त्रों में लगती हैं, वे धारण न करो। मिल के बने वस्त्रों का ाग करो।

दूसरी भावना प्रमोद भ ना है। साधु, साध्वी, आचार्य उपाध्याय श्रावक श्राविका आदि जो भी गुणाधिक हैं, उन्हें देखकर प्रसन्न होना चाहिये। उनके गुणों का अनुमोदन करो।

तीसरी करुणा भावना है। दुःखी जनों की करुणा रनी चाहिये। सुखी और सम्पन्न व्य यों की सेवा रने के लिए सदा तैयार रहते हो किन्तु जो दुःखी और अभा स्त हैं उनको सेवा की री जरूरत है। वह डाक्टर कितना मूर्ख गिना जाता है जो बीमारों को दवा न देकर स्वस्थ लोगों को पकड़ पकड़ कर जबरन दवा पिलाता है। क्या वे लोग उस डाक्टर से कम मूर्ख हैं, जो भूखों को न खि लाकर लखपतियों को पकड़ पकड़ कर जबरदस्ती खि लाते हैं। ए भक्त कहता है:—

उत्तम जन्मा ये उनी रामा गेलो भी वाया ।
दुष्ट पातकी शरण मी आलो सत्वर तव पाया ।
व्यंजलें बहु लवण भंजने व्याया जेवाया ।
क्षुधित अतिथि कदी नाही घेतला प्रेमे जेवाया ॥

भ कहता है कि मेरा उत्तम जन्म व्यर्थ चला गया। मैंने ब्याही और जमाइयों को मनुहार कर २ के खूब जिमाया। उनके जीम चुकने पर भी खूब आग्रह करने उनकी थाल में मिष्ठान्न डाला और चूरण देकर उसे हजम करवाया। किन्तु उसी समय भूख के मारे मरता हुआ व्यक्ति भोजन मांगने आया उसे मैंने दुत्कार दिया और घर से वाहर निकाल दिया। भगवन्! यह कैसी बिडंबना है! जगत् का यह कैसा उल्टा व्यवहार है!

गरीबों पर करुणा करने से सातावेदनीय कर्म का बंध होता है। मेघकुमार ने हाथी के भव में शशक की करुणा करके सम्यक्त्व प्राप्त किया था। मनुष्य के हृदय की विशालता इसी ण से मापी जा सक ै है।

चौथी माध्यस्थ या उपेक्षा भावना है। कई लोग धर्म और धर्म नायकों की निन्दा करते है। स्वयं अच्छे बनते हैं और दूसरों को बुरा वताते हैं। ऐसे लोगों के प्र उपेक्षा भाव धारण करना चाहिये। ऐसा सोचना चाहिये कि मैंने जैन धर्म पाया है तो उसका सार सहन करना है न कि

दूसरों को हो या बद देना। ग कु ार के सिर पर सोमिल ने लते अंगारे रखे थे। श्री कृष्ण के पूछने पर ग-वान् रिष्ट नेमी ने इ ा ही हा कि कृष्ण ! गजसुकुमार ो ए ादमी सहायक मि गया जि से ज रात्रि ही वे पना कार्य ाध गये। मुक्ति में पहुंच गये। क्या ोमि ने हायता करने की दृष्टि से गज सुकु र के सिर पर अङ्गारे थे? नहीं। किन्तु गज कुमार मुनि ने मता भाव धारण करके उसे सहायक मान लिया। निष्ट में से इष्ट त कर लिया। शत्रु ो मित्र मान लिया जि से अपना प्रयोजन सिद्ध गये।

इसी प्र र जो पके निन्द हों उनके लिए यह सो चाहिये कि ये स्वयं पाप करते हैं किन्तु मेरे लिए तो ई ही करते हैं। मेरे दोष प्र ट करके मुझे धान रते हैं और धर्म पर अधि दृढ़ रहने की प्रेरणा देते हैं। बिजली महत्त्व अंधेरे से है। ज्जनों ा महत्त्व भी दुर्जनों के ारण वृद्धिगत हो है। पनी धर्म रूपी रो नी ाओं, धेरा ने ाप हट जायगा।

इन रों व ओं हो हृदय र न दोगे तो धर्म रूपी कामधेनु आपके घर में ही है। ारों हो न को तो किसी एक के ाने पर भी गाय के एक स्तन से दूध की तरह धर्मरूप मृत त होगा। जिससे इह ो और परलोक दोनों सुधरेंगे।।

२१-८-३६

राजकोट

१९

निर्बल के बल राम

जय जय जिन त्रिभुवन धनी ।

प्रार्थना—

यह दसवें तीर्थंकर भगवान् शीतलनाथ की प्रार्थना है। भगवान् शीतलनाथ की प्रार्थना करते हुए मन में क्या भावना होनी चाहिये, यह बताने के लिए भक्त कवि, स्तुति रूप में वाक्य धारा छोड़ते हैं। भक्तों की छोड़ी हुई वाक्य धारा वही काम करती है जो एक धारा दूसरी धारा के लिए करती है। जब पानी की एक धारा पर दूसरी धारा गिरती है तब पहिली धारा दूसरी को अधिक उत्तेजित करती है। शान्त पानी पर यदि कोई धारा गिरती है तो वह पानी में खलबली पैदा कर देती है। यह बात दूसरी है कि जैसी धारा होगी वैसी ही

हरकत भी पैदा करेगी किन्तु अच्छी या बुरी कोई न होई हर-
त किये विना नहीं रहेगी। यदि हमारे शान्त हृदय में पर-
मात्मा की चाह होगी तो भ ों की छोड़ी हुई वाक्य धारा
खलबली मचाये विना न रहेगी।

भक्त कहता है कि भगवन्! तेरे गुणों का वर्णन कहां
तक रूं? बड़े बड़े ऋषिमुनि भी तेरा गुण वर्णन रते रते
हार । गये तो मैं किस विसात में हूं। वे भी नेति नेति कह
कर रुक गये। आगे कुछ न कह सके। मन, बुद्धि और वाणी
तीनों की तुझ तक पहुंच नहीं होती। फिर भी अपनी अपूर्णता
बताने के लिए कुछ कह लेता हूं। मौन धारण न रके अपने
टूटे फूटे ब्दों में तेरा स्वरूप वर्णन करने की चेष्टा करता हूं।
नेति नेति अर्थात् तेरा स्वरूप इतना ही नहीं है और भी कुछ
है। किन्तु मेरे पास शब्द नहीं हैं जिनके जरिये उस पर
प्रकाश डाल सकूं। मैं अपूर्ण ँ तू पूर्ण है। तेरा वर्णन नहीं
कर सकता अतः तेरी सेवा का ल ही बता देता हूं।

जय जय त्रिभुवन धनी।
करुणा निधि करतार, सेव्यां सुरतरु जेहवो,
वांछित फल दातार। जय जय० ॥

हे तीनों लोक के नाथ! तेरा जय जयकार हो। तू
त्रिभुवन धनी है और मैं अपूर्ण हूं। मैं इस शरीर में सीमित हूं,
इसमें रूका हुआ ँ। तू ज्ञान रूप से सर्वत्र व्यापक है। तेरा
ज्ञान रूपी प्रकाश लोक और अलोक में फैला हुआ है।

तेरी इसलिए बो कि तू कल्प वृक्ष के न मनो छित ल देने वा । है। जैसे ल्प वृक्ष ो ोई बंधन में नहीं बांध स । कि तू अमुक को ल देना और क को मत देना। वह ब को फल देता है। वैसे ही हे भगवान् ! तू भी ब को फल देने व । है तू किसी के बंधन में नहीं है।

भगवान् ो कल्प कह देना रल है मगर इ व की गति वैठ । उतना सरल नहीं है। यदि परमात्मा कल्पवृ है तो ई लोग व के लिए क्यों तर रहे हैं? और यदि कोई अपनी मूर्खता से अपने लिए वि की ाहना करता है तो क्या परमात्मा विष भी प्रदान रता है? हां, यदि कोई विष की चाहना करता है तो उसे विष भी मिलना चाहिये। जो मुक्ति की कामना करे उसे क्ति और जो सांसारिक भोगों काम करे उसे भोग ामग्री मिलनी चाहिये। तब उसके लिए कल्प उपमा ठीक सकती है।

इस का उत्तर यह है कि कल्पवृ जड़ है और परमात्मा ज्ञ धन है। को हिताहित सोचने का नहीं हो । किन्तु चेतन परमात्मा यह जानता है कि जीव के लिए स्त- विक हितकारी क्या वस्तु है। कल्पवृक्ष जड़होने से अहि ारी वस्तु भी दे सकता है। किन्तु ज्ञानधन प्रभु अनिष्टकारी पदार्थ कैसे प्रदान कर सकता है। उदाहरणार्थ, म । पिता त्र को सब कुछ देते हैं किन्तु यदि कोई त्र अपनी ना मझी से

विष मांगे तो क्या वे देंगे ? पिता देने ा है। किन्तु पने पितृपक्ष ो तिलाञ्जली देकर निष्ट वस्तु नहीं देता। इसी प्र परमात्मा भी ब कुछ देने है गर । पूर्वक जो ाम रता है उ मनो ्छा होती है। ो भूखों मरते हैं वे पने ा स्य और अ ान के ार मरते हैं।

अब ए और प्रश्न ड़ा होता है ि क्या चमुच परमात्मा छ देता है ? हां, परमात्मा थीं की मनो ामना पूरी र है, इ में तनि भी देह नहीं है। यदि परमात्मा देता हो तो भ लोग उ प्रार्थना क्यों करने गते। 'लोगर ' स्तुति में हा गया है--

आरूग्गं बोहि लाभं समाहिवरमुत्तमं दिन्तु ।

अर्थात् हे सिद्ध भगवन् ! मे ारोग्य, बोधि ाभ (स क्त्व प्राप्ति) ार उ म माधि प्रदान रो। यदि परमात्मा कुछ देता न होता तो इस स्तुति में ारोग्य आदि की मांग कैसे की गई है ? वह देता है इसी लिए मांग की गई है।

परमात्मा सब कु देता है किन्तु निमित्त रूप बनकर देता है। उपादान रूप बनकर नहीं दे । उपादान उसी ा म आता है जिसे कामना है। जिसका उपादान ठीक है उसे वस्तु मिल जानी है। अतः परमात्मा से वांछित पदार्थ प्राप्त करने वालों को अपना उपादान ठीक करना ाहिये। पनी ात्मा में उसके लायक तय्यारी होनी चाहिये तभी परमात्मा देता है। आत्मा में जो क्ति ोई ई है उसे जगाने लिए

परमात्म प्रार्थना की सहायता ली जाती है। किसी कार्य की सिद्धि न केवल उपादान कारण से होती है और न निमित्त रण से। दोनों कारणों का योग मिलने पर सिद्धि होती है। दृष्टान्त के तौर पर समझियेगा कि आटा रखा हुआ है किन्तु रोटी तब तक नहीं बन सकती जब त कि इतर साधनों का योग न हो जाय। आटा अपने आप रोटी नहीं बन जाता। उसके लिए कोई बनाने वाला होना चाहिये। आटा हो, साधन हो और बनाने वाला हो तब रोटी बनती है। इसका अर्थ यह हुआ कि कार्य की सिद्धि के लिए आटा समान उपादान हो, चूल्हा तथा बेलन चकला आदि की तरह साधन हो और रोटी बनाने वाली बाई के मान कर्त्ता मौजूद हो तब कार्य बनता है। यदि जीव स्वयं प्रय करता है तो परमात्मा उसमें निमित्त बन जाता है। जिस व जिस कारण का वर्णन किया जाता है उस व उस पर भार दिया जाता है। इसका अर्थ यह नहीं होता कि दूसरे कारणों की उपेक्षा है। इस व भ परमात्मा की प्रार्थना र रहा है।

'सेव्यां सुरतरु जेहवो, वांछित फल दातार' (कहा है।)

यह जीव अनेक वार कल्पवृक्ष से भेंट कर चुका है। किन्तु परमात्मा की भेंट कभी नहीं कर पाया है। कल्प क्ष से पूरी होने वाली आशायें और इच्छायें नः उत्पन्न हो जाती हैं। किन्तु परमात्मा रूपी कल्पवृक्ष की एक बार भेंट कर लेने पर सारी इच्छायें सदा के लिए परिपूर्ण हो जाती हैं। अर्थात् इच्छा ही नष्ट हो जाती है। प्रभु ऐसा कल्पवृक्ष है कि वह

उससे भेंट रने पर मनुष्य के सारे विकार ही मिटा देता है। जिस प्रकार रोगी मनुष्य को इस बात का पता नहीं लगता कि डाक्टर की दवा पेट में पहुंचकर क्या २ काम करती है किन्तु उससे रोग मिट जाता है। उसी प्रकार परमात्मा की प्रार्थना भी हमारे अनजान में हमारे विकारो को मिटाती है और हमें निर्विकार बना देती है। उपमा देने के लिए अन्य वस्तु मौजूं न थी अतः कल्पवृक्ष की उपमा दी गई है।

परमात्मा की प्रार्थना से सब कुछ सिद्ध होता है। किन्तु प्रार्थना करने के लिए वीरता की जरूरत है। किस प्रकार की वीरता आवश्यक है इसके लिए कामदेव श्रावक के जीवन पर दृष्टि डालिये। कामदेव पर अनेक आपत्तियां और वि उपस्थित हुए किन्तु उसने धर्म नहीं छोड़ा। वह सोच सकता था कि धर्म छोड़ देने पर सारे विघ्न और दुः मिट जायेंगे किन्तु उसने ऐसे कायर विचारों को मन में स्थान नहीं दिया। उसने इस अवसर को अपनी परीक्षा का समय माना। यह देव यदि कष्ट देकर मेरी परीक्षा न लेता तो मैं धर्म पर दृढ़ हूं या नहीं इसका क्या पता लगता। जो परीक्षार्थी वर्ष भर तय्यारी करता है, वह यदि परीक्षा के ऐन मौके पर परीक्षक को या प्रश्नों को दे कर घबड़ा जाय तो वह कैसे उत्तीर्ण हो सकता है? कामदेव बेधड़क होकर परी । के लिए तैयार है।

जब देव उसके शरीर के टुकड़े टुकड़े कर डालने बात कहता है तब कामदेव यह सोचता है कि रीर तो

विनाश होने के स्वभाव वाला है ही, एक दिन अवश्य छूट जाने वाला है। उसके यदि टुकड़े कर डाले जायं तो इसमें मुझे कुछ डर नहीं है। मेरी अविनाशी आत्मा के टुकड़े न होने चाहिये। आत्मा के टुकड़े करने में इन्द्र भी समर्थ नहीं है। यदि मैं धर्म से विचलित हो जाऊं तो मैं स्वयं अपनी आत्मा का हनन कर हूं। इसलिए शरीर के नाश होने से न डरकर आत्मा को भय के भूत से सुरक्षित रखूं, यही मेरे लिए परम कर्त्तव्य है।' इस प्रकार विचार कर कामदेव धर्म पर . रहा। जरा भी विचलित न हुआ।

इस कथा को इसी रूप में दे ना चाहिये। किन्तु लोगों को धर्म की बातों पर बहुत कम विश्वास होता है अतः अनेक प्रकार के संदेह पैदा करते हैं। जैसे, वह देव सात आठ ताड़ वृक्ष जितना ऊंचा था और पौषधशाला इतनी ऊंची न थी। फिर वह देव पौषधशाला में ड़ा किस प्रकार रहा होगा। शंका करने वाले इस बात को भूल जाते हैं कि कामदेव की परीक्षा लेनेवाला देव था, साधारण मनुष्य न था। देव में कितनी शक्ति होती है इसका भगवती सूत्र में जिक्र है। एक मनुष्य अपनी टांग ऊपर उठाकर नीचे र ` उतनी देर में देव, मनुष्य का सिर काटकर उसका चूरा चूरा करके एक एक परमाणु उड़ाकर वापस उन परमाणुओं को समेट कर यथावस्थित सिर को जोड़ सकता है। इसलिए ड़ा रहने में कोई बाधा नहीं है। जिसे दैविक शक्ति में ही विश्वास न हो उसका समाधान करना कठिन है। जिसे । ों पर विश्वास

है उ　के मन　। समाधान हो जाता है। देव अपनी शक्ति से छोटा बड़ा　ाड़ा टेढ़ा कैसा भी रूप बना सकता है।

इस कथा का उद्देश्य धर्म पर किस हद्द तक दृढ़ता र　. यह बताना है। आप लोग मन से भूत की　ल्पना करके उससे भी डर जाते हैं। किन्तु कामदेव के स　ने ऐसा पि　ाच आया जिसके रूप का वर्णन सुनकर भी कमकमी छूट सकती है फिर भी वह निडर रहा और धर्म से चलित नहीं हुआ। इस कथा का उद्देश्य धर्म पर दृढ़ रहने का आदर्श पूर्ण पाठ पढ़ाना मात्र है। इस कथा को इसी दृष्टि से दे　ना चाहिये और किसी प्रकार का संदेह न करना चाहिये। संदेह किया जाता है अतः इस विषय में कुछ और कहता हूं।

आजकल मकानों में खुली जगह बहुत कम रखी जाती है। पूर्व काल में मकान में चौक बहुत र　। जाता था। पुराने ढांचे के मकानों में अब भी चौक दे　। जाता है। यदि वह पिशाच खुली जगह में खड़ा रहा हो तो सात आठ ताड़ तना शरीर क्या इससे भी कितना ही अधिक　चा क्यों न हो, समा　कता है। खुला हुआ चौक पौषधशाला के　हाते में होने से पौषधशाला ही कहा जायगा। इसी प्रकार उस देवने खुली जगह में हाथी का रूप बनाकर सूंड से काम देव को खींचकर ऊपर उछाला हो तो क्या यह न कहा जायगा कि हाथी ने पौषधशाला में कामदेव को　पर उठाकर उछाला था। यह शंका भी निर्मूल है कि शरीर के टुकड़े कर डालने पर क　-देव जिन्दा कैसे रहा होगा। कारण कि देव शक्ति का भगवती

सूत्र प्र पादित स्वरूप पहले बताया जा चुका है। आजकल के डाक्टर भी सिर की खोपड़ी उतार कर उसका ऑपरेशन करके वापस जोड़ देते हैं फिर भी मनुष्य जिन्दा रह जाता है, ऐसा सुनने में आया है तो भला देव शक्ति से शरीर के टुकड़े होकर पुनः जुड़ जाना और जिन्दा रह जाना कौन बड़ी बात है।

अब यह सवाल ड़ा होता है कि हाथी और सांप कैसे बोले और उनकी बोली कामदेव समझा कैसे? कोई मनुष्य बोलता हो तो आश्चर्य नहीं होता किन्तु कुत्ता. हाथी और सांप बोलने लगें तो आश्चर्य और संदेह दोनों होने लगते हैं। मगर वह तो दैवी शक्ति थी जो विविध रूप धारण करके काम देव को धर्म से डिगाना चाहती थी। इसमें संदेह को कहां स्थान है। इन पशुओं के रूप में देव शक्ति बोल रही थी कि हं भो! कामदेव! यदि तुम धर्म न छोड़ोगे तो तुम्हारे टुकड़े कर दिये जायंगे। और सच मुच टुकड़े कर भी डाले गये। मगर वीर कामदेव धर्म पर दृढ़ रहा।

वर्धमानजी सेट कहते थे कि हम कलकत्ता में सीनेमा दे ने गये। प्रवेश करते ही ऐसा मालूम हुआ कि कोई स्त्री गायन कर रही है। मगर निकट जाने पर मालूम हुआ कि फोटो बोल रहा है। इस में विचारणीय बात है कि क्या फोटो बोलता है या उसके पीछे रही हुई कोई दूसरी श बोल है? फोनो फ की चूड़ी बोलती है या उसके पीछे रही हुई कोई दूसरी शक्ति बोलती है? वस्तुतः ध्वनि का अनुकरण सग्रहित

किया हुआ रहता है जो वैसी ही आवाज पुनः पुनः निकाला करता है। इसी प्रकार हाथी या सांप नहीं बोलेथे किन्तु उनके पीछे रही हुई दैवी शक्ति बोली थी।

अब यह शंका और बच गई है कि कामदेव बड़ा सम्पन्न व्यक्ति था। उसके अनेक नौकर चाकर थे। वे यह कोलाहल सुनकर उसकी रक्षा या सहायता करने क्यों नहीं आये? यह शंका डरपोक वृत्ति के कारण पैदा होती है। आज कल लोग दूसरों के संरक्षण में रहते हैं और अ न्त भीरु बन चुके हैं अतः उस जमाने के लोगों के लिए भी वैसी ही लपना करते हैं। मगर उन्हें ध्यान में र ना ाहिये कि आज तरह पहले के लोग डरपोंक न होते थे। जो वीर होते हैं वे दूसरों की सहायता नहीं लिया करते। कामदेव स्वयं वीर था और महावीर भगवान् का नुयायी था। जिसके आदर्श भगवान् महावीर ने इन्द्र की सहायता को भी ठुकरा दिया उनका चेला नौकरों की हायता लेना कैसे प ंद् करता?

रघुवंश का वर्णन करते हुए कवि कालीदा ने बताया है कि दिलीप राजा स्वयं ही गाय की निगरानी करने जाता था। क्या उसके नौकर चाकर न थे जो स्वयं वह जाता था? किन्तु

स्ववीर्यगुप्तः मनुप्रसूतिः

वीर लोग अपने ही पराक्रम से रक्षित रहते हैं। दू रों मदद लेना उन्हें च्छा नहीं गता यही ार है

कि नौकरों की मदद की कामदेव ने इच्छा तक नहीं की। दूसरी बात उस जमाने के लोग एकान्त में पौषधशाला में बैठकर धर्म जागरणा करते थे, जहां ंसार का कोलाहल नाई नहीं पड़ता था। आनन्द श्रावक वाणिज्य ग्राम में रहता था। किन्तु उसकी पौषधशाला कोलाक सन्निवेश में थी। एकान्त स्थान को पहले पसंद किया जाता था, यह न दे । जाता कि वक्त बे वक्त वहां कौन सहायता करेगा। कायर लोग सुविधा और सहायता का याल पहले करते हैं। मगर मित्रो! मैं पहले बता चुका हूं कि ईश्वर की आराध और धर्म का सेवन वीरता के विना होना संभव नहीं है।

युद्ध में जाते व योद्धा यह नहीं सोचा करता कि मैं भाग कर अ ंगा तो कहां रहूंगा और कहां छिपूंगा? साधु वनने वाला यह नहीं सोचता कि यदि साधुपना न पला तो कैसे गुजारा करूंगा। वह तो कृतसङ्कल्प होकर कार्यारंभ करता है। वीरों को ऐसी कायर कल्पना नहीं हुआ करती। मतलब कि कामदेव की पौषध शाला एकांत स्थान में रही होगी जहां के शब्द सुनना संभव न रहा होगा। और इसी लिए नौकर दौड़कर न आये होंगे। नौकरों के आने पर भी कामदेव किसी की सहायता स्वीकार करने वाला कहां था।

अब यह प्रश्न ड़ा होता है कि महाराज! आपने शुरु में प्रार्थना करते हुए बताया है कि भगवान् कामधेनु के समान हैं और सब के कष्ट मिटाने वाले हैं। फिर कामदेव तो भगवान् का बड़ा भक्त था। भगवान् ने उसकी रक्षा क्यों नहीं की?

इसका उत्तर यह है कि कामदेव ने अपनी रक्षा की चाहना व की थी। उसने मन में तनिक भी यह न सो । कि हे प्रभो ! इस कष्ट से मुझे ब । । वह तो अपने आत्मिक ब से आये हुए कट को सहर्ष सहन कर रहा था। उसने उस कष्ट को कष्ट ही न माना था। साधारण लोग अपने मानस से महा-पुरुषों के मानस की तुलना करते हैं। और भूल । जाते हैं। महापुरुष आपत्तियों से कुश्ती करते हैं। इसमें उन्हें बड़ा अपूर्व आनन्द आता है। अंत में कामदेव की विजय हुई। कष्ट देते देने देव हार गया। उसका प्रयत्न थ गया। उ ने क्षमा मांगी और उनका गुलाम बन गया। । स है, जो धर्म पर दृढ़ रहता है देवता भी उसकी सेवा करते हैं।

आप लोग भी यदि धर्म पर दृढ़ रहेंगे तो देवगण आपकी सेवा में उपस्थित रह सकते हैं। मगर आप लोग बनिये ठहरे। आप नफे का सौदा करने वाले हैं। जहां ए रुपये के सत्रह आने होते हों वहां आप दिमाग लगाते हैं। किन्तु धर्म का मार्ग बड़ा विकट है। वह ग्रहण करने मार्ग नहीं है किन्तु त्याग करने का मार्ग है। बनियावृत्ति से धर्मा-राधन नहीं हो सकता। कामना में लगे हुए मनुष्य ईश्वर भ या धर्म सेवा नहीं कर सकते। कामना करने से कामना पूरी नहीं होती और कामना न करने से क्रिया का ल व्यर्थ नहीं चला जाता। बल्कि कामना रहित होकर क्रिया करने से विशिष्ट फल मिलता है। अकल्पित ल मिलता है। मना से वस्तु का महत्व कम हो जाता है। अतः निष्काम हो र ई र भक्ति या अन्य काम करना ाहिये।

वह देव इन्द्र के मु से कामदेव की दृढ़ता की प्रशंसा नकर क्रोधित होकर उन्हें डिगाने के लिए राक्षस बन गया था। किन्तु कामदेव की दृढ़ता ने उसका क्रोध शांत कर दिया और वापस देव बना दिया। धर्म में इतनी श है। फिर भी आप लोग संसार की तुच्छ वासनाओं की पूर्ति के लिए ध करणी बेच देने पर उतारु हो जाते हो, यह कितनी गैर समझ है। भोले लोग ऐसी प्रार्थना करते हैं—

शांतिनाथ सोलमा, लाडू देवे गोल मा।
कृपा करे तो कंसार का, दया करे तो दाल का।
ले रे मूंडा लट, उतर जाय गट॥

इसी प्रकार लोग अपनी रक्षा के लिए 'व पिंजर स्तोत्र' आदि भी जपते हैं। संसार के मोहजाल में फंसकर जैसे छोटा बालक मिठाई के लोभ से अपना बहुमूल्य जेवर उतार कर दे देता है, वैसे ही भोले लोग उत्कृष्ट धर्म करणी करके भी उसके बदले में धन स्त्री त्र आदि की तुच्छ कामना करते हैं। यह बाल बुद्धि ही कही जायगी। पंडित जन ऐसा नहीं कर सकते। शीतलनाथ की प्रार्थना संसार की तुच्छ ऋद्धि प्राप्त करने की दृष्टि से न करके अपनी आत्मा में रहे हुए विकारों को दूर करने की दृष्टि से करोगे तो कल्याण है।

आप कहेंगे कि आज कल पंचम आरा है। धर्म में दृढ़ रहना कठिन है। पद २ पर विघ्न आते हैं आदि। किन्तु यदि विचार पूर्वक सोचेंगे तो ज्ञात होगा कि अधिकांश विघ्न या

दुःख अपने मनकी निर्वलता में से ही पैदा होते हैं। यदि मनुष्य स्वयं वीर है तो वि दुः देने के बजाय सहायकर्ता वन जाते हैं। ामदेव । उदाहरण आपके सामने है। भगवान् वर्धमान का नाम देवों ने महावीर क्यों र । था? उपसर्ग और परिषद् सहन करने के कारण ही वे महावीर कहलाये।

आप लोगों को डोरे गंडे पर विश्वास है। मगर धर्म-करणी के फल पर उतना विश्वास नहीं होता, यह ेद की वात है। धर्म में वड़ी शक्ति है। चाहे कितनी ही वाधायें आये भगवान् का शासन इ ीस हजार वर्ष तक चलेगा। मगर आपका कल्याण दृढ़ता धारण करने से ही होगा। दृढ़ता विश्वास से पैदा होती है। इसलिए भगवान् और धर्म पर विश्वास र ो। प्रतिकार की शक्ति होते हुए कष्ट सहन करना वहादुरी है।

पाण्डवों में शक्ति थी। फिर भी धर्म के लिए उन्होंने कष्ट सहन किये भरी सभा के वीच दुःशासन ने द्रौपदी को करना चाहा तव उसने यह आवाज लगाई कि मेरे पांचों पतियों के मौजूद रहते हुए भी मैं नग्न की जा रही हूं। क्या कोई मेरी रक्षा करने । नहीं है। यह नकर भीम का हाथ गदा पर पड़ा और अर्जुन का गांडीव पर वे कहने लगे, हमारे देखते हमारी ी की लाज जा रही है और हम कते रहें। हमारी वीरता किस व काम आयेगी! किन्तु उसी वक्त युधि र वोले कि भीम! तुम्हारी गदा मुझ पर लाओ

और अर्जुन ! तुम्हारा गांडीव मुझ पर तानो। इस अनर्थ का मैं मूल हूं। मैंने जुआ खेल कर यह विषम परिस्थिति उत्पन्न की है। मैंने ही राज्य और द्रौपदी को दांव पर रख दिया था और हार गया। अतः दण्ड का पात्र मैं हूं। मुझे दण्ड दो।

यह हृदय की बात है। हृदय की आवाज ऐसी ही हुआ करती है। इसे आप युधिष्ठिर की वीरता कहेंगे या कायरता? आज तो इसे कायरता ही कहा जाता है। मगर युधिष्ठर को कायर कहने की कौन धृष्टता करेगा? वे संसार प्रसिद्ध बहादुर माने जाते हैं। उनमें शक्ति थी। किन्तु सत्य के ातिर उसका प्रयोग नहीं किया। युधिष्ठर का कथन सुनकर भीम और अर्जुन बैठ गये। अपने बड़े भाई का ये कितना आदर र ते थे। इस कठिन संकट के प्रसंग पर वाद विवाद में न उतर कर आज्ञाकारिता का उत्कृष्ट परिचय दिया। यह साधारण बात नहीं है। अपने हृदय के आवेग को रोकना महान् हृदय का ही काम है। उन्हें अपने बड़े भाई पर पूर्ण-विश्वास था। भीम और अर्जुन ने अपने बड़े भाई पर विश्वास रखा। क्या आप लोग धर्म पर विश्वास र सकते हैं? धर्म हमारा बड़ा भाई है।

जब भीम और अर्जुन निष्क्रिय होकर बैठ गये तब द्रौपदी ने उन पर अनेक तीक्ष्ण वाग्बाण छोड़े फिर भी वे टस से मस न हुए। अपने भाई के आज्ञाकारी बने रहे। अंत में द्रौपदी को ध्यान आया कि मैं भूल कर रही हूं। मैं अपने पति और भीष्म आदि श्वसुर की सहायता की भिक्षा मांग रही हूं

इसमें मेरा भि न ाम र रहा है। यह रा ाटुम्बिक या भौति बल व्यर्थ है। मुझे पर त्मा का बल प्राप्त करना चाहिये। इस स्थूल बल को छोड़कर निर्बल बनना ाहिये। निर्बल ा र्थ ायर बनना नहीं किन्तु अभिमान के बल को, ाग कर अन्तर्बल–परमात्मबल की प्राप्ति करना है। उस बल को प्राप्त करने के लिए छोटे बल को छोड़ना ाहिये। जो त्याग किये बिना कुछ ग्रहण करता है वह चोरी करता है। बदला चुकाये बिना जो स्वयं ले लेता है और कुछ देता नहीं वह ोर है। यदि मुझे परमात्मा का बल ग्रहण करना है तो ना बल उसे समर्पण कर देना चाहिये।

इतना सोचकर द्रौपदी ने अपने आप को परमात्मा की रण में सौंप दिया। हे प्रभो! ब तू ही मेरा आसरा है। बस, यह कहते ही उसका चेहरा खिल उठा। उसमें ईश्वरीय-तेज प्रकट हो गया। 'मैंने कितनी भूल की जो दूसरों से रक्षण की आकांक्षा की। और ये मांस के लोभी कुत्ते मेरा शरीर चाहते हैं तो लो मैं अप ा शरीर ही त्यागती हूं और अन्तर्यामी की रण में जाती हूं।'

द्रुपद सुता निर्बल भई ता दिन गहि लाये निज धाम।
दुःशासन की भुजा थकित भई बसन रूप भये श्याम ॥ सुनेरी०॥

द्रौपदी के द्वारा प्रभुशरण स्वीकारते ही ईश्वरीय शक्ति प्रकट हो गई। दुःशासन की भुजायें उसका चीर हरण करते रते थक गईं, मगर वह नग्न न हुई।

अब आप लोग विचार करिये कि कौनसा वल वड़ा है। धन, कुटुम्ब और शरीर का वल या आत्मिक वल ! अंत में हाथ में तलवार लेकर धृतराष्ट्र आये। वे कहने लगे कि यह मेरे कुल का कलंक है और वंश नाशक है। दुःशासन भाग गया। धृतराष्ट्र ने द्रौपदी से अपने पुत्रों को क्षमा करने की प्रार्थना की और इच्छित वरदान मांगने की वात कही। द्रौपदी ने विचार किया कि मांगना कोई अच्छी वात नहीं है। किन्तु ये वृद्ध हैं और इनका सत्कार करना आवश्यक है, इनकी वात टालना अच्छा नहीं, अतः कुछ मांगना चाहिये। उसने धृतराष्ट्र से कहा कि मुझे और कुछ नहीं चाहिये इतना चाहती हूं कि मैं और मेरे पति स्वतंत्र हो जावें। हमारी परतंत्रता मिट जानी चाहिये। धृतराष्ट्र ने कहा तथास्तु। तुम और तुम्हारे पति स्वतंत्र हैं। और कुछ मांगो। मगर द्रौपदी ने कहा अव कुछ नहीं चाहिये। मेरे पति स्वतंत्र होकर सव कुछ कर सकते हैं।

आज कल लोग पैसे के गुलाम वने हुए हैं। उन्हें धन जितना प्यारा है, स्वतंत्रना उतनी प्यारी नहीं। लाम लोग स्वतंत्रता का मूल्यांकन नहीं कर सकते। उ ो यदि कुछ मांगने के लिए कहा जाय तो वे स्वतंत्रता न मांग र दौलत पसन्द करेंगे। यह लामी निशानी है।

अंत ॅ धर्मराज युधिष्ठिर की विजय हुई, यह सर्व विदित है। जो धर्म पर आस्था र ता है उसकी दा विजय हो ॅ है, यह निश्चित बात है। ाप ोताजन भी यदि र्म पर विश्वा र ॅ गे तो ापका ल्याण है। इतना व ा, जिसे हृदयंगम रना आ र्त्तव्य है।

२३-८-३६
राजकोट

२
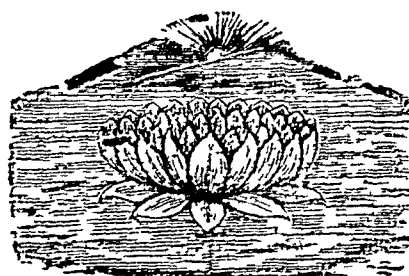
कन्या और पुत्र ा समानाधि ार

श्रेयांस जिनंद सुमर रे ।

प्रार्थना—

यह ग्यारहवें तीर्थंकर भगवान् श्री श्रेयांसनाथ की प्रार्थना है। इस प्रार्थना में भक्त कवि, जगत् के जीवों को मोह की निद्रा त्यागकर ईश्वर भजन की पेरणा प्रदान करता है। भक्त कहता है कि हे प्राणियों ! तुम्हे अपने आप का भान नहीं है, तुम अपने को नहीं पहचानते हो अतः मोह नींद में सोये हुए हो मुझे अपना भान है। मैं जानता हूं कि मैं कौन हूं, मेरा खरा स्वरूप क्या है अतः मैं सदा जाग्रत रहता हूं। तुम को भी प्रेरणा करता हूं कि भाई जागो। कब तक इस गहरी नींद

में ोये रहोगे। जाग र परमात्मा का ध्यान रो, स्मर करो यह सुन्दर सहयोग मिला हु । है। मनुष्य जन्म और सद् बुद्धि त हुई है।

चेतन जान कल्याण करन को आन मिल्यो अवसर रे।
शास्त्र प्रमाण पिछान प्रभु—गुण मन चंचल थिर रे॥

'कैसे रूं और क्या रूं' इस उधेड़ बुन को ग दे। स्थिर चि होकर प्रभु का भजन कर। । —आगम ो ाण भूत मान कर उस में जैसा मार्ग या है तदनुसार । रण कर। तेरी छोटी बुद्धि हर बात की तह त नहीं पहूंच सकती तो शा ो ाण मान कर उनमें वर्णित ाधकों की र्या के अनुसार तू भी आचरण कर।

यद्यदा चरति श्रेष्ठस्तदेवेतरो जनः।

श्रेष्ठ पुरुष जैसा । रण करते हैं, वैसा ही इतर मा समाज भी करता है। शा सार प्रभुके र्णों पहचान रके कल्याण मार्ग में लग जा।

। स्वयं प्रमाण हैं। उ के लिए किसी दूसरे प्रमाण की आवश्यकता नहीं है। ाजकल लोग पनी बुद्धि से शास्त्र को ैलने लगते हैं। अपनी बुद्धि के प्रमाण से । ो स्वीकार करते हैं। किन्तु यह नहीं देखते कि महा ानियों के द्वारा बनाये हुए हैं। तुम्हारी छोटीसी बुद्धि उनके ामने मुद्र बिन्दु के समान है। ानियों ने पने ज्ञान और अ भव से हर बात को तौल र । रखी है। ान और

क्रिया से जो बात ठीक सिद्ध है वही शास्त्र में प्रतिपादित है। कदाचित् कोई कहे कि यदि शास्त्र प्रतिपादित बातें स हैं, तो उन में किसी किसी को भ्रान्ति क्यों पैदा होती है? भ्रांति का कारण समझने वाले की बुद्धि में रहा हुआ है। मनुष्य अपनी अपूर्णता के कारण अभ्रांति के स्थान में भ्रांति पैदा कर लेता है। यदि शास्त्र की किसी बात में सन्देह पैदा हो तो भी यह वीतराग की वाणि है ऐसा मानकर उस पर विश्वास र गेगे तो आपको लाभ ही होगा। यदि शास्त्रकथित किसी बात में विकार मालूम दे तो उसे वीतराग वाणि नहीं मानना चाहिये। किन्तु निर्विकारी बात को मानने में तनिक भी देरी न करनी चाहिये। यह सुन्दर अवसर मिला है। इसका सदुपयोग करो। मानव भव कितनी कठिनाई से प्राप्त हुआ है, इस विषय में महावीर भगवान् ने गौतम से कहा है—

वणस्सइ कायमइगओ, उक्कोसं जीवो संवसे।
कालमणंतं दुरंतयं, समयं गोयम! मा पमायए॥

हे गौतम! संसार की स्थिति बड़ी विकट है। यह आत्मा उस वनस्पति काय में भी रह आया है जिसका अन्त आना महाकठिन है। उसमें अनन्त काल बीता कर अनेक योनियों में होता हुआ यह मानव रीर प्राप्त किया है। इस अवसर को समझ और समय मात्र भी प्रमाद मत कर।

भगवान् महान् वक्ता थे और गौतम महान् श्रोता थे। उन्होंने भगवान् के हितोपदेश को अपना कर जीवन कल्याण किया। किन्तु हम लोगों को क्या करना चाहिये यह वि ार

रो। परमात   स्मरण और भजन करना सब पसन्द रते हैं। किन्तु उसमें विघ्न क्या है उस पर ध्यान दो। मेरे या के अनुसार पुद्गलों की चाह ईश्वर भक्ति में सबसे अधिक वा क है। पुद्गल ाह मिट जाने से ईश्वर में लीन होने में कोई बाधा नहीं रह जाती। वैसे जड़ पदार्थों की चाह मिटाना ठिन मालूम देता है किन्तु सोचा जाय तो वस्तुतः यह कार्य बड़ा सरल है। जीव स्वयं न तो पुद्गल है और न पुद्गलों । ामी। हा है —

जीव नहीं पुग्गली नैव पुग्गल कदा,
पोग्गलाधार नहीं तासरंगी।

ऐसी दशा में पुद्गलों की ाहना मिटा देना ठिन है। यदि पुद्गल चाह मिटाना असंभव कार्य होता तो गवान् ऐसी ाह मिटाने का कभी उपदेश न देते। जीव ने अपने ान के कारण इस कार्य को कठिन मान र । है। जैसे कोई मनुष्य अपनी अज्ञानता के कारण विषधर सर्प को पुष्प की माला मान लेता है या शीप को चांदी मानकर पकड़े रह है। यदि कोई हितैषी उसे समझा 'है कि रे यह तो विष धर र्प है। यदि काट ायेगा तो तेरा जीवन नष्ट हो जायगा। इस को छोड़ दे। और जिसे तू चांदी मानकर बोझा ढोये हुए है ांदी नहीं किन्तु शीप है। इसे छोड़ दे। किन्तु पने ान के कारण वह मूर्ख हितैषी मित्र की बात नहीं मानता और अहितकर । रण करता है। वैसे ही अज्ञानता के ारण ंसार में मनुष्य, स्त्री त्र वैभव ादि को । मझता

है और उनमें चिपटा रहता है। परमज्ञानियों के उपदेशक पर ध्यान नहीं देता। वह समझता है कि मेरे सारे कार्य पुद्‌गलों से ही चलते हैं। खाना पीना पहनना ओढ़ना निवास करना आदि सारे कार्य पुद्‌गलों से होते हैं। इनको कैसे छोड़ा जा सकता है। जब तक समझ में अतर न पड़े तब तक छोड़ना असंभव है। जब मनुष्य समझ जाय कि अहो! यह तो विष-धर है, तब क्या एक क्षण के लिए भी वह उसे छोड़ने में रुकेगा। नहीं। इसी प्रकार जब जीव को विवेक हो जाता है तब पुद्‌गल चाह मिटाना सबसे सरल काम है। पुद्‌गलों का उपयोग करना दूसरी बात है और पुद्‌गलों की चाह करना दूसरी। किसी वस्तु की आसक्ति बंधन का कारण है।

ांप को छोड़कर मनुष्य बड़ा प्रसन्न होता है कि अच्छा हुआ जो मैंने उसे छोड़ दिया। नहीं तो काट खाता। छोड़ने का उसे अफसोस नहीं होता। कारण कि अब उसको सांप का वास्तविक ज्ञान हो गया है। इसी प्रकार ज्ञानीजनों को अपनी छोड़ी हुई ऋद्धि सिद्धि के लिए दुःख नहीं होता। बल्कि वे यह विचार करते हैं कि जो हमारी वस्तु न थी उसे अपनी मानकर इतने काल तक बड़े दुः उठाये। अब इससे छुटकारा हो गया है अतः निज आनन्द और निज गुण में विचरण करने का अच्छा अवसर हाथ लगा है। सांप का डंक एक जीवन बिगाड़ता है किन्तु पुद्‌गलों का डंक अनेक जीवन बिगाड़ता है। इस प्रकार विचार कर पुद्‌गल चाह मिटाकर प्रभु का भजन करो।

शास्त्र

राजा श्रेणि को नाथी मुनि इसी प्रकार । उपदे देते हैं। राजा ने मुनि से कहा था कि आपने भर युवावस्था में ंसार के भोग छोड़कर योग क्यों स्वीकार किया। ।पको कि ने भर दिया था। इस पर मुनि ने कहा कि राजन्! मुझे किसी ने नहीं भरमाया। मेरी आत्मा के भीतर से ही यह ।वाज आई कि ये बाह्य पदार्थ तेरे नहीं हैं। तू इन ो अपना नकर भूल कर रहा है। मेरी ात्मा ने ंसार के पदार्थों का सच्चा रूप जानकर, उन्हें त्यागा है। जब राजाने यह पूछा कि मुनिवर! आपने संसार का सच्चा रूप कि प्रकार जाना। तब मुनि ने अपनी पूर्वावस्था का सारा हा सुनाकर साधु बनने का कारण सम या। यहां अभी न तो राजा श्रेणिक है और न नि। अभी आप और मैं । इस कथा का रस तभी मिल सकता है जब आप और मैं श्रेणिक और मुनि की तरह बनकर सुने सुनावें। भाड़े के टट्टू कहने वाले हों और भाड़े के टट्टू ही यदि सुनने वाले हों तो वह र से उत्प हो कता है, जो मूल कथा में भरा पड़ा है। महाज्ञानी ही इ कथा । रस प्रकट कर सकते हैं। न्तु अभी तो यहां मैं हूं अतः मुझे ही पनी ल्प बुद्धि के अनु- र इस । विवरण हना होगा।

थी मुनि ने राजा से हा कि मेरे शरीर में उज्जव वेदना उत्पन्न ई। लोग वेदना को निष्ट का ारण मानते हैं। कि मेरे लिये वह वेदना ंयम । कारण बन गई।

मेरी वेदना को मिटाने के लिये मेरे कुटुम्बियों ने अनेक प्रकार के उपाय किये। मगर कोई उपाय कारगर न हुआ। अंत में मैं इस निर्णय पर पहुंचा कि बाहर के साधन मेरी वेदना मिटाने में सर्वथा असमर्थ हैं।। राजन्! यही मेरी अनाथता है।

भइणी ओ मे महाराय! सगा जिट्ठ कणिट्ठगा।
न य दुक्खा विमोयन्ति एसा मज्झ अणाहया॥

राजन् मेरे छोटी और बड़ी बहनें भी थीं। वैसे तो धर्म के नाते संसार की किसी भी स्त्री को बहन कहा जा सकता है। किन्तु मेरे सगी बहनें थीं। सहोदरा अर्थात् मेरी माता के उदर से जन्मी हुई बहनें थीं। वे मेरा रोग मिटाने के लिए जो कुछ कर सकती थीं, किया। किन्तु मेरा रोग न मिटा।

यहां यह प्रश्न खड़ा हो सकता है कि जब माता पिता और भाई के विषय में यह कहा जा चुका है कि वे रोग नहीं मिटा सके तो बहन का अलग जीक्र करने की क्या आवश्यकता थी। जहां बड़े का प्रयत्न काम नहीं करता वहां छोटे का प्रयत्न क्या करेगा। गेस की बत्ती भी उजाला न कर सकी तो टिमटिमाते दिये की बत्ती क्या करेगी?

इस प्रश्न का उत्तर यह है कि संसार में बड़ी विचित्रता देखी जाती है। कभी २ जो काम बड़े आदमी नहीं कर सकते वह छोटे आदमी करते हुए दे जाते हैं। बड़ी शक्ति से जो नहीं बन पाता वह छोटी से हो जाता है। उदाहरण के तौर

पर समझियेगा कि सुनार सोने चांदी की झलाई म
सूर्य के प्रकाश से नहीं कर सकता। उसके लिए दीप ।
प्रका उपयोगी होता है। सूर्य का अधिक प्रका क्या
का। इसी प्रकार कई स्त्रियां सूर्य के रहते हुए भी दीपक ज ा-
र उसे नमस्कार करती हैं। वे ऐसा क्यों र हैं इस ।
ारण ोजने का अभी अवसर नहीं है किन्तु यह बात सत्य है कि संसार में बड़ी विचित्रता है। मेरी मझ के अनु-
ार संसार की विचित्रता बतलाने के लिए ही बहन वर्णन किया जाना संभव है। विचित्रता के कारण ही संसार संसार हला है।

तथा जै ा भाई ा भाई से सम्बन्ध है वैसा ही बहन ा भाई के साथ है। यदि ंसार में भाई हों और बहनें न हों तो क्या ंसार ल सकता है? कदापि नहीं। ि र भी ई लोग इस महत्त्वपूर्ण दे पर विचार नहीं करते। और लड़की होने पर प्रसन्न होने के स्थान पर अप्रस होते हैं। ई ाविका नाम धराने वाली बाइयां लड़की होने पर जापे (सुवावड़) में वह सामग्री नहीं ाती जो लड़का होने पर ाती हैं। कहती हैं, क्या करें लड़का होता तो बादाम ादि ातीं। लड़की हुई है अतः ाने का मन नहीं होता। क्या इस प्रकार लड़के लड़कियों में भेदभाव रना उ त है? जिन को आप नार्यदेश वासी कहते हो वे यूरोपियन लोग भी लड़के लड़कियों में प पात नहीं करते तो क्या श्रावक नाम धराने वाले लोग ऐसा करेंगे? यूरोपियन देश सी लड़के और लड़कियों में भेद नहीं मानते हैं। वहां लड़ ा न होने पर

लड़की अपने पिता की सम्पत्ति की अधिकारिणी मानी जाती है। माता पिता के नाते भी यह अनुचित है कि अपनी संतान भेदभाव र । जाय। भेदभाव न होना चाहिये। समभाव हो चाहिये। पुत्र और पुत्री दोनों के होने से यह संसार रूपी गाड़ी चल रही है। संसार रूपी गाड़ी के ये दोनों पहिये हैं। बहिन को लेकर स्त्री जाति का महत्त्व बताना भी शा कार उद्देश्य हो सकता है।

अनाथी मुनि ने बहन-भाई का नाता छोड़ दिया था और वे मुनि बन चुके थे फिर भी भाई और बहन का जो नाता है उसे वे स्वीकार करते हैं। और कहते हैं कि मेरे कष्ट मिटाने के लिए मेरे माता पिता और भाईयों ने जो प्रयत्न किये, मेरी बहिनों ने उनसे कम नहीं किये। जब कि त्यागी महात्मा भी बहन का हक़ स्वीकार करते हैं तब आप लोग गृहस्थ होकर कन्या का हक़ क्यों नहीं मानते हैं! क्यों पुत्र और पुत्रियों के अधिकार में भेदभाव र ते हैं।

आजकल कई लोग यह कहते भी सुने गये हैं कि हमें त्र पुत्री किसी की जरूरत नहीं है। भारत की आबादी बहुत बढ़ चुकी है अत. संतानोत्पत्ति करना इस वक्त उचित नहीं है। ऐसे लोगों से मैं पूछता हूं कि आबादी क्यों बढ़ गई? क्या आसमान में से मनुष्य टपक पड़े? ऐसा तो नहीं होता। तो फिर म ना पड़ेगा कि विषय वासना के सेवन से सन्तान वृद्धि होती है और आबादी बढ़ती है। यदि संतानोत्पत्ति रोकना है तो विषय वासना को रोकना चाहिये। विषय वासना

तो नहीं छुटती और गर्भा य कटवा डालना आदि जैसे कृत्रिम उपाय ाम लिए जाते हैं। यह कि ा दुष्कर्म है। इस दुष्कर्म के विषय में इ चार से दुः हो हैं कि हे प्रभो ! पराधीन भारत की ता कि ार निर्बे बनाई जा रही है। इसका कितना पतन किया जा रहा है। जब तक ी को संतति होती रह है तब त तो म से कम संतान होने के कुछ मास पूर्व और पश्चात् ब्रह्मचर्य पालने का प्रसंग रहता है और मन या बेमन ब्र चर्य का पालन रना पड़ता है। किन्तु जब बच्चादानी नि लवा दी जाती है तब अब्रह्मचर्य से रोकने के लिए क्या साधन व जाता है ! स्त्री और पुरुष दोनों स्वच्छन्द जाते हैं। उनको किसी प्रकार नियम नहीं रहता। हां, सन्तान के पालन पोष जिम्मेवरी से वे बच जाते हैं किन्तु पना स्थ्य और धर्म नष्ट रने से कैसे बचेंगे। संतति निरोध से विषय सना हो जा हो ऐसा नहीं देखा जाता। बल्कि विषय वासना की वृद्धि देखी जाती है। जिन रि यों ो ंतान नहीं होती उनकी भोगेच ा विषय वासना बढ़ी हुई रहती है, नहीं होती। संतति निरोध से भोगेच्छा बढ़ेगी और पानी की तरह वीर्य बहाया जायगा। इस से निर्बलता आयेगी। ैर निर्बलता से अन्य अनेक दुर्गण पैदा होंगे।

जि प्रकार मोती की किमत पानी से और हीरे कीमत उसके तेज से है। उसी प्रकार पुरुष की कीमत उ के वीर्य से है। वीर्य ही से ीर्थंकरादि महा रुष बने हैं और आपका रीर भी वीर्य से ही पैदा हुआ है। तः वीर्य ना

से बचना हिये। यदि संतति--निरोध रना है तो गेच्छा को रोकना चाहिये। इसके लिए यही एक मात्र उचित । न है। ब्रह्मचर्य का बड़ा महत्त्व है। तीर्थंकर स्वयं ह गये हैं कि यद्यपि हम माता पिता के वीर्य से पैदा हुए हैं फिर भी त्मा का उद्धार तो ब्रह्मचर्य के पालने से ही होता है। मैं । करता हूं, जैन समाज कृत्रिम उपायों के द्वारा संत निरोध न करेगी। कृत्रिम उपाय का उपयोग करना महान् नीचता और अनर्थकारी है। इसका परिणाम बड़ा भयंकर है।

अनाथी मुनि कह रहे हैं कि राजन्! मेरी बहनें मेरा हित चाहती थी। वे मेरे सु में खी और दुः में दुःखी थीं भाई कर्त्तव्य है कि वह बहिन को कुछ देवे। उ से कुछ लेने की आश न करे। उसे दुःखी न रहने दे, खी वे। उस व यदि उनको कुछ जेवर दिये जाते तो भी वे खुश न होतीं। वे कहती थीं कि हम जेवर आदि के लिए बहनें नहीं बनी हैं किन्तु भाई के सु दुः में साथ देने के लिए बहनें बनी हैं। राजन् उस व मेरा कर्त्तव्य था कि मैं उनको खी करता। किन्तु मैं स्वय दुःखी था अतः उनका दुः न मि सका। यह दे कर मुझे ज्ञान हुआ कि यह शरीर ही दुः । कारण है। इसलिए इस शरीर से सदा के लिए छुटकारा ने का प्रयत्न करना चाहिये। मैं स्वयं मेरा दु मिटा सकता । दूसरे की कोई ताकत नहीं जो मेरे दुः मिटा सके।

मुनि ने राजा से भी पूछा कि क्या तुम्हारी बहनें तुम्हारा दुःख मिटा सकती हैं? यह सुनकर राजा विचार में पड़ गया

कि बेचारी बहनें किसी　। दुः　　से मिटा सकती हैं। कोई दूसरा कुछ नहीं　र　　ता। जो कुछ　र　　ता है वह पनी　ात्मा ही　पने लिए कर सकती है।

सुदर्शन-चरित्र----

सुद　न की कथा कहते　ए　छ विषय छूट गया है। दूसरी तरह से　वेचन कर लिया गया था। मैंने　भी　जो कुछ कहा है उसमें एक उत्सव की बात कही है। किन्तु कथा दे　ने से　ात हुआ कि दो उत्सव हुए थे। और दोनों का इस　था से सम्बन्ध है। अतः जहां से इस विषय में सुधार करने की जरूरत है, वहां से पुनः कथा कहता हूं।

कपिला सुदर्शन की दृढ़ता और महत्त्व सम　चुकी थी। वह जान गई कि यह पुरुष किसी के हाथ में आने वाला नहीं है। कुछ दिन बाद इन्द्रोत्सव का समय आया। राजा ने प्रजा के लिए घोषणा करवाई कि सब लोग मेरे साथ नगर के बाहर उत्सव मनाने आवें। जिन लोगों को आमोद प्रमोद और उत्सव प्रिय होते हैं उनके लिए ऐसी घोषणा वरदान सिद्ध होती हैं। प्रकृति के स्वभावानुसार कार्य कराने में अधिक प्रयत्न की अ　श्यकता नहीं होती। प्रकृति विरुद्ध कार्य कराने में　धिक जोर लगाना पड़ता है। पानी को नीचे की ओर ले जाने में विशेष-प्रयत्न　अपे　। नहीं रहती। किन्तु उसे　पर चढ़ाने में बड़े २ एंजिनों की आवश्य　ता होती है।

राजा　ाज्ञा से रानी,　पिला और सेठ　दर्शन की पत्नी मनोरमा तीनों नगर के बाहर उत्सव में गई। मनोर

को दे कर कपिला और रानी में जो वार्तालाप हुआ वह पहले कहा जा चुका है। यद्यपि कपिला ने सुदर्शन के समक्ष यह प्रतिज्ञा की थी कि वह किसी के सामने उस काण्ड का जिक्र न करेगी और सुदर्शन ने भी वचन दिया था कि वह भी इसे गुप्त रखेगा। किन्तु कपिला अपनी प्रतिज्ञा पर कायम न रह सकी और उसने सारा हाल रानी के सामने प्रकट कर दिया।

सुदर्शन का अब क्या कर्त्तव्य है इसका हम याल करें। कपिला अपनी बात पर कायम न रह सकी और उसने रानी के समक्ष सारा काण्ड कह सुनाया, क्या सुदर्शन भी कपिला की तरह उसकी बात प्रकट कर दे? सुदर्शन को अपनी प्रतिज्ञा पालनी चाहिये या नहीं? कई लोग यह कह कर अपना वचन पालने से छूटना चाहते हैं कि जब सामने वाला अपनी बात पर टिका न रहा तो हम क्यों अपनी बात पर दृढ़ रहें। किन्तु यह दलील पोची है। दूसरा वचन भंग करता है तो हमें भी करना चाहिये यह कहां का नियम है! ज्ञानी और सत्पुरुष अपना वचन नहीं तोड़ा करते। वे प्राण छोड़ना पसंद करते हैं किन्तु वचन छोड़ना नहीं चाहते। यदि सुदर्शन की तरह कपिला भी अपनी बात पर कायम रहती और किसी के सामने अपना आपसी काण्ड न कहती तो आगे घटने वाली अनर्थ परंपरा न घटती। प्रतिज्ञा पालन से बड़ा लाभ होता है।

कई लोग यह कहकर छूट जाना चाहते हैं कि हमने तो बात भर कही थी। किन्तु बात का बतंगड़ बन जाता है

इस । गाल र र होई त हना ।हिये। इसी बात हो ध्यान में र कर ी था राजकथा आदि को रोका गया है। धर्म था । जितना सहारा लिया जाय उतना अच्छा है।

कपिला ने कहा कि सुदर्शन नपुंसक है, उसके त्र से हो सकते हैं। इस पर अभया ने उत्तर दिया था कि यह तेरी भूल है। वह तुझे भ्रम में डालकर ब निकला है। उसके पांचों ही इस बात की साक्षी हैं कि वह पुरुषत्व-सम्प है। पिता का रूप गुण पुत्र में उतर आता है। तू इन त्रों को दे कर सुदर्शन से मिलान कर। कई लोग तो यहां तक कहते हैं कि पि ही पुत्ररूप में उत्पन्न होता है। पिता पनी मानसिक वाचिक आर कायिक शक्ति पुत्र में उतार देता है। दूसरी बात यह सेठानी कितनी शान्ति से बैठी हुई है। यदि यह दुरा ।रिणी होती तो इतनी शान्ति से भी नहीं बैठ पाती। इस आं ों में और शरीर में चंचलता होती।

पिला विचार रने लगी कि सचमुच ये लड़के सुद-न के ही हैं। मैं ठगी गई । इतना विचार करके यदि पि चुप हो जाती तो ागे बात न बढ़ने पाती। किन्तु दुष्ट लोग पनी शक्ति का उपयोग दूसरों को पराभव रने में लगाते हैं। इ नियम के अनु र कपिला पने ापको न रोक सकी और दुष्टता रने लगी। उसने अभ रानी से हना शुरू कि कि मैंने सुदर्शन की बड़ी परी ा

की है। वह बड़ा दृढ़ और अडिग पुरुष है सुरनारी भी उसे डिगाने में समर्थ नहीं हो सकती।

अभया कहने लगी—कपिला! तू अपने मन के अनुसार दूसरों की शक्ति का माप करती है, यह तेरी भूल है। रि यां क्या नहीं कर सकतीं। पुरुष लोग स्त्रियों के आं के इशारे पर नाचते है। बड़े २ राजाओं को अपने आं के इशारे से मौत के घाट पहुंचा सकती हैं। बेचारा सुदर्शन किस बाग की मूली है, बड़े २ योगी त्रिया चरित्र के सामने फैल हो गये हैं।

कपिला अभया का जोश बढ़ाने लगी कि रानी जी! अभिमान मत करो। मैं आपकी बात तब मानूंगी जब आप सुदर्शन को अपने काबू में कर दिखायेंगी।

अभया कहने लगी कि कपिला! तू मेरे कारनामे दे ती रह । मैं किस प्रकार सुदर्शन को फांसती हूं और अपने काबू में करती हूं। मैं यह प्रतिज्ञा करती हूं कि यदि मैं दर्शन को अपने वश न कर सकी तो तेरे सामने अपना मुख न दि ाऊंगी।

कपिला और ताव देने लगी। मैं णी हूं। ब्राह्मण ढीले ढ़ाले होते हैं। और आप क्षत्रियाणी हैं। क्षत्रिय बड़े वीर और तेजस्वी होते हैं। आप अपनी प्र ज्ञा किस प्रकार निभाती हैं यह मैं देखना चाहती हूं। आपकी प्र ज्ञा पूरी होने पर मैं आपको अपना गुरू मान लूंगी।

लोग झूठी प्र न्सा में बहुत फूल जाते हैं। दूसरे लोग ऐसे ाला रहते हैं जो व्यर्थकी प्रशं ा रके किसी सीधे सादे व्यक्ति से अनर्थ रवा डालते हैं। उसका फल उ मूर्ख ो भोग पड़ता है। अतः झूठी प्रशं ा के र में न फंसना चाहिये। झूठी प्रशंसा में ंसकर किसी का हित किया तो अभया का सा ाम गिना जायगा। ाहे साधु हो ाहे गृहस्थ झूठी प्रशंसा में फंस र दू रों को गलत मार्ग में न घसीटना हिये। हम साधु भी यदि झूठी प्रशंसा में ं र आप लोगों को ठगने लगें तो हमारा घोर पतन है।

झूठी प्रशंसा में ंस र अभयारानी ने सुदर्शन को व रने की प्र ि्ञा की है। यह ारी बात इन्द्रोत्सव के समय की है। कौमुदी महोत्सव के समय क्या हुआ तथा इन्द्रोत्सव और कौमुदी महोत्सव में क्या अंतर है यह यथावसर आगे बताया जायगा।

नोटः—बी में चार दिन पूज्य श्री तपस्या होने से स्वयं व्याख्यान न रमाया।

२६–८–३६

राजकोट

२१

शत्रु को मित्र बनाने की ला

प्रणमूं वासु पूज्य जिन नायक ! सदा सहायक तू मेरो ।

प्रार्थना—

यह बारहवें तीर्थंकर वासुपूज्य स्वामी की प्रार्थना है। प्रार्थना में प्रति पादित सब भावों पर नजर डालने से अने पहलु सामने उपस्थित होते हैं। किन्तु उन सब पर प्रका डालना मेरी शक्ति के बाहर की बात है। जिस विषय विचार मेरी बुद्धि हृदय और विवेक में अभी उपस्थित है, उ पर थोड़ा व व्य है, जो आपके सामने र । हूं।

परमात्मा की प्रार्थना परमात्मा में विलिन होने के लिए अनन्य भाव से की जाती है। यह आत्मा भय का मारा नेक

लोगों का आसरा लेता फिरता है। भटकते भटकते ब उसे
हीं सुरक्षित सहारा न मिला तो वह इस परिणाम पर
पहुंचता है कि जिसकी शरण में जाता हूं वह स्वयं भयभीत
है। जो स्वयं भयभीत है वह दूसरों को निर्भय से र
सकता है? भूा व्यक्ति दूसरों को क्या खिला ता है
और प्यासा दूसरों की क्या प्यास बु ायेगा। जो खुद नाथ
है वह दूसरों को क्या शरण देगा? सार के जिन २ लोगों
की शरण में मैं गया वे सब मुझे अनाथ ही मालूम हुए। :
ऐसे व्यि की शरण में जा जो स्वयं नाथ हो-निर्भय हो।
इस प्रकार विचार र भक्त कहता है—

विषम वाट घाट भय थानक, परमेश्वर शरणो तेरो।

जो परमात्मा का सदा सहायक बना रहता है। उसकी
रण जाने से आत्मा निर्भय बन जाती है। अनन्य भाव से
परमात्मा की शरण होने के लिए ही प्रार्थना की जाती है।
आप लोग अपनी आत्मा से पूछिये कि वह इतर पदार्थों ा
ा ध्यान छोड़ कर अनन्य भाव से प्रभु की प्रार्थना रने के
लिए तैयार है या नहीं? वैसे जबाब से कौन इन्कार रेगा
कि मैं प्रभु शरण में नहीं जाना चाहता। किन्तु उ के ाथ
जो शर्त लगी हुई है उसे पुरा करना सरल काम नहीं है।
अनन्य भाव प्राप्त करना संसार की झंझटों में से हुए व्यव-
हारी व्यक्ति के लिए कठिन है। वह सो ा है कि यह मार्ग
बड़ा विकट है। कहीं ऐसा न हो कि मैं बी ही में ट
जाऊं। संसार के पदार्थ भी छूट जाय और परमात्मा भी

मिले ऐसे विचार आना साधारण बात है। किन्तु ज्ञानी जन कहते हैं कि जीव ! तू परमात्मा की शरण में जाने का एक बार पक्का निश्चय करले। फिर सारे विघ्न अपने आप नष्ट हो जायंगे। अनन्य भाव से शरण गहने पर विघ्नों का क्या म है।

खल दल प्रबल दुष्ट अति दारुण जो चौतरफ करे घेरो।
तदपि कृपा तुम्हारी प्रभुजी अरियन होय प्रगटे चेरो॥

भक्त कहते हैं कि हे प्रभो ! हमें ज्ञानियों से तेरी महिमा सुनकर विश्वास होता है कि जो तेरी शरण गहता है वह निर्भय बन जाता है। तलवार लेकर मारने के लिए समक्ष उपस्थित शत्रु भी तेरा शरण लेने से मित्र बन जाता है। मौत के घ उतारे जाने के वक्त तिनके का सहारा मिल जाय तो उसे भी जीव स्वीकार करने के लिए तैयार हो जाता है। प्रभु का सहारा सदा तय्यार है किन्तु अपनी अज्ञानता से जीव उसे भूल जाता है। और छोटे मोटे सहारे ढूंढता फिरता है। अन्य लोगों का हारा लेने से शत्रु अधिक शत्रुता धारण करता है। किन्तु वीतराग भगवान् का सहारा लेने से शत्रु भी शत्रुता छोड़ कर मित्र भाव धारण कर लेता है। भक्षक, र क बन ज । है।

श्रद्धालु लोग विना कर्क वितर्क किये इस बात पर विश्वास कर लेंगे। किन्तु यह जमाना तो तर्कवाद का है।

य वैज्ञानि युग है। इ में हर बात तर्क पर सी जाती है। यदि वह उसमें ठी उतरे तब मानी जाती है। अतः इ विषय में थोड़ा ार विचार किया जाता है।

क्या यह बात पूर्ण स है कि परमात्मा की रण में जाने से शत्रु भी मित्र बन जाते हैं? यदि ऐसा है तब तो राजा लोगों ो सेना रखने की आवश्यकता नहीं। देश पर किसी विरोधी राजा के आक्रमण करने पर परमात्मा का शरण हण करने से काम ल जायगा। आक्रमण कारी फौरन मित्र बनकर सामने आजायगा। कितना सस्ता सौदा है यह! किन्तु बात ऐसी नहीं है। यह तो कोरी कल्पना है कि शत्रु मित्र बन जाता है। इस उपदेश से न मालूम देश किस स्थिति में पहुंच जायगा। सारा संसार अंधा धुन्धी में फंस जायगा।

इस तर्क का समाधान यह है। परमात्मा की रण जो विचार किया जा रहा है वह आध्यात्मिक दृष्टि से किया जा रहा है। आध्यात्मिक विचार को भौतिक कार्य से तोलना नुचित है। लोग भौतिक बात को दे ते हैं। किन्तु हमारी आत्मा का भला कैसे हो, इस आध्यात्मि तत्त्व को नहीं देखते। शत्रु और ि तुम्हारी वृत्ति में रहे हुए हैं। यदि परमात्मा की शरण लेकर, जिसे तुमने त्रु मान र ा है, मित्र बना लोगे तो भौतिक युद्ध की आवश्यकता न पड़ेगी। आध्यात्मिक शत्रु है इसलिए भौतिक शत्रु भी है। यदि मन में राग-द्वेष और लोभ मोह की भावना नहीं है तो बाहरी शत्रु कैसे टि स है। वह मित्र बन जायगा! हमारे स र्थ के कारण

ही किसी को शत्रु या मित्र माना जाता है ! जब स्वार्थ ही न रहेगा तो शत्रु कैसे रह सकता है ! लोग केवल भौतिक बात को दे ते हैं आध्यात्मिक को नहीं ! यह चालबाजी है ! यह अनन्य भाव से प्रभुशरण जाना नहीं है ! अनन्य भाव से शरण जाने का अर्थ है पहले आध्यात्मिक शत्रुओं—काम क्रोध लोभ भय मोह आदि को मिटाओ ! फिर भौतिक शत्रु नहीं रह सकते ! एक भ कहता है—

ताही ते आयो शरण तिहारी ।
काम क्रोध मद लोभ मोह रिपु, फिरत रैन दिन घेरी ।
तिनाहि मिलत मन भयो कुपथ रत फिरइ तिहारे हु फेरी ॥

जिस प्रकार काच में मुख देखकर मुख की कालिमा मिटाई जाती है उसी प्रकार इस प्रार्थना में अपना चरित्र देख कर उसे धारने का यत्न करो। आपके वास्तविक शत्रु कौन हैं इस बात को समझो। भक्त कह रहा है कि मुझे काम क्रोधादि शत्रुओं ने रात दिन घेर र । है। कभी काम सताता है तो कभी क्रोध। कोई न कोई शत्रु सदा मेरे पीछे लगा रहता है। कभी २ यह इच्छा होती है कि मन के द्वारा इन शत्रुओं को दूर हटा दूं। किन्तु मन भी इन में मिल गया है। मन ने भी शत्रुओं का पक्ष ग्रहण कर र । है। वह भी इन मिल कर कुपथगामी हो गया है। जि प्रकार किसी राजा का सेनापति अपने राजा से दगा करके शत्रु पक्ष से मिल जाता है वैसे ही मेरा मन भ से दगा कर के मेरे शत्रु काम

ोभादि से मिल । है। मेरे ु काम लो ादि से मि
गया है। मेरे त्रुओं के साथ मिल र मन ने उन व
ौर धि बढ़ा दिया है। तः हे प्रभो! ब मुझे तेरे
सिवा अन्य कोई धार नहीं है। तेरी थोड़ी सी कृपादृष्टि
हो जायगी तो ये ारे शत्रु दुम दबाकर भाग ायेंगे।

इस तरह आध्यात्मि शत्रुओं को हटाने के लिए प्रभु
की शरण ली जाती है। जब आध्यात्मिक शत्रु न रहेंगे तो
बाहर के भौतिक त्रु कैसे रह सकते हैं। आप लोग पने
लिए विचार करो कि आप काम क्रोध आदि को बढ़ाने के
लिए प्रार्थना करते हो या घटाने के लिए? ज्यादातर लोग
काम क्रोधादि की वृद्धि के लिए भगवान् का आसरा लेते हैं।
यह तो काम ोधादि की शरण जाना हुआ न कि पर त्मा
की रण गहना। विषयवासना मन में र कर प्रभु की शरण
लेना प्रभु का अपमान करना है। यदि प्रभु से स्तविक प्रेम
है तब तो मन में से अन्य सब सनाओं को निकाल र
शुद्ध अनन्य भाव से भगवान् को स्थान देना चाहिए। कहना
मेरा काम है किन्तु उस पर मल करना आपका काम है।
मैं अमल करूँगा तो झे लाभ होगा और आप अमल रेंगे
तो आपको। जिसका म जो रता है तभी लाभ होता है।
प्रभु भी उसी की मदद करता है जो पनी मदद ाप रता
है। गीता में भी स्पष्ट हा है कि 'उद्धरेदात्मानात्मानम्'
आत्मा ा ात्मा से उद्धार करो। दूसरा कोई किसी का
उद्धार रने में मर्थ नहीं है। ात्मा ही ात्मा ा त्रु
मित्र है।

ऊपर से लोग यह कहा करते हैं कि हम अंतरंग शत्रुओं का नाश करने के लिए ईश्वर की शरण ग्रहण करते हैं। किन्तु ईमानदारी के साथ विचार करेंगे तो उन्हें पता लगेगा कि भीतर ही भीतर वे अंतरंग शत्रुओं का पोषण कर रहे हैं। भीतर में अनेक कामनायें छिपी पड़ी हैं। मन के अनन्त पटों के भीतर सूक्ष्म वासनाएं और इच्छाएं दबी पड़ी हैं। कभी वे छिपी रहती हैं और कभी निमित्त मिलने पर विकराल रूप धारण करके सामने आकर ड़ी हो जाती हैं। अतः तहमन तह त्त से इन भीतरी शत्रुओं को बाहर निकाल फेंकने का प्रय होना चाहिये। हम शत्रुओं से बचना चाहेंगे तो परमात्मा भी हमारी मदद करेगा। जो व्यि कुछ काम ही नहीं करता है तो उसका मित्र उसकी क्या सहायता करेगा और किस काम में करेगा। परमात्मा आपको काम क्रोध आदि से बचाने के लिए सदा तत्पर बैठा है। आप अपना स्वार्थ त्यागकर दूसरों का हित साधन में लग जाओ। परमात्मा आपकी मदद पर दौड़ा आयेगा। यदि आप से यह उत्कृष्ट मार्ग न अपनाया जा सके तो मध्यम श्रेणि के पुरुष बनकर अपने स्वार्थ के साथ दूसरे हित करो। यह तो मत करो कि अपने हित के लिए दूसरे की हानि करो।

बात करने में सब लोग अच्छी बातें करते हैं। किन्तु व्यवहार में आचरण उसके बिपरीत देखा जाता है। मनुष्य ने अपने शरीर पर पांच व लाद र हैं। कोट ि ब यान जाकेट आदि बड़ी चुस्ती से पहन र हैं। उनसे उ को गर्मी हो रही है। तकली हो रही है फिर भी शन

के लिए समर्ा ये या रिवाज के लिए मझिये व प ने ए हैं। उ र ए दूसरा ाद ् वस्त्र के भाव में नंगे बदन ि र रहा है। ठंड से सि ड़ रहा है। उसे व पर ावश्य ता है। क्या उ हीन व्यि ो दे कर व्यर्थ बोझा लादे हुए उस मनुष्य ा चि अपना बो हल्का र उ मदद करने ा हो है? ऐसा बहुत विर देखा जा है। पास में भरी हुई की पेटियों में दीम भले ग ाय मगर वे व जरूरत मंदों के उपयोगमें न आ केंगे। इ प्र ार की भा ा और ाचरण वाले व्यि क्या यह कते हैं कि हम काम, ोधादि मिटाने के लिए प्रभु शरण ग्रहण करते हैं। यदि वे एसा हते हैं तो पने ाप को ठगते हैं।

एक ादमी तीन दिन से भू ा है। दू रा भोजन र रहा है। उस पा भोजन की प्रचूर ग्री है। उ ाने के उपरांत ऐसी बहुतसी ामग्री है जिसे रख छोड़ने से उसके खराब हो जाने की भा है। फिर भी वह जिमने वाला आद ् भू ो भोजन नहीं देता है। क्या ऐसी हालत में उस बुभुक्षु की नियत उ पेट भरे प्रति अच्छी रहेगी? क्या उ को क्रो न वेगा। क्या उसके मन में यह प्र ् क्रिया न होगी कि इत लेकर बैठा है फिर भी मुझ भूखे ो कुछ नहीं देता है? इस प्रकार वह जीमने वाला उ भूखे शत्रु बन है और भू ा भी मन में उनके लिए विरुद्ध विचारणा लेता है। इ र र्थपरता ने शत्रु पैदा र लि । यदि जीमने

भूखे को दे कर प्रसन्न हो और उसे बड़े आदर और प्रेम से जी ये तो वह उसका मित्र बन जाता है। भगवान् ने देने वाले को दाता । पद प्रदान किया है और मांगने वाले को याचक का। याचक सदा दाता का ऋणि रहता है। और उसका उपकार स्वीकार करता है। यह शत्रु और मित्र बनाने रास्ता है। जिसे जो अच्छा लगे वह करे।

मैंने कई लोग ऐसे देखे हैं जिनके घरों में पुराने वस्त्रों के ट्रंक भरे पड़े हैं साल में एक बार उसको धूप खिलाकर वापस पेटियों में दा ि ल कर देते हैं मगर उनका मन इस ब के लिए तय्यार नहीं होता कि ये वस्त्र हमारे काम में नहीं आते हैं, व्यर्थ मकान रोक र । है, इनकी साल संभाल करनी पड़ती है, क्यों न इनको उन लोगों को दे दें जिनको इनकी सख़्त जरूरत है। जब कई वर्ष तक उनकी साल संभाल करते करते वे कतई जीर्ण शीर्ण हो जाते हैं तब दूसरों को देने की बड़ी कठिनाई से हिम्मत होती है। किन्तु वे वस्त्र किसी के उपयोग लायक नहीं रह जाते। यह मनुष्य के मन की कितनी विडंवना है। इसी प्रकार मिठाई या अन्य ाद्य पदार्थ सड़ जाते हैं, उनमें बदबू या फूलन आ जाती है, जब वे ाने लायक नहीं रह जाते तब दूसरों को देने का मन होता है। यदि वे पदार्थ पहले ही दिये गये होते तो किसी की आत्मा उनसे तृप्त होती और उससे शुभ आशीर्वाद प्राप्त होता। किन्तु इतना उदार मन हो तब न ? इस प्रकार की विषमवृत्ति पैदा करती है। स्वयं भूखे रहकर दूसरों को तृप्त न कर

ो तो म से म अपने । लेने के उपरान्त बचा आ अ तो दू रों के लिए दे स ने । उदाहर ारण रो।

इस ार में ऐसे लोगों की भी नारि नहीं है जिन्होंने स्वयं भूखे रह र दूसरों की आत्मा ो ान्ति ुंचाई है। पुराण में ए कथा है। एक ली दिनों से भूखे परिवार ने इकतालीसवें दिन भोजन मि ने पर भी र भूखे रहकर उससे तिथि । ा ार किया । इतना न र को तो बढ़िया भोजन बदले सादा भोजन

गह ार । पेट पा । जा स ता है। मन में दू रे भ ाई रने की वृत्ति होनी चाहिये। सादा भोजन करने से स्वयं भी ने बुराइयों से । जा हैं। इससे अपनी भलाई भी साथ साथ २ हो जाती है। यह दुष्का मय है एक ओर नेक लोग भू ों मर रहे हैं और दू री ओर जाति भोज के नाम पर माल उड़ाया जा रहा है। यह से ठीक माना जा स ा है? कदा त् कोई कहे कि जाति भो तो होना ाहिये। उनसे मैं पूछता कि क्या जाति लों को सादा भोजन नहीं दिया जा सकता? जाति ो लड्डू देने की क्या जरूरत है।

जो लोग यह कहते हैं कि हम लड्डू लि । लाये हैं अतः लड्डू ाते हैं और भुखों मरने वाले भूखों लि ाकर लाये हैं अतः भुखों मरते हैं। जिसने पूर्वजन्म में जैसा बोया है वह वै प । है। यह ठीक है लेकिन भूखों मरने लों की ह यदि होते तो ल उड़ाने लों

को क्या कहते। माना कि आप लड्डू लिखाकर लाये हैं और पुण्य से आपको लड्डू मिलते हैं किन्तु पुण्य से पुण्य बढ़ाना है या घटाना है। ठाणांग सूत्र के नवमें ठाणे में कहा है—

नव विहे पुण्णे पण्णत्ते तं जहा--अन्नपुन्ने पाण पुन्ने लयणपुन्ने आदि

अर्थात् अन्न से, पानी से, मकान से, पुण्य होता है। अन्न, पानी, मकान, शैया और वस्त्र देने से पुण्य होता है। मन वचन और काया से भी पुण्य होता है। नमस्कार करने से भी। भगवान् ने गौतम स्वामी से कहा कि हे गौतम! 'नातीति पुण्यम्' जो स्वयं को पवित्र बनाता है और जग का भी भला करता है वह पुण्य कहाता है। उन सब बातों को नव बातों में संग्रहित करके शास्त्रकार ने नव प्रकार का पुण्य बताया है। उन में सब से प्रथम अन्न पुन्ने हैं।

क्या अन्न पुण्य का मतलब ठूंस ठूंसकर ाना है? अधिक ाना अन्न पुण्य नहीं है। किन्तु अन्न को व्यर्थ न जाने देकर दूसरे को देना अन्न पुण्य है। मनुष्य ाने में भी पुण्य उपार्जन कर स ा है। उदाहरण के लिए समझिये कि एक आदमी यह सोचता है कि मै भारी भोजन करके शरीर की हानि न करूं। किन्तु शरीर निभाना है अतः हल्का भोजन करके निभा लूं। तथा जो बचत का भोजन है उसे किसी भूखे को देकर उसे शान्ति पहुंचा ।' तो ऐसा करने से वह ण्य उपार्जन करता है। इस प्रकार अन्न से पुण्य कमाया जा सकता है। लेकिन जो मनुष्य दूसरों का याल न करके खुद पेट

र लेता है वह पाप पैदा करता है। जो ण्य लेकर या है उसे क्या पाप नहीं लग सकता ? एक आदमी को सुनहरी हीरा जटित म्यान वाली तलवार मिल गई। यद्यपि यह तलवार पुण्य से मिली है किन्तु क्या उसका दुरुपयोग पाप बंध का ारण नहीं हो जाता ? अवश्य होता है। उस तलवार से मनुष्य अपने व दूसरों के बंधन भी काट सकता है और अपना तथा दूसरों का गला भी। इस प्रकार पुण्य से प्राप्त वस्तु द्वारा पाप भी हो सकता है। कहावत है कि 'आ पत्थर मेरे पैर पर गिर' अथवा 'आ बैल मुझे मार'। यदि दोनों बातें सचमुच बन जायं तो कैसा रहे। पत्थर से भलाई भी की जा सकती है और बुराई भी। पत्थर का उसमें कोई दोष नहीं होता। दोष तो प्रयोक्ता की बुद्धि में रहा हुआ है। पाप से पुण्य और पुण्य से पाप उत्पन्न किया जा सकता है।

यदि कोई कहे कि हम दान क्या दें हमारे पास दान देने के लिए कुछ है ही नहीं। तो यह कहना गलत है। यदि इंसान अपना रहन सहन बदलकर सादा रहन सहन बनाले तो वह दूसरों की सहायता कर सकता है। जैसे बहुत से मनुष्य बीड़ी पीते हैं। बीड़ी पीने से क्या लाभ होता है ? यदि बीड़ी पीना छोड़ दिया जाय तो खुद का भी भला हो जाता है और उससे बची हुई रकम से दूसरों की सहायता भी की जा सकती है। इसी प्रकार नाटक सीनेमा दे र अपना दिल और दिमाग राब किया जाता है तथा आं ों की रोशनी और जागरण से शरीर को भी हानि पहुंचती है। पैसे का भी नुक्सान होता है। यदि नाटक सीनेमा न देखे जाय तो क्या

हानी है ? उनसे बची हुई रकम से दूसरों का भला हो स ता है। यदि नाटक सीनेमा फ्त में दे ने को मिल जायं तो दे ने में क्या हानि है ? ऐसा कहने वालों से मैं पूछता कि यदि आपको फ्त में जहर ाने को मिल जाय तो क्या ाप ाना पसन्द करेंगे ? वस्तु मुफ़्त मिली है या कीमतन यह न दे ो। मगर उससे आपको हानि होती है या लाभ, यह दे ो।

जब रनिश का रंग चला था तब के लिए यह कहा जाता है कि कम्पनी वाले मुफ्त में मकान रंग दिया करते थे और चाय वाले मुफ्त में चाय पिलाते थे। आपका मकान कैसा अच्छा बन जाता है कह कर रंग चढ़ा देते थे। किन्तु जब रंग उतर जाता और मकान की सुन्दरता चली जाती तब जाकर लोग कहते कि एक बार और रंग लगा दो। मगर कम्पनी वाले कहने लगते अब तो पैसा र्च करो तब रंग मिल सकता है। चाय के पीने वालों को भी जब पीने की आदत लग गई तब पैसे लिये जाने लगे। शुरू में लोगों की आदत बिगाड़ने के लिए फ्त में चीजे दी जाती हैं। बाद में जब लोग उस वस्तु के आदी बन जाते हैं, मुफ्त में देना बंद कर दिया जाता है। मुफ्त में रंग लगाकर भारतवासियों को ऐसा शौक पैदा कर दिया कि अब करोड़ों रुपये इस निमित्त विदेश िंचे चले जाते हैं। इसी प्रकार फ्री नाट सीनेमा दिखाकर आपकी आदत नाटक सीनेमा देखने की बना दी जाती है और आप गरीबों को चू कर पैदा किया हुआ या चोरी डाका डाल कर लाया हुआ पैसा देकर न क सीने देखने लग जाते हो।

रि यां भी । ल यह हने गी हैं कि नाट सीनेमा न दे । तो हमारा मनुष्य जन्म किस म । ? किसी मेहमान के ने पर उसे सीनेमा दे ने के लिए ले जाने का ाग्रह किया ाता है गांठ से पैसे देकर उ को ले जाया जाता है। मेहम की ातिरदारी का यह नया तरीका चालू हुआ है। कितने भद्दे रिवाज दिनों दिन ालू हो रहे हैं। मानव माज पतन की तरफ प्रयाण कर रहा है। यह अमूल्य म व जन्म दूसरों की से रने और क्रोधादि अतरंग त्रुओं को जीतने के लिए मिला है न कि अपनी दतें और बिगाड़ने के लिए। ब ापकी समझ में यह बात बैठ गई होगी कि बाहर के त्रु ई र भा से कैसे दूर हो सकते हैं। राजनीति में और धर्म नीति में थोड़ा अंतर है। आध्यात्मिक शि । को बाहरी बातों से तोलना ठीक नहीं हैं। जो राजा धर्म शि । के अनुसार आचरण करता है उसे सेना र ने की जरूरत न होगी। उसके लिए चक्रवर्ती की ऋद्धि भी व्यर्थ है, तुच्छ है। उसके लिए बा ंपा ाग का मल है। आप लोग ाग का महत्त्व सम कर उसे अप ओ तो कल्याण है।

कई लोग यह बात कहते हैं कि हम किसी पर उपकार क्या करें। ाज कल लोग उप र के बदले अपकार करने लगते हैं। उपकार का बद चु तो दूर रहा उप र स्वीकार भी नहीं करते हैं। ऐसी दशा किसी पर उपकार करने से क्या लाभ ? इस । मतलब तो यह हुआ कि जिसपर ापने उपकार किया है उसमें बुराई है। पनी बुराई के

कारण वह उपकार स्वीकार न करके अपकार करता है। किन्तु आपमें भी तो अभिमान भरा पड़ा है जिससे किसी पर उपकार करके उसे गिनाते हो और बदला चाहते हो। आपकी भी यह बुराई है। आप और वह दोनों बराबर रहे। जब आप में यह भावना हो कि दूसरा कुछ भी करे उससे मुझे क्या मतलब, मुझे मेरा काम करना चाहिये तब आप किसी का दोष न देखेंगे और न उपकार का बदला चाहेंगे। उपकार को अहंकार खा जाता है। अतः अहंकार रहित होकर उपकार करना चाहिये। यदि कोई उपकार के बदले अपकार करे तो प्रसन्न होकर अधिक उपकार करना चाहिये। ऐसा नहीं हो सकता कि हमारी सच्चाई का सामने वाले पर कभी असर ही न हो। देरी से ही सही किन्तु उसका हृदय परिवर्तन जरूर होता है। अपना काम अपने को न छोड़ना चाहिये। तीन बार बिच्छू द्वारा काटे जाने पर भी उसे पानी के बाहर निकालने वाले सेठ का दृष्टान्त आप लोगों ने सुना हुआ है। सेठ ने कितना अच्छा सोचा था कि जब यह जानवार भी काटने का अपना स्वभाव नहीं छोड़ता है तो दूसरे की रक्षा करने का अपना स्वभाव मैं कैसे छोड़ दूं। यह है परोपकार का आदर्श। ऐसे परोपकारी आदर्श सज्जन का जीवन चरित्र आपको कथा द्वारा सुनाता हूं।

सुदर्शन चरित्र----

करी प्रतिज्ञा हो निर्लज्जा, क्रीडा कर घर आई।
धाय पंडिता से बात सुनाई, लोभ से वह ललचाई ॥ रे धन. ॥

घाट घड़ा नानाविध जब मन इक उपाय मन आया ।
कौमुदी महोत्सव निकट आवे तब काम करुं मन भाया ।रे धन.।

जो लोग दूसरों । दोष न देखकर पना ही देखते हैं और आत्म निरी ण रते हैं वे महा रुष हे ाते हैं। सुदर्शन ने घोर ंकट में पड़ने पर भी यह वि ार न ाने दिया कि ओह ! मैंने इतने दिनों त धर्मारा न की फिर भी यह ापत्ति पर । गई। धर्म से छ नहीं ोता और न धर्माराधन रने वाले लोग ऐ । मानते हैं। वे तो यह सोचते हैं कि धर्म की आराधना न होना ही बसे ंकट है। संसार की मोज मजा में जाने से बढ़ र ौर । विपा होगी।

विपद् विस्मरणं शंभोः संपद् संस्मरणं विभोः ।

शंभु अर्थात् परमात्मा का विस्मरण करना सबसे बड़ी विपत्ति है। ईश्वर भ लोग विपत्ति उपस्थित होने पर उसे धर्माराधन में बाधक न मानकर साध म ते हैं। संतों । या महापुरुषों का मार्ग छ जुदा है।

कपिला की संगति से अभया रानी । मन कुछ । कु हो गया। वह अपना पद और मर्यादा भू गई। मैं कौ हूं और मेरा पति कौन है तथा इ नी ार्य से हमारी कितनी बदनामी होगी दि ब बातें वह भूल गई। है, बुरे व्यी की ंगति से मनुष्य में बुराई । जाती है। बुरी सोबत से ब कर रहना ाहिये।

अभया ने कपिला से कहा कि मैं किसी भी उपाय से सुदर्शन को काबू में करके रहूंगी। बेचारा सुदर्शन क्या है, तिरियाचरित्र से इन्द्र नरेन्द्र भी वश में किये जा सकते हैं।

कपिला के सामने प्रतिज्ञा करके अभया अपने मकान में आकर बैठ गई। वह उदास बैठी है। किसी गहरी चिन्ता में निमग्न है। उसके एक पंडिता नाम की धाय है। धाय दूध पिलाने वाली स्त्री को कहते हैं जो माता के समान गिनी जाती है। पंडिता को अपना मातृपद सुरक्षित रखना चाहिये था। उसे लज्जित न करना था। माता का कर्त्तव्य है कि संतान को चरित्रशील बनावे किन्तु उसने इसके विपरीत कार्य किया। अपनी पुत्रीय समान अभया की दुश्चरित्रता में वह मददगार बनी। माता पिता भी संतान के शत्रु बन जाते है यह बात इस कथा से ज्ञात होती है। कदाचित् यह कहा जाय कि यह कथा तो पुरानी हो गई है क्या आजकल भी ऐसा होता है? हां, आजकल भी अपने अज्ञान के कारण माता पिता संतान के लिए शत्रु का काम करते दिखाई देते हैं। माता सांपनी भी होती है और पिता बंदर भी होते हैं। किन्तु क्या वे अपनी संतान को ाने के लिए माता-पिता हैं! सर्पिणी अपने बच्चों को भूख के मारे खा भी जाती है और बन्दर तथा बिलाड़ अपने बच्चों को गुस्से के मारे मार भी डालते हैं। ये तो पशु हैं इनमें विवेक की बड़ी कमी है। मगर विवेकी कहा जाने वाला मनुष्य भी संतान का शत्रु बन जाता है। ये पशु तो एक भव के लिए अनिष्ट करते हैं किन्तु मनुष्य अपनी मूर्खता से संतान के अनेक भव बिगाड़ डालता है।

उदाहरणार्थ समझिये कि बाल यह नहीं जानता कि उसे जेवर पहनना ाहिये या नहीं। उसे न तो ोना ांदी के जेवर पहनने ा शौ है और न वह उसकी कीमत ही जानता है। फिर भी माता पिता बच्चों को गहने पहनाते हैं या नहीं? गहनों के ारण बच्चों की जान ली जाती है फिर भी लोग गहने पहनाना नहीं छोड़ते। इसी प्रकार अन्य ादतें भी ऐसी डाल दी जा हैं कि जन्म भर बच्चे दुः ते हैं। ऐसी भद्दी और कुसंस्कारी बातें बच्चों के दिमाग बैठा दी जाती हैं कि वे मा-बाप कहलाने वाले भी बा शत्रु बन जाते हैं। नीति ा यह पद आपने सुना होगा।

माता शत्रुः पिता वैरी येन बालो न पाठितः।

वह माता शत्रु है और पिता वैरी है जिसने पने बच्चे को नहीं पढ़ाया है। किन्तु संतान के झूठे प्रेम में कर कितने माता पिता अपने बच्चों को मू र देते हैं। क्या ऐसे माता-पिता पंडिता धाय से कु कम हैं?

पंडिता, अभया के दुश्चरित्र में मददगार ने के लिए जाती है। अभया को उदासीन बैठी देखकर वह हने लगी कि आज इतनी अन्यमनस्क क्यों हो। मैं सदा ाप हर प्रकार की सेवा करने के लिए तय्यार । अ ने हा, क्या बताऊं पंडिता! मैं बड़ी अभागिन हूं। पंडि बोली—राजा तेरे इशारों पर नाचता है। फिर तू अभागिन कैसी? अभया कहने लगी कि तक मन का ा पूरी न हों

तब तक अभागिन ही हूं। पंडिता बोली—मेरे रहते तेरी मनोकामना अपूर्ण रहे तब तो मेरा जन्म व्यर्थ है। अभया बोली—मेरे सद्भाग्य से तुम जैसी चतुर धाय माता और सहायिका मिली हो। किन्तु क्या कहूं? तुम्हारे सामने मन की बात कहने में भी लज्जा और दुःख होता है।

प्रत्येक बुरा काम करते वक्त एक बार आत्मा हिचकिचाती है। उसे यह विवेक होता है कि यह काम अच्छा नहीं है। किन्तु आदत से लाचार होकर इन्सान बुरी प्रवृत्ति में फंसता है और आत्मा की आवाज को सुनी अनसुनी कर देता है।

अभया का कथन सुनकर पंडिता कहने लगी तब तो तू तुझ में और मुझ में भेद मानती है। जैसे अन्य लोग वैसी मैं भी। मैं तेरी वही बात जान सकती हूं जो दूसरे सब जान सकते हैं। दूसरे लोग तेरी जिस बात को न जान सकें वह बात मैं भी जानने की अधिकारिणी नहीं हूं। ऐसा होना तो नहीं चाहिये। मुझ से अपनी मनोगत बात न छिपानी चाहिये। तू ईश्वर से भले कोई बात छिपा मगर मुझ से मत छिपा। मैं तुझ को विश्वास दिलाती हूं कि जो काम ईश्वर भी नहीं कर सकता वह मैं कर सकती हूं।

अभया कहने लगी—मेरी प्यारी माता! मैं भूल में थी। तुम मेरी हो और मेरी ही रहोगी। मैं अपना दुःख तुम्हारे सामने प्रकट न करूंगी तो किसके सामने प्रकट करूंगी। हमारे नगर में सुदर्शन नाम का जो सेठ रहता है वह बड़ा

धर्म ढोंगी है। वैसे तो मैं यह हती कि संसार से धर्म नाम ही उठ जाय ताकि 'न रहे वांस न बजे बांसरी'। किन्तु इ वक्त पहला काम है सुदर्शन को काबू रना। पिला के सामने इस बनिये को काबू में करने की प्रतिज्ञा रके ई । यह बनिया उसके वश में न या। उसकी इज्जत भी गई ौर काम न बना। मैंने उससे ह दिया है कि मैं उसे वश में किये बिना तेरे को मु न दि । गी।

पंडिता हने लगी कि बस इ साधारण सी बात के लिए तू इतनी उदा हो गई और चिन्ता करने लगी। बड़े २ इन्द्र धरेन्द्रों को भी तेरे वश में रा सकती हूं। बेचारा वह बनिया क्या चीज है। तुम चिन्ता छोड़ो। मैं उसे लाकर तेरे रणों में छोड़ दूंगी। मगर एक बात है। मैं उसे ला र एकान्त तुझ से मिला दूंगी। फिर तुम जानों और तुम्हारा काम जाने। आगे । सारा काम तुमको खुद करना होगा।

अभया बोली—पण्डिता ! इससे अधिक और क्या हिये। तुम तो उसे लाकर से एकान्त में भेंट करा दो। फिर ारा म मैं निपट लूंगी।

पंडिता ने कुछ दिनों में कार्य कर दि ने की बात कही। व भया प्रसन्न मन हो गई। उसके दिल में हौंस आ गया। मगर पंडिता चिन्ता में पड़ गई कि इस क को कैसे पार लगाना। दर्शन बड़ी धर्मनिष्ठा वाला व्यक्ति है। पर घर प्रवे नहीं करता। इसलिए उसे ला तो कैसे लाना।

विपरीत ज्ञान में भी बहुत शक्ति होती है। जो उल्टी दिशा में सोचता है उसका ज्ञान विपरीत गिना जाता है। है तो वह भी ज्ञान ही। किन्तु उसका प्रयोग यदि उल्टा हुआ तो आत्मा नीचे गीर जाती है ।

पण्डित सुदर्शन को फांसने के लिए अपने ज्ञान के घोड़े दौड़ाने लगी। वह अपने तरीकों के हानि लाभ और सुविधा असुविधाओं का ध्यान करने लगी। मन में अनेक घाट घड़े और उन्हें बिखेर दिया। वह सोचती थी यदि ऐसा करूगी तो ऐसा हो जायगा और वैसा करूगी तो कैसा रहेगा आदि। अंत में एक युक्ति उसे सूझ आई। देव पूजन के बहाने सुदर्शन को रानी के पास महल में लाना ठीक रहेगा।

यह उपाय सोचकर पण्डिता बड़ी प्रसन्न हुई। अभया ने उसे दे कर पूछा कि धाय ! आज तुम बहुत प्रसन्न दि ई देती हो। क्या बात है ? पंडिता बोली कि मैंने तुम्हारी मनोकामना पूर्ण करने का भार अपने ऊपर लिया है। उसकी सिद्धि का उपाय मुझे मालूम हो गया। अतः प्रसन्न हूं। अभया पूछने लगी कि क्या उपाय सोचा है, मुझे भी बतादे। पंडिता ने कहा—क देव की पूजा से तुम्हारा मनोरथ सिद्ध होगा। क्या देव को बुलाओगी ? पूछने पर पंडिता बोली कि देव तो न आते हैं और न जाते हैं। यह तो बहाना म है। हमें इस बहाने से अपना प्रयोजन सिद्ध करना है। कौमुदी महोत्सव मनाया जाय। उत्सव को सिपाही या राजा कोई नहीं रोक सकता। उस उत्सव पर कामदेव की मूर्ति बनाकर बाहर ले

जाना और भीतर लाना । कार्तिकी पूर्णिमा के दिन सेठ सुदर्शन पौषध ाला में बैठता है । उस मय उ ो मह तुम्हारे ले अ ंगी ।

पंडित द्वारा ब या गया उपाय सुन र अभया बहु खु हुई । उ ने उस की प्रशंसा की और इनाम के र ए हार दिया । साथ में यह भी कह दिया कि यह हार तो उपाय सोचने ा उपहार है । कार्य पूरा र देने पर विशेष रुस् ार दूंगी ।

लोभ क्या नहीं राता । लोभ के व हो पिता पुत्र को त्र पिता को पत्नी पति को और पति पत्नी को मार डालते हैं । बच्चों को प ई जाने वाली ए बा पोथी में लि ा है कि ोभ पाप ा बाप है । ही लि ा है । ारे अनर्थों की जड़ लोभ है पंडिता लोभ के व हो इ अनीति पूर्ण कार्य में जुटी है । ंसार में ने प हैं । ए प सेठ सुदर्शन का है । और एक प पिला ा और पंडिता का भी है । हमें यह ोचना ाहिये कि हम कौन ा प ग्रहण करें । यदि हमें सेठ दर्शन ा प ण करना है तो एक बार ब बोलो—

धन सेठ सुदर्शन शियल शुद्ध पाली तारी आत्मा ।

 दर्शन ने ष्ट में र भी शील भंग नहीं कि । कि वर्तमान में अने प्र न्न होकर शीलभ्रष्ट हो रहे

हैं। बल्कि जो व्यि शील पालन करना चाहता है उसको कष्ट में डालते हैं और उसे भ्रष्ट करने की चेष्टा में रहते हैं। साथ गरीबों से अपनी बुद्धि चातुरी से पैसे छीनकर नाटक सीनेमा आदि बुरे कामों में लगाते हैं। इन सब बातों पर विचार करो और गरीबों की सहायता करो। बोलशेविज़म को रोकने का उपाय अपने गरीब और दुःखी देशवासियों की तन मन धन से सेवा करना ही है। यदि आप ऐसा नहीं करेंगे तो बोलशेविजम आपके सिर पर मंडरा रहा है। आपको कष्ट में पड़ना पड़ेगा।

आप दर्शन को आदर्श मानकर दूसरों की बुराई न दे ते हुए अच्छे काम करते जाओ तो आपका सदा कल्याण है।

३०-८-३६

रा कोट

मण्डल से प्र प्य पुस्तकें

१ पुप्प हिं । त ।)
२ ,, कडाल पुत्र ।-)
३ ,, - र्म व्यवस्था ।=)
४ ,, -सत्य व्रत ।)
५ ,, -हरिश्चद्र तारा १।)
६ ,, - स्तेय व्रत ≡)
७ ,, -सुबाहुकुमार
८ ,, ब्रह्मचर्य व्रत ।-)
९ ,, -सनाथ अनाथ निर्णय ।॥=)
१० ,, रुक्‌ मणी विवाह ॥।)
११ ,, -सती राजमती ॥-)
१२ ,, सती चन्दनवाला १।)
१३ ,, परिग्रह परिमाणव्रत ।)
१४ ,, सुदर्शन चरित्र ॥।)
१५ ,, सेठ धन्नाजी ॥।)
१६ गुण व्रत ।=)
१७ ,, -मदनरे । ॥।)
१८ ,, चार शि । व्रत॥)
१९ ,, -भगवती प्र. भा. १)
२० ,, - ,, द्वि. भा. १।)
२१ ,, - ,, तृ. ,, १॥)
२२ ,, -सम्यक्त्व स्वरूप ।)
२३ ,, -भगवती ४ भा. १।)
२४ ,, - ,, ५ ,, १।)
२५ ,, - ,, ६ ,, १॥)
२६ ,, -अनुकम्पा वि र (भावार्थ सहित) १ भाग १॥)
२७ राजकोट व्याख्यान १)
२८ अनुकम्पा वि ार भाग दूसरा १॥)
जीवन स्मरण ।)
मुखव का सिद्धि ।)
कर्म प्रकृति =)
स्वर्गीय पूज्य श्रीश्रीलालजी म का जीवन चरित्र १)
सृष्टि कर्त्तव्य मिमांसा -)
तीर्थंकर चरित्र १ भाग ॥=)